Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Parmar, Jivabhai U., 2010, *आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन*, thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/171

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

❖❖ प्रस्तुतकर्ता ❖❖

श्री जीवाभाइ यू. परमार

ई. आचार्य,
महिला आट्‌र्स कॉलेज,
ढसागाँव

❖❖ निर्देशक ❖❖

डॉ. प्रविणसिंह आर. चौहाण

श्री जी.के. एण्ड सी.के. बोसमिया कॉलेज-जेतपुर,
सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय,
राजकोट

अक्टूबर-२०१०

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***श्री जीवाभाई यू. परमार*** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. पदवी के लिए मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में ***''आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन''*** शीर्षक शोध प्रबंध तैयार किया है । इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण, विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया हैं ।

साथ ही यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं उपयोग हुआ है ।

स्थल :
दिनांक :

(डॉ. प्रविणसिंह आर. चौहाण)
श्री जी.के. एण्ड सी.के.
बोसमिया कॉलेज - जेतपुर,
सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय,
राजकोट

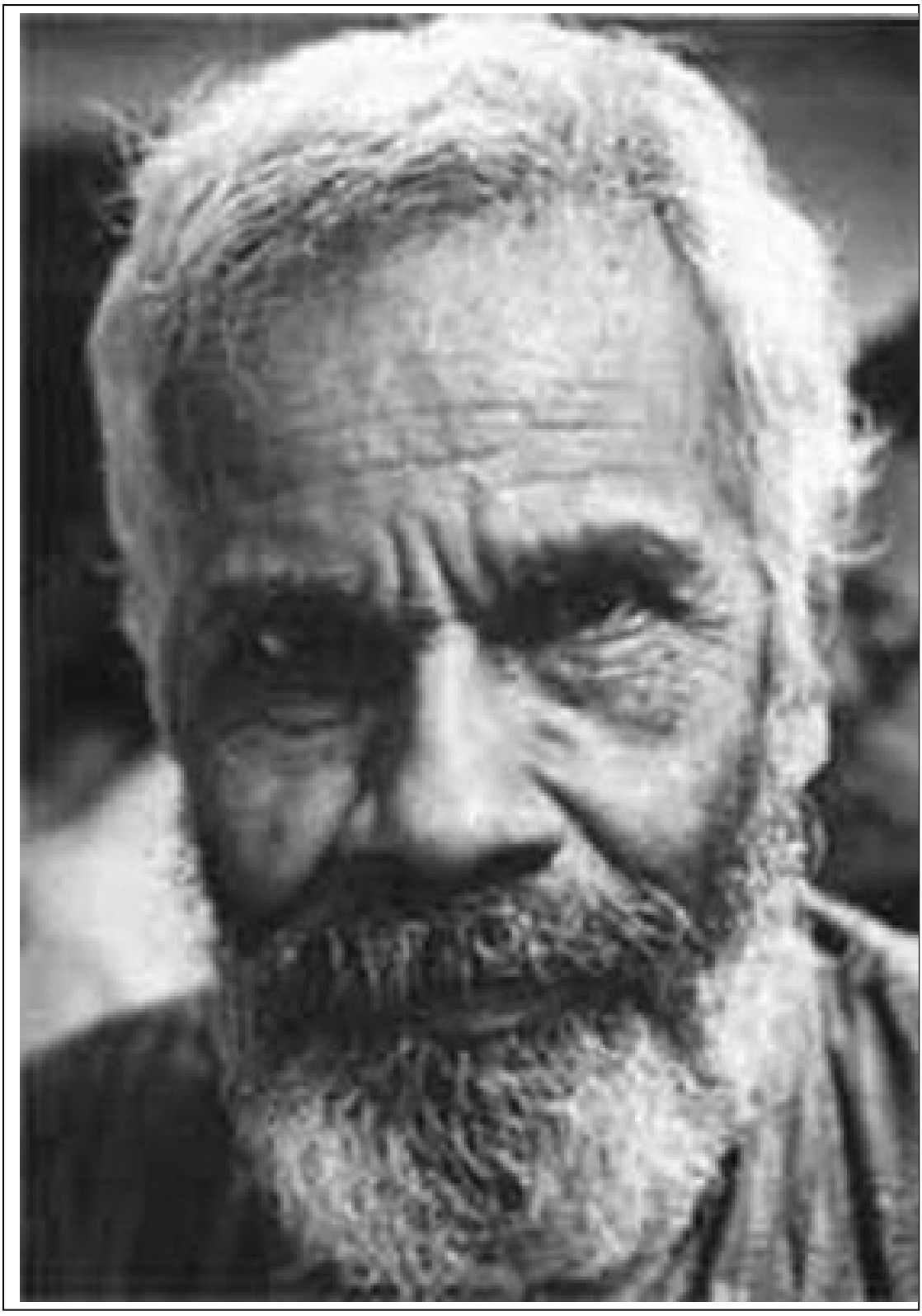

*	प्राक्कथन	१–११
अध्याय–१	हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव – विकास ।	१२–६५
अध्याय – २	नागार्जुन : व्यक्तित्त्व – कृतित्त्व ।	६६–१२०
अध्याय – ३	नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना ।	१२१–२०६
अध्याय – ४	नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में शिल्प विधान ।	२०७–२३८
अध्याय – ५	आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान ।	२३९–२८१
अध्याय – ६	मुल्यांकन एवम् उपसंहार ।	२८२–२९४
	* उपजीव्य ग्रंथ ।	२९०
	* संदर्भ ग्रंथ ।	२९१–२९३
	* पत्र–पत्रिकाएँ ।	२९४
	* शब्दकोष ।	२९४

प्राक्कथन

नागार्जुन कृत 'हिम-कुसुमों का चंचरिक' कविता की ये पंक्तियाँ न जाने कब से अंतरमन को आलोड़ित कर रही है...

''छोटी बच्ची की छवि आँखों में छाई है
कल परसों ही तो घर से चिट्ठी आई है
घर खेत गाँव की रूह कौंधती है मन में
स्मृतियों का सौरभ ध्वनि भरता है निर्जन में
बंदूक, तुम्हारी हल से आज सगाई है
छोटी बच्ची की छवि आँखों में छाई है ।''

आँचलिक उपन्यास अपनी यात्रा की अर्धशती पूरी कर चुका है । आँचलिक उपन्यास ने अनेक अछूते अँचल एवम् जनजातियों के जीवन को वाणी दी है । स्वातंत्रोत्तर भारतीय पिछड़े गाँवों का यथार्थ जीवन, नई मानसिकता, संघर्षशीलता, चेतना, टूटन, संक्रमण, मूल्य आदि को अभिव्यक्ति दी है । इनमें बृहत् और खण्डप्राय भारत देश की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक विशेषताओं की झाँकियाँ प्राप्त होती है । इसने जीवन की ओर देखने का एक नया नजरिया विकसित किया है । कथ्य, शिल्प, शैली और भाषा के रूप में नये आयाम प्रस्तुत किये हैं । इसमें आम आदमी के जीवन स्पंदनों का गहराई के साथ अंकन हुआ है । आँचलिक उपन्यास के विकास की एक सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा मिलती है । छठे-सातवें दशक में इन उपन्यासों की बाढ़-सी आ गई थी । आठवे दशक में कुछ शिथिलता है, लेकिन पूर्णत: अवरुद्ध नहीं । नवम दशक में इसने सशक्त कृतियाँ दी । भारत जैसे विविधता से संपन्न एवम् विकसनशील देश में इसके लिए काफी भूमि परती है । अत: इसके विकास की और भी संभावनाएँ हैं ।

नागार्जुन ने उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब उपन्यास विधा स्थापित हो चुकी थी और प्रेमचंद के उपन्यासों की प्रसिद्धि और लोकप्रियता घोषित हो चुकी थी । प्रेमचंद के बाद किसान और ग्राम्य जीवन को आधार बनाकर लिखने वाले आँचलिक उपन्यासकारों में नागार्जुन प्रमुख है, जिनके उपन्यास अपने समय के

समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था को समझने में हमारी मदद करते हैं । सरकार की जनविरोधी नीतियाँ, जमींदार वर्ग, जमींदार के सहायक सरकारी अधिकारी, महाजन जो लगान और ब्याज की वसूली करते हैं, प्राकृतिक आपदाएँ जैसे कि बाढ़, अकाल, महामारी ने भी । यथार्थ के विविध रूपों को वे अपनी रचना में दर्ज करते हैं । नागार्जुन स्वयं उस यथार्थ से होकर गुजरे हैं इसलिए उनके प्रस्तुतिकरण में अधिक प्रामाणिकता मिलती है । उनके उपन्यास प्रारम्भ होते ही शोषण-अत्याचार का एक विकृत संसार हमारे सामने मूर्त होता चला जाता है और एक भयावह दुनिया के सामने हम अपने आपको खड़ा पाते हैं ।

नागार्जुन की साहित्य संबंधी मान्यताओं में यह तथ्य निहित है कि प्रगतिशील दृष्टि ही कला और साहित्य के प्रयोजन को पूरा कर सकती है । इसलिए वे अमूर्त कला के विरोधी हैं । उनमें कलावाद, कल्पनावाद, रहस्यवाद जैसी अमूर्त धारणाओं के लिए स्थान नहीं है, जो प्रेमचंद की विचारधारा के मेल में हैं । इस सत्य से वे अवगत है कि अतिशय कल्पना और रहस्यवादी प्रवृत्तियों के कारण सामाजिक समस्याओं से रचनाकार की संबद्धता के सूत्र टूट जाते हैं । सादे जीवन एवम् परिवेश तथा प्रगतिशील विचारधारा ने नागार्जुन के दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की । सामान्यजन के प्रति पक्षधरता इनके सम्पूर्ण साहित्य में अभिव्यक्त हुई है । अत: नागार्जुन के इसी विश्वबंधुत्व भाव को हिन्दी साहित्य जगत् के सामने उजागर करने का संकल्प किया और यह इसका परिणाम है ।

* शोध-विषय की प्रेरणा :

किसान का पुत्र होने के नाते कभी प्यास से मुरझाई मिट्टी की आहें तो कभी अनराधार वृष्टि से घूँटती मिट्टी की साँसे निरंतर सुनता आया हूँ, मेहसूस करता आया हूँ । आज भी जब उस मिट्टी की गोद में जाता हूँ सूख पाता हूँ । बचपन, किशोरावस्था और युवावस्था तक उसी गाँव की मिट्टी का वात्सल्य मेरे अंदर जीवन रस भरता आया है । आज भी लगता है जैसे उसके कोमल हाथ मुझे, मेरे परिवार, मेरे जीवन को संभाले हुए है । मैं जन्म से ही ग्रामीण जीवन और वहाँ के परिवेश से आकृष्ट रहा हूँ । गाँव का ही एक हिस्सा होने के कारण मुझे गाँवों से

अधिक प्रेम रहा है । और इसी कारण मेरे शोध प्रबंध का विषय भी ग्रामीण परिवेश से संबंधित रहा ।

मेरी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई । गाँव की पाठशाला में मिले अनेक संस्कारों ने मेरे जीवन का निर्माण किया । स्नातक और अनुस्नातक की शिक्षा गूजरात विद्यापीठ में संपन्न हुई । ग्रामीण परिवेश के प्रति अधिक प्रेम और लगाव के कारण ग्रामीण परिवेश पर आधारित कृतियाँ मुझे अधिक आकर्षित करती रही है । इसी आकर्षण और लगाव से प्रेरणा पाकर मैंने अँचलीय जीवन से संबंधित आँचलिक उपन्यासों पर संशोधन कार्य करने की ठान ली ।

नागार्जुन हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य के एक सिद्धहस्त रचनाकार हैं । जिन्होंने आँचलिक उपन्यास के प्रारंभिककाल में कई उपन्यासों की रचना की । कुछ विद्वान तो नागार्जुन को ही हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों के जनक मानते हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में बिहार राज्य के अत्यंत पिछड़े अँचलों को वाणी देने का प्रयास किया है । नागार्जुन एक अच्छे कवि होने के कारण उनके उपन्यासों में उनके कवि हृदय का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलक उठता है । उन्होंने अपने उपन्यासों में अँचलीय जीवन के रस को अभिव्यक्त किया है । अत: उनके आँचलिक उपन्यासों पर संशोधन करने की मेरी चाह प्रबल हुई । इसके लिए मैंने डॉ.प्रविणसिंह आर.चौहाण (व्याख्याता, श्री सी.के.एण्ड जी.के.बोसमिया कॉलेज, जेतपुर) से बात की । डॉ. चौहाणजी के मार्गदर्शन में काफी चर्चा-विमर्श के बाद मेरे पीएच.डी. का विषय तय किया गया - **आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन** ।

* सामग्री संकलन :

शोध-प्रबंध के लेखन की शुरूआत में ही आँचलिक उपन्यासों की सूची के बारे में प्रश्न उपस्थित हुए । वैसे कई आँचलिक उपन्यास रचनाएँ पढ़ने का मौका मिला है । लेकिन शोध-प्रबंध के लिए आवश्यक आँचलिक उपन्यासों की एक लम्बी सूची प्राप्त करने के लिए मैंने अलग-अलग प्रकाशकों से पत्राचार किया और अनेक पुस्तकें प्राप्त की । जिसमें वाणी प्रकाशन, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दिव्य डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपुर आदि ने मुझे पूरा सहयोग दिया ।

इसके अतिरिक्त मैंने अपने इस शोध कार्य हेतु महिला आर्ट्स कॉलेज-ढसा के ग्रंथालय, भावनगर विश्व-विद्यालय के ग्रंथालय, गूजरात विद्यापीठ ग्रंथालय, सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय ग्रंथालय से शोध सामग्री एकत्रित की है । अत: मैं उन सब ग्रंथालयों के ग्रंथपाल एवम् कर्मचारियों का भी अनुग्रहित हूँ । जिन्होंने मुझे ग्रंथ सुलभ कराने में सहयोग प्रदान किया जिससे मेरा कार्य सरल बन पाया ।

* पूर्ववर्ती शोधकार्य :

नागार्जुन एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे । उन्होंने साहित्य की तकरीबन सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई है । अत: उनकी सभी साहित्यिक विधाओं पर आजतक कई शोधकार्य हो चुके हैं । नागार्जुन के उपन्यास साहित्य पर बहुत शोध कार्य हुए हैं । परन्तु आँचलिकता को केन्द्र में रखते हुए उनके उपन्यासों का अनुसंधान कुछ कम मात्रा में हुआ है । जिन शोधार्थियों ने नागार्जुन के साहित्य पर शोध की है, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नांकित है ।

* नागार्जुन का कथा साहित्य - डॉ. तेजसिंह
* नागार्जुन के उपन्यासों में आँचलिक तत्त्व - डॉ. भगवत स्वरूप
* नागार्जुन का जीवन और साहित्य - डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट
* नागार्जुन का रचना संसार - विजय बहादुरसिंह
* कथाकार नागार्जुन - डॉ. जगन्नाथ पंडित
* नागार्जुन - सत्य नारायण
* कथाकार बाबा नागार्जुन - डॉ. अवधेशकुमार राय

इस प्रकार देख सकते है कि नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में आँचलिकता को लेकर बहुत कम शोध कार्य हुआ है । अत: इस विषय पर शोध कार्य की पर्याप्त गुँजाईश है ।

* शोध विषय का सीमांकन :

आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन विषय पर समीक्षात्मक अध्ययन करते समय प्रस्तुत विषय की सीमाओं को भी ध्यान में रखा है । प्रस्तुत शोध विषय में केवल नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की चर्चा करना ही अभिष्ट रहा है, प्रत्युत विषय की व्यापकता उसकी उपलब्धियों से जुड़ती है । नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों को आँचलिकता के स्वरूपगत लक्षणों के आधार पर विवेचित करना यथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश, विविध रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, आचार-विचार, मान्यताएँ, पर्व-त्योंहार आदि से निर्मित एक निश्चित मानसिकता का सटिक अध्ययन कर नागार्जुन के उपन्यासों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालना और आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन के स्थान को निर्धारित करना मेरा लक्ष्य रहा है ।

* शोध-प्रबंध की विशेषताएँ :

(१) हिन्दी उपन्यास साहित्य में आँचलिक उपन्यासों के उद्‌भव व विकास को दर्शाने का प्रयास रहा है ।
(२) शोध-प्रबंध में नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों के कथ्य एवम् शिल्प को विवेचित करने का प्रयास किया है ।
(३) आँचलिकता के स्वरूपगत लक्षणों (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक) के आधार पर नागार्जुन के उपन्यासों को विवेचित किया है ।
(४) नागार्जुन के वैयक्तिक जीवन को अंत:स्थ प्रस्तुत कर उनकी जीवन दृष्टि के निर्णायक तत्त्वों को निरूपित करने का प्रयास रहा है ।
(५) हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य की एक लम्बी सूची रखी गई है।

(६) हिन्दी के प्रमुख आँचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु और निरूपणरीति को स्पष्ट किया गया है ।

(७) हिन्दी आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन के स्थान को यथायोग्य ढंग से निर्धारित करने का प्रयास रहा है ।

(८) आँचलिकता के स्वरूपगत लक्षणों के आधार पर किये गये इस शोधकार्य में नागार्जुन के उपन्यास विषयक एक नव्य दृष्टि का संचार होगा, जो कि इस शोध-प्रबंध की विशिष्ट महत्ता होगी ।

* शोध-प्रबंध का महत्व :

(१) नागार्जुन ने आर्थिक असमानता के मार्ग में सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों और विसंगतियों को अवरोधक बताया है । अत: उनके उपन्यासों में समाज व धर्म के ठेकेदारों का पर्दाफाश करने की प्रवृत्ति भी बलवती दिखाई पड़ती है । काल्पनिक व झूठा आदर्श सामाजिक यथार्थ की तस्वीर को पेश करने में कमजोर होता है । उनकी इसी मार्क्सवादी विचारधारा को प्रस्तुत प्रबंध में उजागर किया गया है ।

(२) नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है । दलित, पीड़ित एवम् शोषित वर्ग में नई चेतना उजागर कर उन्हें संघर्ष के लिए तैयार करना उनका उद्देश्य होता था । वे सब प्रकार के शोषणों का विरोध करते हैं, परंतु शोषण के मूल में है आर्थिक असमानता । अत: इस असमानता की दीवारों को सबसे पहले ढहाना चाहते हैं । पूँजीवाद ही नहीं बल्कि उसे पोषित करने वाली सभी सड़ी-गली, पुरानी मान्यताओं व परंपराओं के प्रति उनमें विद्रोह की भावना मिलती है ।

(३) लेखन कार्य में डूबे हुए नागार्जुन का चेहरा और आँखें एक विशेष दीप्ति-सी आलोकित रहती है । उनकी दृष्टि प्रारंभ से ही समाजोन्मुख रही है । उनकी पैनी दृष्टि ने भांप लिया था कि व्यक्ति की अच्छाई-बुराई का मूल उत्स समाज और उसकी भली-बुरी रूढ़ियाँ ही है। अत: ऐसे समाज का एक व्यापक चित्र उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है । जिसे प्रस्तुत शोधकार्य में स्पष्ट करना मेरा उद्देश्य रहा है ।

(४) मिट्टी की सोंधी सुगंध नागार्जुन के उपन्यासों की अपनी विशेषता है । उनके उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश अपने समग्र रूप में अभिव्यक्त हुआ है । ग्रामीण जीवन का ऐसा चितेरा हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है । नागार्जुन का व्यक्तित्त्व अनेक अंतर्विरोधों से भरा हुआ है । अनेक अपूर्णताएँ उनमें पूर्णता के लिए कुलबुला रही है । खण्ड- खण्ड आपस में मिलकर ही अखण्डता का निर्माण करती है । इसी परिकल्पना से ही प्रस्तुत शोध-प्रबंध में नागार्जुन के जीवन-कवन को हिन्दी साहित्य जगत् के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास रहा है ।

* शोध-प्रबंध परिचय :

डॉ. चौहाणजी के मार्गदर्शन में काफी चर्चा-विमर्श के बाद मेरे पीएच. डी. का विषय तय किया गया - **आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन** ।

अपने अध्ययन की सुविधा हेतु उपरोक्त विषय को मैंने छः अध्यायों में विभाजित किया है ।

(१) हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव - विकास
(२) नागार्जुन : व्यक्तित्त्व - कृतित्त्व
(३) नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना
(४) नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में शिल्प विधान
(५) आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान
(६) मूल्यांकन एवम् उपसंहार

* प्रथम अध्याय : 'हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव - विकास'

प्रथम अध्याय में उपन्यास की परिभाषा, हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा को स्पष्ट किया है । जिसमें पूर्वप्रेमचंदयुग, प्रेमचंदयुग, प्रेमचंदोत्तरयुग को चित्रित कर के ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, प्रयोगवादी उपन्यास को निरूपित किया है । बाद में हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य के उद्‌भव-विकास को चित्रित किया है । अंत में हिन्दी उपन्यासों

की महिला लेखिका को चित्रित कर के साठोत्तरी उपन्यास साहित्य पर प्रकाश डाला है ।

*** द्वितीय अध्याय : 'नागार्जुन : व्यक्तित्त्व – कृतित्त्व'**

द्वितीय अध्याय में नागार्जुन के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को स्पष्ट किया है । व्यक्तित्त्व के अंतर्गत उनका जन्म, स्थान, परिवार, बचपन, शिक्षा, दाम्पत्य जीवन, जन्मजात विद्रोही प्रवृत्ति और जीवन दृष्टि के निर्णायक तत्त्वों को रेखांकित किया है। तो कृतित्त्व के अंतर्गत नागार्जुन का कविता साहित्य, उपन्यास साहित्य, कहानी साहित्य, मैथिली साहित्य, बाल साहित्य, संस्कृत काव्य तथा अनुवाद को चित्रित किया है ।

*** तृतीय अध्याय : 'नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना'**

तृतीय अध्याय नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना को प्रस्तुत करता है । इसके अंतर्गत आँचलिकता के प्रमुख पाँच लक्षण (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक) को स्पष्ट कर के उनके आधार पर नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना को प्रस्तुत किया है ।

*** चतुर्थ अध्याय : 'नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में शिल्प विधान'**

चतुर्थ अध्याय नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों के शिल्प विधान को स्पष्ट करता है । जिसके तहत भाषा, शब्द (तत्सम्, तद्भव, आगत, विदेशी), शैली, मुहावरे, कहावतें, बिम्ब, प्रतीक आदि के आधार पर नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों का शिल्प गठन विवेचित किया है ।

*** पंचम् अध्याय : 'आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान'**

पाँचवा अध्याय आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन के स्थान को दर्शाता है । जिसमें हिन्दी के प्रमुख छः आँचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु और निरूपणरीति को स्पष्ट कर के बाद में नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु और निरूपणरीति को संक्षिप्त में स्पष्ट करने का प्रयास है । अंत में आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन के स्थान को विश्लेषित किया है ।

*** षष्ठ अध्याय : 'मूल्यांकन एवम् उपसंहार'**

छठा अध्याय उपसंहार रूप है । जिसमें नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों का संक्षिप्त मूल्यांकन कर के उनके आँचलिक उपन्यास साहित्य की सीमाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

शोध प्रबंध के अंत में संदर्भिका के अंतर्गत विभिन्न संदर्भग्रंथों, उपजीव्य ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाओं तथा शब्दकोषों की सूची प्रस्तुत है ।

* कृतज्ञता-ज्ञापन :

यह शोधकार्य मैंने परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ.प्रविणसिंह आर.चौहाण के मार्गदर्शन में, उनकी प्रेरणा से संपन्न किया है । समय-समय पर उनके द्वारा प्राप्त विविध शोध निर्देशों ने मेरे शोधकार्य में काफी सहयोग दिया । उनका मैं हृदय से आभारी हूँ । डॉ.चौहाणजी को श्रद्धाभाव से आदर अर्पित कर के पुनः उनका आभार व्यक्त करता हूँ ।

साथ ही प्रो.डॉ.बी.के.कलासवा साहब (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय, राजकोट) का भी मैं अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे शोध-प्रबंध को पूर्णता प्रदान करने में काफी मार्गदर्शन और सहायता दी है । उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । साथ ही हिन्दी भवन के रीडर डॉ.शैलेष मेहता साहब तथा डॉ.गामित साहब का भी मैं खूब आभारी हूँ, जिन्होंने हर समय मेरे कार्य में सहयोग दिया है । साथ ही डॉ.एन.एम.डोडिया साहब को कैसे भूल सकता हूँ! जिन्होंने मुझे शोध-प्रबंध विषयक काफी जानकारी व सहयोग प्रदान किया है, उनके प्रति भी मैं आदरांजलि अर्पित करता हूँ ।

इस अवसर पर मेरे परिवार के सद्भाव और उनकी प्रेरणा को कैसे भूल सकता हूँ ! मेरे माता-पिता को कोटि-कोटि वंदन करते हुए उनके आशीर्वाद से ही यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो पाया है । साथ ही धर्मपत्नी राधिका और पुत्र आर्यदीप ने पूरे शोधकार्य दौरान हमेंशा मेरे मन में, हृदय में आशा का संचार किया है । शोधकार्य लिखने के प्रति परोक्ष रूप से उन्मुख किया है । उन दोनों को हार्दिक स्नेह अर्पित करता हूँ ।

इसके साथ इस पूरे शोधकार्य के दौरान हृदय से सहयोग देने वाले ढसा केळवणी मंडल के प्रमुख श्री झीणाभाई पटेल, महिला आर्ट्स कॉलेज के अध्यापक मित्र श्री देवजीभाई मारू, श्री ऋतुराजसिंह गोहिल, श्री मूलराजसिंह गोहिल, श्री पृथ्वीराजसिंह गोहिल, श्री मयूरभाई दवे, श्री गोपालभाई तथा उन सभी मित्रों का जिन्होंने मुझे समय-समय पर सहयोग दिया उन सभी का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ ।

मैंने अपने इस शोध कार्य हेतु महिला आर्ट्स कॉलेज-ढसा के ग्रंथालय, भावनगर विश्व-विद्यालय के ग्रंथालय, गूजरात विद्यापीठ ग्रंथालय, सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय ग्रंथालय से शोध सामग्री एकत्रित की है । अतः मैं उन सब ग्रंथालयों के ग्रंथपाल एवम् कर्मचारियों का भी अनुग्रहित हूँ । जिन्होंने मुझे ग्रंथ सुलभ कराने में सहयोग प्रदान किया जिससे मेरा कार्य सरल बन पाया ।

अंततः प्रस्तुत शोधकार्य को सुचारू रूप से टंकित (कम्प्यूटराईज्ड टाईप) करने वाले प्रा. डॉ. जितेन जे. परमार का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

ढसा :
दिनांक :

विनीत
जीवाभाई यू. परमार

अध्याय-१

हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव - विकास

१.१ हिन्दी का प्रथम उपन्यास ।
१.२ उपन्यास की परिभाषा ।
१.३ हिन्दी उपन्यास : विकासयात्रा ।
१.३.१ पूर्वप्रेमचंदयुग (भारतेन्दुयुग,द्विवेदीयुग)
१.३.२ प्रेमचंदयुग ।
१.३.३ प्रेमचंदोत्तयुग ।
१.३.३.१ ऐतिहासिक उपन्यास ।
१.३.३.२ मनोवैज्ञानिक उपन्यास ।
१.३.३.३ सामाजिक उपन्यास ।
१.३.३.४ समाजवादी उपन्यास ।
१.३.३.५ प्रयोगवादी उपन्यास ।
१.४ हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव-विकास ।
१.५ हिन्दी उपन्यास की महिला लेखिकाएँ ।
१.६ साठोत्तरी उपन्यास ।

अध्याय : १
हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव -विकास

उपन्यास इस नये युग के यथार्थ को, उसकी नवीन संकुल परिस्थितियों को, उसके जटिल परिवेश एवम् परिप्रेक्ष्य को, उसके नवीन विचारों व चिन्ताओं को, उसके नवीन मानवीय सरोकारों और दायित्वों को रूपायित करनेवाली कथा साहित्य की एक नवीन विधा है । जहाँ तक कथा साहित्य का सवाल है, वह मनुष्य के अस्तित्व या साहित्य के अस्तित्व जितना ही पुराना हो सकता है, क्यों कि कथा कहना और सुनना मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों में से एक रहा होगा । हर युग के मनुष्य ने अपने युग की कथा को किसी न किसी प्रकार कहा ही है । अतः कथा साहित्य का अस्तित्व तो प्राचीन समय से ही रहा है । परन्तु कथा साहित्य की यह विधा जिसे हम उपन्यास कहते हैं, सर्वथा नवीन है । इस नये युग की देन है । कदाचित उसकी अंग्रेजी संज्ञा Novel उसके इसी नाविन्य की ओर संकेत करती है ।

ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास अपेक्षाकृत एक नई विधा है। हिन्दी के पुर्व-आधुनिककालों में हमें प्रबंध काव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, चरितकाव्य, संवाद काव्य, नाटक जैसी विधाएँ प्राप्त होती है, परन्तु 'उपन्यास' जैसी कोई विधा प्राप्त नहीं होती है । ''उपन्यास का शुभार कथा साहित्य के अन्तर्गत होता है ''१ और जैसा कि ऊपर कहा गया कथा तो आदिम मनुष्य के साथ भी रही है । हमारे यहाँ भी हितोपदेश, पंचतंत्र, कथासरितसागर, जातक कथाएँ, रामायण, महाभारत की कथाओं, वेदों और उपनिषदों की कथाओं के रूप में कथा साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है । परन्तु उपन्यास के साथ जिस कथा साहित्य को संलग्नित किया जाता है वह अपनी दृष्टि से सर्वथा नवीन है, इस नये युग की देन है। भारतीय भाषाओं में औपन्यासिक सृष्टि का प्रारंभ १९ वीं शताब्दी के उतरार्ध से मसनस जाता है । आधुनिक साहित्य के प्रायः सभी अध्येता इस तथ्य को अंगीकृत करने लगे हैं कि यह एक पाश्चात् साहित्य विधा है और अपने यहाँ उसका प्रचलन अंग्रेजों के आगमन, उनके द्वारा भारत में सत्तापन और अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा

के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप हुआ । सन् १८०१ में 'फार्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना के साथ जॉन ग्रिल क्राईस्ट हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए । उनकी अध्यक्षता में पाठ्य पुस्तकीय सामग्री के रूप में गद्य लेखन का प्रारंभ हुआ, जिसने आगे चलकर हिन्दी उपन्यास के विकास में अपना एक विशिष्ट योग दिया । दक्षिण में तमिल आदि भाषाओं में 'बाईबल' तथा 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का भाषान्तर हुआ । इन प्रवृत्तियों के चलते भारतीय भाषाओं में 'उपन्यास' जैसी विधा का आविर्भाव हुआ ।

प्राचीन कथा साहित्य से उसमें तफावत है । ''प्राचीन कथा साहित्य स्थूल कथावस्तु प्रधान, बोधप्रधान एवम् चमत्कारिक तत्वों से युक्त था, वहाँ अर्वाचीन कथा साहित्य में सूक्ष्मता एवम् वास्तविकता के दर्शन होते हैं ।''२ उसमें चरित्र चित्रण की भी एक विकसित पद्धति मिलती है । उसमें निरूपित मानव चरित्र मनुष्य की वास्तविक अवधारणा को स्पष्ट करते हैं । यहाँ देवता, प्रभु या अवतार भी मानवीय सबलता-निर्बलता के साथ अभिव्यंजित होते हैं । जैसे नरेन्द्र कोहली कृत 'दीक्षा' या डॉ. भगवानसिंह कृत 'अपने अपने राम' के राम ।

पुराने कथा साहित्य का परिवेश अधिकांशतः सामन्तकालीन जीवन मूल्यों को सामने लानेवाला था । वहाँ इस नवीन कथा साहित्य का परिवेश उन जीवन दृश्यों की सृष्टि करता है, जो पिछली डेढ़-दो शताब्दी के वैचारिक मंथन से उत्क्रान्त हुए हैं । वह अब केवल राजा-रानी, राजकुमार, राजकुमारी, सेठ- सेठानी या पंडित-पंडिताईन तक सीमित न रहकर देश और समाज के सामान्य लोगों के जीवन धरातल तक उतर आया है । अब रधिया (बुधुआ की बेटी- पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र'), होरी, धनिया, गोबर (गोदान-प्रेमचंद), हसन अली (पत्थर अल पत्थर-उपेन्द्रनाथ अश्क), चनुली (एक टुकड़ा इतिहास-गोपाल उपाध्याय), काली (धरती धन अपना-जगदीशचन्द्र), मैना, जमिला, पोपट (मुर्दाघर-जगदम्बाप्रसाद दीक्षित), बिसू, बिन्दा (महाभोज-मन्नू भंडारी), अनारो (अनारो-मंजुल भगत), शरणिया (अकुरमाशी-शरणकुमार निम्बाले) आदि निम्नवर्ग या अतिनिम्नवर्ग के पात्र भी अब कथा नायक या नायिका के रूप में आते रहे हैं । यही इस नवीन कथा साहित्य की विशेषता और उपादेयता है ।

प्राचीन कथा साहित्य में देशकाल के चित्रण का भी प्रायः अभाव-सा रहता था । 'एक स्मिन काले' या 'कोई राजा था' या 'राजकुमार था' जैसे वाक्यों से काम चलाया जाता था । राजाओं के नामों में प्रायः विक्रम, भोज, उदयन, प्रभूति रहते थे । उसका कथावस्तु भी अधिकांशतः कथासूत्रों (Story Motif) पर निर्भर रहता था । सामान्य जन-जीवन से उनका कोई विशेष सरोकार नहीं था । ''निम्नवर्ग या सामान्य वर्ग के पात्र सेवक-सेविकाओं की भूमिका में मिलते थे और उन पात्रों का अपना कोई वजूद नहीं होता था ।''[३] उसकी कथावस्तु कल्पना-प्रसूत, बाहरी और आदर्शप्रधान होती थी, जब कि आधुनिक कथा साहित्य यथार्थ की बुनियाद पर आधृत है । वह वैभव-विलास और शृंगार का कथा साहित्य था । जब कि यह ऐसा कथा साहित्य है, जिसमें हमारे समाज के सामान्य, अति सामान्य लोगों के दुःख, दर्द तथा उनकी मुख्य मानवीय समस्याओं एवम् प्राण-प्रश्नों से संपृक्त है ।

प्राचीन कथा साहित्य कहीं-कहीं अति रहस्यात्मक, तिलस्मी एवम् चमत्कार प्रधान होता था । तर्क-बुद्धि या आधुनिक विज्ञान के निकष पर उसके तथ्य ठहर नहीं सकते थे, जब कि आधुनिक कथा साहित्य पूर्णतया यथार्थवादी स्थितियों पर निर्भर है, अतः उसमें ऐसे चमत्कारों को कोई स्थान नहीं है । यहाँ तक कि यदि कोई लेखक पौराणिक वस्तु को ग्रहण करता है । तो वहाँ भी उसके चमत्कारपूर्ण मिथक तत्वों को तर्क-संगत युक्ति से प्रस्तुत करता है । जैसे 'अपने अपने राम' (डॉ. भगवानसिंह), 'दीक्षा' (डॉ. नरेन्द्र कोहली), 'प्रथम पुरुष' (डॉ. भगवतीशरण मिश्र) आदि उपन्यासों में अनेक चमत्कारपूर्ण प्रसंगों को तर्क संगत रूप दिया गया है ।

'दीक्षा' की सृजनयात्रा के संदर्भ में डॉ. नरेन्द्र कोहली एक स्थान पर बताते हैं - हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों के देनेवाले शिव हैं, निश्चित रूप से वे एक विकसित शस्त्र शाला (Ordinance Factory) के प्रतीक है । अतः यह शिव धनुष्य भी कोई विचित्र मंत्र ही होना चाहिए । जिसे सिरध्वज ने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया । जिसे सैंकडों मनुष्य और पशु सींचकर रंगस्थली में लाते हैं और पसीना-पसीना हो जाते हैं । मैं ने शिव धनुष्य को आधुनिक टैंक जैसे किसी यंत्र के रूप में स्वीकार किया है । यह प्रत्येक बात का हठपूर्वक आधुनिक समाधान देने का प्रयत्न नहीं है; यह शिव के महान शस्त्र निर्माता रूप को दृष्टि में रखकर, आगे की घटनाओं की पृष्ठभूमि स्वरूप की गई कल्पना है ।

राम-रावण के अंतिम युद्ध तक देवताओं और राक्षसों द्वारा शिव से शस्त्रार्थ प्राप्त करते रहने की होड़ लगी रहती है । जैसे आज के युग में छोटे देश रुस तथा अमरिका जैसी महाशक्तियों से शस्त्र मांगते रहते हैं ।

अभिप्राय यह है कि आधुनिक कथा साहित्य और पुराने कथा साहित्य में केवल नाम का ही साम्य है । ''प्रवृत्ति और प्रकृति उभयदृष्टि से आधुनिक कथा साहित्य और उसका यह रूप 'उपन्यास' उस पुराने कथा साहित्य से नितान्त दूसरे छोर पर पड़ता है ।''४ यदि आंग्ल शब्दावली का प्रयोग करे तो यह साहित्य रूप 'ऑफ द पिपुल, बाय द पिपुल एण्ड फार द पिपुल' माना जायेगा ।

आधुनिक काल में नवजागरण की प्रवृत्ति के अंतर्गत भारतीय समाज का जो नव-निर्माण हुआ, पुरानी, प्रगति-विरोधी दृढ़ मूल रूढ़ियों और अवधारणाओं का विरोध हुआ, साहित्य के इतिहास में कदाचित प्रथमतः मानवीय संवेदना एवम् पात्र सृष्टि में मानवीय संस्पर्श की जो बात आयी, उपन्यास इन सब का संवाहक बना । उपन्यास के रूप में यह नई विधा न आती तो भारतीय समाज में नारी विषयक विभावना में जो परिवर्तन आया है, वह कदाचित न आता । अतः यह तथ्य यहाँ ध्यातव्य रहेगा कि नारी के विविध रूपों की ऐसी यथार्थ परिणति उपन्यास में ही संभव थी, जो अपेक्षाकृत एक नई विधा है ।

१.१ हिन्दी का प्रथम उपन्यास :

हिन्दी के प्रथम उपन्यास के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ.वाष्णेय, डॉ.श्रीकृष्णलाल, डॉ.गोपालराय, डॉ.पारूकान्त देसाई प्रभूति हिन्दी के अनेकानेक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं । ऐतिहासिक कालक्रम तथा गद्य में निरूपित कथा की दृष्टि से डॉ.शिवनारायण श्रीवास्तव ने मुंशी इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास के लिए प्रस्तावित किया था । परन्तु कृत्रिम भाषा, अति मानवीय पात्रों से युक्त काल्पनिक संसार आदि के कारण हिन्दी के आलोचकों ने इस मत की पुष्टि नहीं की । दूसरे इसे उपन्यास और कहानी दोनों के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता रहा है । उपन्यास में आवश्यक विश्वसनीय यथार्थ (Probable Reality) की दृष्टि से डॉ.गोपालराय ने उसके औपन्यासिक शिल्प पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया । वस्तुतः 'रानी केतकी की कहानी',

'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' जैसी परम्परागत कथा कृति है । गौरीदत्त तिवारी कृत 'देवरानी-जिठानी की कहानी' (१८७० ई.) भी इस संदर्भ की एक विवेच्य कृति है । कथा में आये पात्रों के नाम, तत्कालीन जीवन संदर्भ व्यावहारिक, अकृत्रिम भाषा आदि को लक्षित करते हुए आलोचकों को उसमें उपन्यास की कतिपय विशेषताएँ मिलती है, परन्तु डॉ.गोपालराय औपन्यासिक शिल्प के अभाव में इसे भी उपन्यास की संज्ञा नहीं देते । उसीके आसपास की मुंशी ईश्वरीप्रसाद कृत 'वामाशिक्षक' को भी उपदेशाख्यानों की श्रेणी में रख सकते हैं । भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' को भी कुछ लोग हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं, परन्तु डॉ.श्रीकृष्णलाल इसे गुजराती और डॉ.वाष्णेय उसे मराठी से अनुदित बताते हैं ।

इस क्रम में और जो तीन उपन्यास आते हैं उनके नाम हैं - 'परीक्षागुरु' (१८८२ ई.), 'निस्सहाय हिन्दू' (१८८८ ई.), तथा 'भाग्यवती' ही प्रथम उपन्यास ठहरता है । परन्तु औपन्यासिक गुणवत्ता की दृष्टि से जो वाद-विवाद प्रचलित है, उनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ.कोटभरे, डॉ.त्रिभुवनसिंह, डॉ.प्रतापनारायण टण्डन, डॉ.रणवीर सांगा, डॉ.नगेन्द्र आदि विभिन्न विद्वान 'परीक्षागुरु' को अंग्रेजी ढब का पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं, तो डॉ.गोपालराय 'निस्सहाय हिन्दू' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास होने का गौरव प्रदान करते हैं । उसकी कथा गोवध की समस्या को लेकर है । 'परीक्षागुरु' में एक बिगड़े हुए व्यक्ति की सुधार कथा आती है । डॉ.सुरेशसिन्हा, डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त तथा डॉ.पारूकान्त देसाई आदि विद्वान पंडित श्रद्धाराम फुल्लोरी कृत 'भाग्यवती' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं । इस संदर्भ में डॉ.सुरेशसिन्हा लिखते हैं - भाग्यवती शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ रचना है । रचनाकार के कलात्मक कौशल ने पराजित पीढ़ी के घृणास्पद एवम् दम घुटनेवाले वातावरण में आशा और विश्वास का संचार करने का प्रयास किया है । भाग्यवती आदर्श का भावनात्मक चित्र नहीं, जीवन का यथार्थ है । भाग्यवती निर्विवाद रूप से हिन्दी का पहला मौलिक एवम् आधुनिक उपन्यास है ।

इस संदर्भ में डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में स्पष्टता विश्लेषित करते हुए रेखांकित किया है -''हिन्दी में उपन्यास का सूत्रपात कब से हुआ इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देने के लिए हमें यह देखना होगा कि हिन्दी का पहला उपन्यास कौन सा है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में

अनेक परम्परा विरोधी बातें कहीं है । वे एक स्थान पर श्रद्धाराम फुल्लोरी के 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास को (रचनाकाल १९३४ वि.सं. - १८७७ ई) स्वीकार करते हैं, तो आगे चलकर वे लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (रचनाकाल १८८२ ई.) को हिन्दी का प्रथम उपन्यास बताते हैं तथा इसके पश्चात् देवकीनन्दन खत्री को भी हिन्दी का प्रथम उपन्यासकार घोषित करते हैं । आचार्य शुक्ल जैसे कई विद्वान एक साथ तीन लेखकों को पहले उपन्यासकार की पदवी से विभूषित कर सकते हैं, किन्तु साधारण विद्यार्थी इस तथ्य को ग्रहण कर पाने में असमर्थ रहता है । इसके अतिरिक्त डॉ.श्रीकृष्णलाल ने 'चन्द्रकान्ता' (१८८१ ई.) को, शिवनारायण श्रीवास्तव ने 'रानी केतकी की कहानी' को तथा डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास के रूप में स्वीकार किया है । इनमें से 'रानी केतकी की कहानी' आधुनिक उपन्यास की श्रेणी में नहीं आता तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उक्त उपन्यास मौलिक न होकर मराठी से अनुदित है । ऐसी स्थिति में इन्हें प्रथम उपन्यास के रूप में मान्यता देना कठिन है । शेष कृतियों में से श्रद्धाराम फुल्लोरी का 'भाग्यवती' ही काल-क्रमानुसार सब से पहले आता है, अतः हम इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास मान सकते हैं । पहली रचना के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें विकास की सभी परवर्ती मंजिलों के दर्शन हो, ऐसा होना संभव भी नहीं । अतः इसमें उपन्यास काव्य का विकसित रूप दृष्टिगोचर न हो तो कोई बात नहीं, इससे इसकी प्राथमिकता का दावा खण्डित नहीं हो सकता ।.

गुजरात में डॉ.पारूकान्त देसाई ने उपन्यास के क्षेत्र में काफी काम किया है । उन्होंने 'भाग्यवती' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास बताते हुए उसके रचना काल को ध्यान में रखा है । '' 'भाग्यवती', 'परीक्षागुरु' और 'निस्सहाय हिन्दू' यह तीनों उपन्यास क्रमशः १८७७, १८८२ तथा १८८८ ई. में प्रकाशित हुए हैं । अतः 'भाग्यवती' असंदिग्धतय पहले की कृति सिद्ध होती है ।''[५] किसी भी विधा में प्रथम संज्ञा प्राप्त रचना में शिल्प सौष्ठव की तमाम शर्ते पूरी हो यह आवश्यक नहीं है, प्रत्युत उसमें कतिपय कमजोरियों का रह जाना ही स्वाभाविक कहा जायेगा, दूसरे उपन्यास में निहित लेखकीय दृष्टि और उस दृष्टि की उपयुक्तता और श्रेष्ठता भी उपन्यास को विशिष्टता प्रदान करता है । इस दृष्टि से विचार करे तो उक्त तीनों उपन्यासों में 'भाग्यवती' की अन्तर्निहित दृष्टि सर्वाधिक उपयुक्त ठहरती है, क्यों कि उसका सीधा आधुनिक काल की एक प्रमुख प्रवृत्ति नारी शिक्षा एवम् नारी

जागरण से है । हिन्दी का यह पहला उपन्यास है, जिसमें नारी शिक्षा की बात को मुस्तैदी के साथ कहा गया है । यह बात भी पहली बार खुलकर आती है कि स्त्री की अवदशा के मूल में उसकी आर्थिक परनिर्भरता है । अत: यदि नारी को इस अवदशा से मुक्त होना हो तो उसे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनना होगा और यह आत्मनिर्भरता शिक्षा के द्वारा ही आ सकती है ।

१.२ उपन्यास की परिभाषा :

उपन्यास की व्याख्या या परिभाषा अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से की है । जो इसप्रकार है -

मनुष्य का जीवन वास्तविक स्थिति है और उस जीवन संदर्भ की काल्पनिक अभिव्यक्ति करने का दायित्व उपन्यास पर आधारित होता है । यहाँ पर दो बातों का होना आवश्यक है । (१) मनुष्य के जीवन की वास्तविक स्थिति और (२) काल्पनिकता । आखिर तक उपन्यास का लेखन उपन्यासकार यानी सर्जक करता है और अपने मस्तिष्क की संवेदना वो अपनी कृति में व्यक्त करता है ।

आई.ए.रिचर्डस् के अनुसार -''सर्जकीय संवेदनों को शब्दों के माध्यम से अभिभावकों तक पहुँचाना यानी संप्रेषण ।''

इस दृष्टि से सर्जक अपने निजी जीवन की निजी कशाक को अपने उपन्यास में चित्रित करता है । उनके लिए निजी संवेदना का होना आवश्यक है ।

उपन्यास मानव जीवन का चित्र मात्र है और उपन्यास का कर्तव्य है - मानवीय पात्रों पर प्रकाश डालना । तद् उपरांत मानवीय जीवन के दबाए हुए रहस्यों का उद्घाटन करना ये तीन स्थिति स्पष्ट करना ही उपन्यास का दायित्व है ।

इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला से बंधा हुआ गद्य कथानक है । तथा दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि इसमें अधिक विस्तार होता है । साथ ही साथ प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र का आकलन

वास्तविकता तथा काल्पनिकता से किया जाता है और महत्वपूर्ण बात है - रसात्मकता ।

यह शब्द उप (समीप) तथा न्यास (भाँति) के योग से बना है । जिसका अर्थ हुआ मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु अर्थात् वह वस्तु प्राकृतिक हो, जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि वह हमारी ही है । इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हो । उपन्यास में पहलीबार सामान्य मध्यमवर्गीय परिवार और उसका परिवेश उभरकर सामने आया है । सैंकडों वर्षो से दीन-हीन उपेक्षित सामान्य लोगों की भावनाओं को उपन्यास ने सर्वप्रथम वाणी प्रदान की । शायद इन्हीं अर्थो में उसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है, जैसे कोई सामान्य के लिए कह दे कि हमारे लिए तो यह 'देहरादुनी' है ।

उपन्यास में दुनिया जैसी होती है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है । उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है । जो प्राय: एक कथासूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।

श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव परिवेशों का निर्माण, उनकी समस्याओं सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक मानसिक संघर्षो से युक्त उसके स्वभावों एवम् मन की मस्तिष्क का पूर्ण जीवित एवम् यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है उसे उपन्यास कहते है ।

उपन्यास यथार्थ मानव अनुभवों एवम् सत्य का आकलन है । वह जीवन की एकता में अनेकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करने का प्रयत्न करता है । उपन्यास में मानव अनुभवों का चित्रण एक विशिष्टता के साथ स्वतंत्र अथवा आदर्शात्मक दृष्टिकोण से किया जाता है । अत: अनिवार्यत: जीवन पर की गई टिप्पणी है । उपन्यास अपनी परिभाषा में जीवन के वैयक्तिक एवम् प्रत्यक्ष प्रभाव का चित्रण है ।

''उपन्यास साहित्य का एक आधुनिक प्रकार है और समाज में निहित सारे अन्याय, अत्याचार, विषमता, विसंगतता, विद्रुपता आदि से इसके द्वारा लड़ा जा सकता है ।''[६]

''उपन्यास इस नये युग के यथार्थ को, उसकी नवीन संकुल परिस्थितियों को, उसके जटिल परिवेश एवम् परिप्रेक्ष्य को, उसके नवीन विचारों व चिन्ताओं को उसके नवीन मानवीय सरोकारों और दायित्वों को रूपायित करनेवाली कथा साहित्य की एक नवीन विधा है ।''७

''वह कल्पित बड़ी कहानी जिसमें बहुत से पात्र तथा जीवन के सब अंगों पर प्रकाश डालनेवाली विस्तृत घटनाएँ हो ।''८

''उपन्यास मानव जीवन की कथा है और उपन्यास के पात्र मानव जीवन के प्रतीक हैं ।''९

''उपन्यास वह विधा है जो व्यक्तिवादी आधुनिक दृष्टि को पूर्णतः प्रतिबिम्बित करती है ।''१०

''उपन्यास मानवजीवन के व्यापक संदर्भो एवम् जीवन यथार्थ के विविध आयामों से शक्ति प्राप्त करता है ।''११

''उपन्यास समाज की आलोचना एवम् विवेचना प्रस्तुत करता है । समाज की यथार्थ स्थिति से अवगत कराना तथा उसमें आई त्रुटियों का निराकरण कराना उपन्यास का कार्य है ।''१२

''उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्य कथा है जो पाठक को एक काल्पनिक पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है ।''१३

''उपन्यास मानवजीवन की सफलतम अभिव्यक्ति है । जीवन के जितने विविध रूपों का निरूपण और सजीव चित्रांकन उपन्यास करता है, उतना साहित्य की अन्य विधाओं द्वारा संभव नहीं ।''१४

''उपन्यास मूलतः जीवन और जगत् का विशद रूप में प्रकाशन करता है । लेखक की जीवन और जगत् की अनुभूति जितनी व्यापक और गहरी होगी, उसका औपन्यासिक वर्णन भी उतना ही व्यापक और गंभीर होगा।''१५

''उपन्यास केवल किस्सागोई नहीं है, वरन् एक प्रकार का ऐसा भाषाई उद्यम है जिसके मार्फत एक और जीवन समूह अपनी अनुभवधारा के समूचे प्रवाह के समस्त रूपों के साथ अपने पाठकों के अनुभवों में दुबारा साकार होता है ।''१६

''उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है । मानव व्यक्तित्व की विशालता, दुरुहता, गंभीरता एवम् रहस्यमयता की आधारभूमि पर ही उपन्यास का सूत्रपात होता है ।''१७

''उपन्यास मानवजीवन के निकट होता है । मानवों के चरित्रों पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालना उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है ।''१८

''उपन्यास का संबंध जीवन से है । उपन्यास जीवन की व्याख्या है, इसके बिना वह मृत है । इस संसार में मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता और करता है, वही उसके जीवन की पहचान है । उपन्यास इसी आँखों देखे, कानों सुने संसार को विषय बनाता है ।''१९

''उपन्यास मानव के वैविध्यपूर्ण स्वभाव, बुद्धि वैभव तथा भाव समृद्धि को आकर्षक रूप में चित्रित करने के लिए अनुपम साहित्यिक विधा है ।''२०

''शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास शब्द की व्याख्या करे तो पता चलता है कि उपन्यास शब्द संस्कृत की अस् धातु से उत्पन्न हुआ है । जिसका अर्थ है रखना या असुक्षेपण । उप और नि पूर्वक अस् धातु में धम् प्रत्यय जोड़ने से ही उपन्यास शब्द बना है ।''२१

वस्तुतः उपन्यासकार अपने उपन्यास में मानवजीवन की मीमांसा (समीक्षा) करता है । मानवजीवन की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों का, उसके मन के संघर्ष का, चारों ओर के वातावरण और समाज का एक काल्पनिक कथा चित्रण उपन्यास है । किन्तु ये काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ होता है । इसमें जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति होती है । इसमें जीवन की विभिन्न घटनाओं का निश्चित क्रम होता है । सिर्फ ये घटना यथार्थ पर नहीं, कल्पना पर आधारित होती है । इसलिए इनमें रोचकता, मनोरंजकता और रसप्रदता अधिक होती है । वास्तव में उपन्यास मनुष्य जीवन का प्रतिबिम्ब है और इसीलिए वह अन्य विधाओं से अधिक लोकप्रिय रहा है ।

१.३ हिन्दी उपन्यास : विकासयात्रा :

हिन्दी की किसी भी साहित्यिक विधाओं की विकासरेखा स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने कुछ चरण बनाये हैं । जैसे भारतेन्दुयुग, द्विवेदीयुग, छायावादयुग और छायावादोत्तरयुग । इन युगों के अंतर्गत विभाजित किसी भी विधा का विकास परखा जाता है । लेकिन जहाँ तक उपन्यासधारा की बात है, वहाँ उपन्यास की विकासरेखा स्पष्ट करने के लिए उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंदजी की गरिमा को ध्यान में रखते हुए कुछ विद्वानों ने निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया हैं - (१) पूर्वप्रेमचंदयुग (भारतेन्दुयुग, द्विवेदीयुग), (२) प्रेमचंदयुग और (३) प्रेमचंदोत्तरयुग ।

उपन्यास हिन्दी साहित्य में एक नई विधा है । नई होने पर भी यह एक लोकप्रिय विधा मानी गई है । आज के व्यस्त समय में भी लोगों को मनोरंजन देनेवाला यह साहित्य स्वरूप हिन्दी की अपनी देन रहा है । हिन्दी का उपन्यास साहित्य बंगला तथा अंग्रेजी साहित्य के उपन्यासों से प्रभावित है । हिन्दी के प्रथम उपन्यास के रूप में 'भाग्यवती' (१८७७ ई.) और 'परीक्षागुरु' (१८८२ ई.) के बीच मतमतांतर की स्थिति रही है । १८७७ ई. में 'भाग्यवती' और १८८२ ई. में 'परीक्षागुरु' का निर्माण हुआ । विद्वानों ने साहित्यिकता और कल्पना की अतिरेकता को ध्यान में रखकर 'परीक्षागुरु' को प्रथम उपन्यास के रूप में स्वीकार किया है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु द्वारा लिखित 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' को प्रथम उपन्यास माना है । इसप्रकार हिन्दी के प्रथम उपन्यास के विषय में विवाद

की स्थिति है । फिर भी हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी उपन्यासधारा का सूत्रपात भारतेन्दुयुग से ही हो चुका था ।

१.३.१ पूर्वप्रेमचंदयुग (भारतेन्दुयुग, द्विवेदीयुग) :

विद्वानों ने प्रेमचंद की गरिमा को ध्यान में रखकर युगों का जो विभाजन किया है, उसमें पूर्वप्रेमचंदयुग का स्थान महत्वपूर्ण है । भारतेन्दुयुग तथा द्विवेदीयुग का समावेश पूर्वप्रेमचंदयुग में हो जाता है ।

यह सही है कि भारतेन्दुपूर्व भी साहित्य तत्त्वों के अभाव में कुछ उपन्यास लिखे गये थे । लेकिन उपन्यासों के विकास का मूल आधार भारतेन्दुयुग ही रहा । इस युग में हिन्दी उपनयास की नींव डाली गई । इसप्रकार अधिकतर विधाओं का उद्‌भव इस युग में हुआ । उसी तरह उपन्यास का वास्तविक आरंभ भी इसी युग में माना गया । भारतेन्दुयुग में भिन्न-भिन्न विषयों के उपन्यासों का निर्माण हुआ । जैसे सामाजिक, जासूसी, रोमानी और कुछ मात्रा में ऐतिहासिक उपन्यास भी इस युग में लिखे गये । इस युग के प्रमुख उपन्यासकार लाला श्रीनिवासदास, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, बालकृष्ण भट्‌ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त आदि ।

सामाजिक उपन्यास प्रमुखत: इसप्रकार रहे हैं - (१) बालकृष्ण भट्‌ट - नूतन ब्रह्मचारी (२) राधाकृष्णदास - निस्सहाय हिन्दू (३) बालकृष्ण भट्‌ट - सौ अंजान एक सुजान (४) लज्जाराम शर्मा - धूर्त रसिकलाल । इस युग के सामाजिक उपन्यासों की विशेषता यह है कि इनमें उपदेशवृत्ति अधिक दृष्टव्य होती है ।

भारतेन्दुयुगीन उपन्यास में प्रमुखत: तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास इसप्रकार रहे हैं - देवकीनन्दन खत्री कृत चन्द्रकान्ता, चन्दंकान्ता संतति, विरेन्द्रवीर, नरेन्द्र मोहिनी आदि । इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि इसमें अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं का प्राधान्य रहा है । इन उपन्यासों में वास्तविकता से दूर रहनेवाले प्रसंगों का निरूपण किया जाता है ।

''जासूसी उपन्यास लेखकों में गोपालराम गहमरी का नाम उललेखनीय है। भारतेन्दुयुग के प्रमुख जासूसी उपन्यास गोपालराम गहमरी कृत अद्‌भूत लाश, गुप्तचर, लखनऊ की कब्र आदि रहे हैं।''२२

भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों का अपना अनोखा महत्व रहा है । इस युग के उपन्यासों में भले ही कुछ सामाजिक उपन्यास लिखे गये हो लेकिन इन उपन्यासों में वास्तविकता की तुलना में कल्पना का प्राधान्य अधिक रहा । भारतेन्दुयुगीन उपन्यास इस दृष्टि से विशिष्ट रहे हैं कि उन्होंने उस समय के शिक्षित वर्ग को मनोरंजन देने का कार्य बखूबी निभाया ।

निष्कर्षत: रूप में कहे तो 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' के विवाद से शुरू होनेवाले इस युग के उपन्यासों की प्रचुर संख्या रही है । फिर भी इन सभी उपन्यासों का जितना ऐतिहासिक महत्व रहा है, उतना कदाचित साहित्यिक महत्व नहीं है । इसप्रकार हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल के इस प्रारम्भिकयुग - भारतेन्दुयुग में उपन्यासों के बीज बोने का कार्य हुआ है ।

द्विवेदीयुगीन उपन्यास साहित्य समृद्ध रहा है । इस युग में भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर उपन्यास लिखे गये । इस युग ने हिन्दी साहित्य को सुप्रसिद्ध उपन्यास दिये । द्विवेदीयुग के उपन्यासों में भी विषय वैविध्य देखा जा सकता है। इस युग के उपन्यासों में तिलस्मी-ऐयारी, अद्‌भूत घटनाप्रधान, ऐतिहासिक तथा सामाजिक इत्यादि प्रकार के उपन्यास प्राप्त हुए ।

''द्विवेदीयुग में तिलस्मी-ऐयारी प्रकार के उपन्यास प्रचुर मात्रा में लिखे गये । ऐसे उपन्यासों में कल्पना की अतिरेकता और चमत्कारपूर्ण प्रसंगों का प्राधान्य रहा है।'' २३ ऐसे उपन्यासों में प्रमुख हैं - देवकीनन्दन खत्री कृत 'काजल की कोठरी', 'अनूठी बेगम', 'भूतनाथ', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'तिलस्मी शीशमहल' आदि। द्विवेदीयुगीन जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी पूरी तरह छा गये हैं । गोपालराम गहमरी कृत 'जासूस की भूल', 'जासूस पर जासूसी', 'जासूस चक्कर में', 'सरकटी लाश', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'अद्‌भूत लाश' आदि । इसप्रकार गोपालराम गहमरी इस क्षेत्र में पूरी तरह सफल जासूसी उपन्यासकार रहे हैं ।

अद्‌भूत घटनाप्रधान उपन्यासों की रचना तिलस्मी-ऐयारी और जासूसी उपन्यासों से कुछ अलग तरह से होती है । द्विवेदीयुगीन ऐसे उपन्यासकारों में निहालचन्द्र वर्मा कृत 'मिस जोहरा', बांकेमल चतुर्वेदी कृत 'खोफनाक खून', प्रेमविलास वर्मा कृत 'प्रेम माधुरी', दुर्गादास खत्री कृत 'अद्‌भूत भूल' आदि ।

ऐतिहासिक उपन्यास द्विवेदीयुग में काफी मात्रा में लिखे गये । इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी और गंगाप्रसाद गुप्त प्रमुख रहे हैं । किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'सुलतानी रजिया बेगम', 'रंग महल में हलाहल', 'मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी', गंगाप्रसाद गृप्त कृत 'नूरजहाँ', 'हम्मीर' आदि ।

द्विवेदीयुग में कुछ सामाजिक उपन्यास भी लिखे गये हैं । किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे प्रमुख उपन्यासकारों ने ऐसे उपन्यासों का सर्जन किया । किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'मालती माधव', 'मदन मोहन', 'लिलावती वा आदर्शवती', अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', लज्जाराम शर्मा कृत 'आदर्श दम्पति', 'आदर्श हिन्दू' आदि ।

द्विवेदीयुगीन उपन्यासों की विशेषता दृष्टव्य रही है कि द्विवेदीयुगीन उपन्यास विविध विषयों पर लिखे गये हैं । इस युग के उपन्यासों में सबसे अधिक प्रभाव कल्पनारंजित उपन्यासों को अर्थात् तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी आदि उपनयासों का ही रहा है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास तत्व की कमी दिखाई पड़ती है । ''अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास मुस्लिमकाल की घटना या पात्र पर ही लिखे गये हैं ।''[२४] इस युग के सामाजिक उपन्यास नैतिकता और अनैतिकता के संघर्ष को व्यक्त करते हैं । सामाजिक उपनयास में आदर्श प्रेम के साथ-साथ अवैध प्रेम, अंधविश्वासों का निरूपण आदि के प्रति लेखकों का दृष्टिकोण रहा है । इस युग के उपन्यासों की भाषा आम बोलचाल की भाषा ही रही है । इस युग में भी कुछ अनुदित उपन्यास सामने आये । अंग्रेजी तथा बंगला से उपन्यासों का अनुवाद किया गया । इनमें महावीर प्रसाद का 'टॉम काका की कुटिया' उपन्यास उल्लेखनीय रहा है । इसप्रकार द्विवेदीयुगीन उपन्यासों का विशेष महत्व रहा है ।

१.३.२ प्रेमचंदयुग :

काल विभाजन की दृष्टि से इस युग को छायावादीयुग कहा जाता है । लेकिन उपनयास सम्राट प्रेमचंद की गरिमा को केन्द्र में रखकर इस युग का नाम 'प्रेमचंदयुग' रखा गया है । इस युग के उपन्यासों में भारतेन्दु तथा द्विवेदीयुग के उपन्यासों की तुलना में कुछ बदलाव नजर आता है । इस युग के उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक तथा कुछ मात्रा में मनोवैज्ञानिक तरह के रहे हैं ।

प्रेमचंद, सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, विश्वंभरनाथ शर्मा और प्रतापनारायण मिश्र ये सभी उपन्यासकार प्रेमचंद के प्रभाव से प्रभावित रहे । अत: इस युग के उपन्यासों को प्रवृत्तिगत न लेते हुए प्रेमचंद तथा उसके समकालीन उपन्यासों को परिचयगत लिया जा सकता है। इस युग में विशेष उपन्यास का उभरकर सामने आये ।

प्रेमचंद छायावाद के प्रमुख उपन्यासकार थे । प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य को उत्कृष्ट उपन्यास दिये । जीवन की वास्तविकता तथा समाज की यथार्थ स्थिति का अनुभव प्रेमचंदजी के उपन्यास में होता है । ''प्रेमचंदजी ने कई उपन्यास लिखे,जिनमें से प्रमुख उपन्यास इस प्रकार है - सेवासदन-१९१८, प्रेमाश्रम- १९२०, रंगभूमि-१९२५, कायाकल्प-१९२६, कर्मभूमि-१९३२, निर्मला-१९२६, गोदान-१९३६, मंगलसूत्र-१९३६, गबन आदि ।''[२५]

प्रेमचंद एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जो हिन्दी साहित्य संसार की अमूल्य धरोहर है । सन् १८८० में उत्तरप्रदेश के लमही नामक गाँव में मुंशी घराने में पैदा होनेवाले प्रेमचंद को आज पूरा साहित्य संसार जानता है । प्रेमचंद की जिन्दगी में संघर्ष अधिक रहा है । लेकिन प्रेमचंद का निजी जीवन में जितना संघर्ष रहा, उतना ही उनका लेखन कार्य रोचक रहा ।

उपन्यासकार प्रेमचंद की अपनी अनोखी पहचान रही है । भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को लेकर प्रेमचंद ने उपन्यासों का सर्जन किया है । 'सेवासदन', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'निर्मला' महत्वपूर्ण उपन्यास रहे हैं । उपन्यासकार प्रेमचंद अपने अलग व्यक्तित्त्व की पहचान दे जाते हैं । उन्होंने अपने

उपन्यासों में आदर्श समाज या समाज की आदर्श स्थिति की कल्पना की है । प्रेमचंद के उपन्यास समाज के ऐसे रूप को व्यक्त करते हुए भी आदर्श समाज की कल्पना की है । 'सेवासदन' उपन्यास में सुमन के चरित्र का सुधार आदर्शवादी दृष्टिकोण का उत्तम उदाहरण है । 'प्रेमाश्रय' तथा 'सेवासदन' के पश्चात् 'रंगभूमि' नामक उपन्यास का भी वैशिष्ट्य रहा है । इस उपन्यास में गांधीवाद का प्रभाव लक्षित होता है । सूरदास का पात्र आदर्श पात्र है । इस उपन्यास में प्रेमचंदजी पूर्ण रूप से गांधीवाद की स्थापना करते हैं । इसके अलावा प्रेमचंद की उपन्यासयात्रा का अगला सोपान है 'गबन' । स्त्री को प्राय: गहनों के प्रति आकर्षण रहता है । ऐसी स्थिति में एक मध्यमवर्गीय गृहस्थ को कैसी-कैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इस बात का चित्रण प्रेमचंदजी ने 'गबन' उपन्यास में दिया है । इसके अतिरिक्त 'कर्मभूमि' तथा 'कायाकल्प' नामक उनके उपन्यासों में राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' उनके लघुउपन्यास है । 'प्रतिज्ञा' नामक लघुउपन्यास में प्रेम की साधना तथा कर्तव्य के बीच समन्वय स्थापित किया गया है । जब कि 'निर्मला' नामक उपन्यास में विधुर-विवाह के दुष्परिणामों की एक झलक प्रस्तुत की गई है ।

प्रेमचंद के साथ-साथ इस युग के अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद का उल्लेखनीय योगदान रहा है । उन्होंने नाटक के साथ-साथ उपनरूास के क्षेत्र में भी लेखनी चलाई । उन्होंने निम्नलिखित उपन्यासों का सर्जन किया । (१) कंकाल, (२) तितली (३) ईरावती । इनके उपन्यास ऐतिहासिक रहे हैं ।

प्रेमचंदयुगीन अन्य उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय रहा । जिनके प्रमुख उपन्यास है - 'रेखा', 'चित्रलेखा', 'सब ही नचावत राम गोसाई' आदि । ''इसके अलावा अन्य उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा का नाम भी शामिल है । उनके प्रमुख उपन्यास - 'संगम', 'लगन', 'विराट' आदि । उनके उपन्यास में सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषय रहा है ।''[२६]

सियारामशरण गुप्त ने भी प्रेमचंदयुगीन उपनयासों में अपना योगदान दिया । उनके प्रमुख उपन्यासों में - 'गोद', 'नारी', 'अंतिम आकांक्षा' आदि हैं । प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों में एक और महत्वपूर्ण नाम रहा है - विश्वंभरनाथ शर्मा। इनके प्रमुख उपन्यास है - 'भिखारिणी', 'माँ', 'संघर्ष' आदि । इसी काल में

जैनेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का निर्माण किया । जो इसप्रकार है - 'सुनिता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'मुक्तिबोध', 'सुखदा', 'विवर्त', 'परख' आदि ।

हिन्दी उपन्यासधारा में प्रेमचंदयुग को उपन्यास साहित्य का विकसितकाल हम कह सकते हैं । क्यों कि इस युग में रचे गये उपन्यासों ने शुद्ध साहित्यिक और सही उपन्यास के रूप में पहचान पाई । अत: प्रेमचंदयुग को हम हिन्दी उपन्यासधारा का विकास काल कह सकते हैं । यह सही है कि इस युग के सभी उपन्यासकारों पर प्रेमचंद का प्रभाव पड़ा । लेकिन यह भी झूठ नहीं है किस प्रभाव के बावजूद सभी उपन्यासकारों के उपन्यास के विषय अलग-अलग रहे । अर्थात् प्रेमचंदजी ने सामाजिक, जैनेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक, प्रसाद ने ऐतिहासिक लिखे । प्रेमचंदयुग में जैनेन्द्रकुमार, वृंदावनलाल वर्मा, कौशिकजी, सियारामशरण गुप्त आदि जैसे सशक्त उपन्यासकारों की पहचान प्राप्त हुई । इस युग में सामाजिक उपन्यासों में समाज केन्द्र में रहा, समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ केन्द्र में रही । ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता की प्रामाणिकता का निर्माण हुआ । इस युग के उपन्यासकारों के द्वारा विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग भी हुआ । इसप्रकार प्रेमचंदयुग के उपन्यास पूर्णत: सफल एवं सवोच्च रहे हैं ।

१.३.३ प्रेमचंदोत्तरयुग :

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों को हम हिन्दी उपन्यासधारा कर यौवनकाल कह सकते हैं । क्यों कि इस काल में हिन्दी उपन्यासधारा पूर्ण रूप से विकसित हो उठी थी । प्रेमचंदयुग में गांधीजी का प्रभाव रहा । जब कि इस युग में कार्ल माक्र्स का प्रभाव रहा । फ्रोइड, सार्स इत्यादि का प्रभाव रहा । परिणाम स्वरूप इस युग की उपन्यासधारा विभिन्न प्रवाहों में बही । आलोच्ययुग के उपन्यासकारों में अज्ञेय, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन इत्यादि उपन्यास- कार उल्लेखनीय रहे । इन उपन्यासकारों के कर-कमलों से लिखे जानेवाले उपन्यास रचना को कुछ विशिष्ट भागों में विभाजित किया गया है । जैसे - ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आँचलिक, सामाजिक, समाजवादी आदि ।

१.३.३.१ ऐतिहासिक उपन्यास :

प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यासों में ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी अलग पहचान है । ''इस युग में कुछ ऐतिहासिक घटना या चरित्र को आधार बनाकर ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये ।''[२७] इतिहास तत्वों की प्रामाणिकता पर बल देनेवाले बहुत से उपन्यासकारों में निम्नलिखित प्रमुख रहे हैं ।

वृंदावनलाल वर्मा कृत 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', यशपाल कृत 'दिव्या', 'अमिता', राहुल सांकृत्यायन कृत 'देवदास' कुल मिलाकर कहा जाये तो इस उपन्यासकारों का मूल आशय ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा इतिहास की अस्मिता और गौरव को अखण्डित रखना है । ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने इस आशय के साथ-साथ हमारी सांस्कृतिक गतिविधियों को भी निश्चिंत रखने का भरपुर प्रयास किया है ।

१.३.३.२ मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

''मनोवैज्ञानिक प्रकार के उपन्यास में मानव मन की विभिन्न स्थितियों का, उसके मन के अंर्तद्वंद्व का, उसके मन में क्रमशः पनपनेवाले राग-विराग इत्यादि का निरूपण होता है ।''[२८] ऐसे उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास की संज्ञा प्राप्त करते हैं। ऐसे उपन्यासों में व्यक्ति के मन, व्यकित के अस्तित्व आदि के प्रति विचार व्यक्त कियें जाते हैं । प्रेमचंदोत्तरयुग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय, ईलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र आदि प्रमुख रहे हैं । अज्ञेय कृत 'नदी के द्वीप', 'शेखर एक जीवनी'-भाग १,२, 'अपने-अपने अजनबी', ईलाचन्द्र जोशी कृत 'संन्यासी', 'जहाज का पंछी', 'जिप्सी', धर्मवीर भारती कृत 'गुन्हाओं का देवता' आदि ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास के क्षेत्र में इसप्रकार के कई उपन्यासकारों का योगदान रहा । इस युग में लिखे गये अज्ञेयजी के उपन्यासों का प्रभाव लक्षित होता है । उनके उपन्यासों में मानव मन के द्वारा व्यक्त अस्तित्ववाद की चिन्ता निरूपित हुई है। दूसरी ओर ईलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में भी कुण्ठा, लघुता और मन की अहंकार भावना पीड़ित लोगों के चित्र प्रस्तुत किये गये है । इसप्रकार इस युग के

उपन्यासकारों में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का एक निश्चित बनाने का सफल प्रयास किया है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिवादी उपन्यास परम्परा में जैनेन्द्र सिरमौर है । जिन्होंने उपन्यासों के माध्यम से मनुष्य की मानसिक सूक्ष्म वैज्ञानिक विचारधारा का दर्शन करवाया । उपेन्द्रनाथ अश्क के कहानी तथा उपन्यास साहित्य में मानसिक चित्रण के साथ-साथ महात्मा गांधी की अहिंसक प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा था । अब हम जैनेन्द्रजी के प्रमुख उपन्यासों को संक्षिप्त में देखे-

परख: परख की कथा मास्टर सत्यधन और बालविधवा कट्टों के आस्तिकमय संघर्ष की कथा रही है । जिसमें नायक आदर्शवादी है । जो कट्टो के प्रेम में जीवन की सिद्धि का पंथ प्रशस्त करता है ।

सुनिता: सुनिता मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कृति है । संवेदनशील पाठकों के लिए बौद्धिक अध्य व्यवसाय की कथा है । जिसमें सुनिता, हरिप्रसन्न और श्रीकांत आदि चरित्रों के अंर्तद्वंद्व की कथा है ।

त्यागपत्र : त्यागपत्र नारी जीवन की गहन पीड़ा की अनुभूति की अभिव्यक्ति को लेकर आई है । भारतीय नारी जीवन में यातनाओं का सिलसिला उसे कुण्ठा और सुन्न बना देता है । वह खण्डित हो जाती है । जिससे वह दु:खी होती है । पर आदर्श का बहलदान नहीं देती और संवेदनशील प्रेम का मानवीय प्रेम को उच्चस्तरीय बनाने में मग्न रहती है । जिनका प्रमुख नायक मृणाल है । जो एक आदर्श चरित्र है । यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास है ।

कल्याणी : कल्याणी का कथानक अतृप्त प्रेम का रहा है । नायिका के प्रेम में विफल होने पर मानवीय प्रेम से वह ऐश्वर्य प्रेम की ओर प्रेरित होती है और कुछ दार्शनिकता की बातें कर जाती है । कल्याणी प्रेम, आदर्श के लिए अपना बलिदान कर देती है ।

सुखदा : इस उपन्यास में नारी के अहम, अस्तित्व और जीवन के प्रति अनोखे दृष्टिकोण की कथा है । नायिका सुखदा वैवाहिक जीवन से संतुष्ट नहीं है और

सार्वजनिक जीवन यापन करने की भावना रखनेवाली है । इसमें उसके प्रेम और अस्तित्व के द्वंद्व को प्रस्तुत किया गया है ।

विवर्त : विवर्त उपन्यास में नारी की जटिल समस्याओं को उठाया गया है । प्रेम विवाह आदि समस्याओं पर सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है ।

व्यतित : यह उपन्यास असफल प्रणय की कथा का विस्तार है । जिसमें प्रमुख नायिका अनिता और ना यक जयंत है ।

जयवर्धन : इस उपन्यास में विवाह संस्था का विषय रहा है । इसमें घटना के बजाय चरित्र पर जोर दिया गया है । उपन्यासकार ने मनोवैज्ञानिक स्वर पर समस्याओं को उठाया है । जिसमें चरित्र जयवर्धन और नायिका इला के प्रेम की कथा है ।

इसप्रकार जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषण शैली का स्वाभाविक प्रयोग किया है । उनका मानना है कि सचमुच जो शास्त्रों में नहीं मिलता, वह ज्ञान अपनी व्यथा में मिल जाता है ।

१.३.३.३ सामाजिक उपन्यास :

प्रेमचंदपूर्वयुग से लेकर प्रेमचंदोत्तरयुग तक पहुँचनेवाली हिन्दी उपन्यास धारा सामाजिक उपन्यासों की लंबी परम्परा सुनिश्चित दिशा में आगे बढ़ी । प्रेमचंदोत्तरयुग में भी कई सामाजिक उपन्यास लिखे गये । इन उपन्यास तथा उपन्यासकारों में प्रमुख रूप से इसप्रकार रहे । उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'गर्मराह', 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', निरालाजी कृत 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़', भगवतीचरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र', 'रेखा' आदि ।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की श्रृंखला में सामाजिक उपन्यासों का अपना विशिष्ट महत्व रहा है । ''इस युग के उपन्यासकारों ने समसामयिक, तत्कालीन सामाजिक घटनाओं तथा सामाजिक समस्याओं पर अपना लेखन कार्य किया ।''[२९] अन्य युगों में भी सामाजिक उपन्यास लिखे गये । लेकिन उन युगों के सामाजिक उपन्यासों में

उपदेशात्मक वृत्ति प्रधान रही थी । लेकिन आलोच्ययुग के सामाजिक उपन्यासों की तुलना में विशिष्ट और उनसे एक कदम आगे है । अर्थात् प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यास आनेवाले काल के लिए कुछ संदेश दे जाते हैं ।

१.३.३.४ समाजवादी उपन्यास :

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासधारा में समाजवादी उपन्यासों का भी अपना महत्व रहा है । ''कार्ल माक्र्स के प्रभाव में आनेवाले कुछ उपन्यासकारों ने सामाजिक चेतना को जगानेवाले ऐसे समाजवादी उपन्यासों का निर्माण किया ।''[३०] ऐसे समाजवादी उपन्यासों में शोषण, शोषित की वास्तविक स्थिति तथा समाज के वर्ग संघर्ष को निरूपित किया जाता है । ऐसे समाजवादी उपन्यासों को प्रगतिवादी उपन्यास भी कहा जाता है । इस तरह के उपन्यासकारों में यशपालजी का नाम आदरपूर्वक लिया जा सकता है ।

यशपाल कृत 'देशद्रोही', 'झूठासच', 'दादा कामरेड', भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'मशाल', 'गंगामैया', मनमननाथ गुप्त कृत 'बहता पानी', लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'धरती की आँखे' आदि । इस तरह के उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण सामाजिकता के साथ-साथ समाज के वर्ग-वैमनस्य, समाज की वर्गभेद नीति आदि को व्यक्त करना ही रहता है ।

१.३.३.५ प्रयोगवादी उपन्यास :

हिन्दी में प्रयोगवादी उपन्यासधारा की भी अपनी विशिष्ट पहचान है । ''कविता में नये प्रयोग के साथ-साथ उपन्यास में भी नये प्रयोग हुए ।''[३१] इस श्रेणी के प्रमुख उपन्यासकारों में प्रभाकर माचवे, डॉ.धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद आदि रहे हैं । प्रभाकर माचवे कृत 'परन्तु', डॉ.धर्मवीर भारती कृत 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' कृत 'बहती गंगा', गिरिधर गोपाल कृत 'चाँदनी रात के खण्डहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कृत 'सोया हुआ जल', नरेश मेहता कृत 'एक चूहे की मौत' आदि विशेष उल्लेखनीय रचना रही है ।

हिन्दी आधुनिक उपन्यासों में आधुनिक बोध का निरूपण करनेवाले उपन्यासों का सर्जन भी हुआ है । अस्तित्ववाद की चिन्ता के कारण आधुनिकता की जो स्थिति पैदा हुई है, उसे लेकर उपन्यासों की रचना हुई । आस्थाविहीन समाज इसमें निरूपित किया गया ।

मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे'-१९६१ में प्रेम की विविध अवस्थाओं और आधुनिक जीवन की चर्चा की है । उनके दूसरे उपन्यास 'न आनेवाला कल' में अत्याधुनिकता के दर्शन होते हैं । निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' आधुनिक संवेदना प्रधान उपन्यास है । ''पश्चिम के अर्थहीन परिवेश में जिस छोटे सुख की तलाश इस उपन्यास में की गई है, वह आज के संदर्भ में सही ठहरता है।''[३२] राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' में समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है । श्रीकान्त वर्मा कृत 'दूसरी बार', महेन्द्र भल्ला कृत 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर कृत -डाक बंगला' और 'काली आँधी', गंगाप्रसाद विमल कृत 'अपने से अलग' आदि विशेष रही है । ''आज के जीवन सत्य की आँशिक झलक देते हुए भी इन्हें चुकी हुई संभावनाओं के उपन्यास कहा जायेगा । आधुनिकता के कुछ चुनिन्दा नुस्खों अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ मुहावरों, ज्या जेने सादे कामू काफ्का की भंगिमाओं के आधार पर लिखे गये इन उपन्यासों को देखने पर निराशा ही हाथ लगेगी ।''[३३] नरेश मेहता कृत 'यह पथ बंधू था', 'नदी यशस्वी है', श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' रिपोर्ताज शैली में लिखे गये उपन्यास है । निर्मल वर्मा कृत 'लाल टीन की छत', मन्नू भंडारी कृत 'आप का बंटी', भीष्म साहनी कृत 'तमस', गिरिराज किशोर कृत 'जुगलबंदी', कृष्णा सोबती कृत 'डार से बिछुड़ी', 'लाल दीवारें', रमेश बक्षी कृत 'अठारह सूरज के पौधे', जगदंबा प्रसाद दीक्षित कृत 'मुर्दाघर' आदि सविशेष उपन्यास व उपन्यासकार रहे हैं। जिन्होंने आधुनिक जीवन बोध को अपने उपन्यासों में साकार करने का प्रयास किया है और काफी हद तक सफल भी रहे हैं ।

प्रेमचंदोत्तरयुगीन साहित्य की विशेषताएँ देखे तो उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद के पश्चात् प्रेमचंदोत्तरयुग की उपन्यासधारा में विशिष्ट दिशा में ही बही । इस युग के उपन्यास भी विभिन्न विषयों को लेकर लिखे गये । प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यास साहित्य हिन्दी उपन्यासधारा का पूर्ण विकसित काल रहा है । इस युग ने हिन्दी उपन्यासधारा को कई ऐसे नये उपन्यासकारों का भी परिचय

दिया है । जिनमें अज्ञेय, यशपाल, राजेन्द्र यादव, ईलाचन्द्र जोशी आदि का समावेश होता है । मनोवैज्ञानिक और आँचलिक जैसे कुछ नये उपन्यास भी सामने आये प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य को भले ही कुछ विद्वानों ने १९४०-५० और १९५०-६० इसप्रकार के दो दशकों में विभाजित करने का प्रयास किया है, पर कुल मिलाकर हम यह भी कह सकते हैं ि कइस समय अवधि में जो उपन्यास हमें प्राप्त हुए वे हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि माने जायेंगे ।

१.४ हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव-विकास :

उपन्यास गद्य साहित्य की केन्द्रिय विधा के रूप में स्थापित हो चुका है । वर्तमान दौड़धूप की जीवन शैली में इस विधा के प्रति पाठकों की ललक इसकी सामर्थ्य की सूचक है । इसी कारण आलोचना जगत् में भी इसकी निरंतर चर्चा हो रही है । इस विधा ने प्रारंभ से ही गतिशील और परिवर्तनशील जीवन के विभिन्न आयामों को लक्ष्य बनाया है । इनमें मानवजीवन के बहुआयामी चित्र, भावबोध, जीवन दर्शन, मूल्य और युगीन परिवेश को समेटने का प्रयास हुआ है । हिन्दी उपन्यास अपने विकास की सुदीर्घ यात्रा पूर्ण कर चुका है । इस विकासयात्रा में उसने अनेक महत्वपूर्ण संदर्भ और उपलब्धियाँ प्रदान की है । इससे उसका रूप प्रगल्भ, प्रौढ़ और निखरा हुआ दिखाई देता है । इस विधा ने हिन्दी साहित्य को 'मील के पत्थर' जैसी अनेक सशक्त और कालंजयी कृतियाँ प्रदान की । अपनी विकासयात्रा में इसने विभिन्न रूपों तथा प्रकारों को प्रस्तुत किया है । इनमें आँचलिक उपन्यास अपनी निजी एवम् महत्वपूर्ण पहचान रखता है ।

''आँचलिकता की प्रवृत्ति ने विश्व साहित्य को प्रभावित किया है । हिन्दी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है ।'' ३४ देश की प्राकृतिक एवम् सांस्कृतिक विविधता के तहत भारतीय साहित्य में उसका स्वागत एवम् प्रसार विविधोन्मुखी रूप में हुआ । औपन्यासिक विधा से इसका अत्यधिक तादात्म्य स्थापित हुआ है । इस प्रवृत्ति ने उपन्यास विधा को माटी की गंध से जोड़ने का प्रामाणिक और महत्वपूर्ण प्रयास किया है । इसके माध्यम से हाशिए पर जीवन जीनेवाले पिछड़े और अछूते अँचलों को वाणी प्राप्त हुई है । इसने व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को लक्ष्य बनाया है । इसीकारण इसका रूप पूर्णत: जनतांत्रिक बन गया है । इसने

जनसाधारण के जीवन एवम् संस्कृति को स्थानीय भाषा के पुट के साथ प्रस्तुत किया है । उपन्यास के कथ्य एवम् शिल्प में इसने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है ।

''हिन्दी आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव को लेकर मतभिन्नता है । अधिकांश विद्वान इसे स्वातंत्रोत्तर उपलब्धि मानते हैं । तो कुछ विद्वान इसका अभ्युदय स्वातंत्रतापूर्वयुग तक खिंच ले जाते हैं ।''[३५] वैसे कोई भी प्रवृत्ति साहित्य में तत्काल अवतरित नहीं होती है और न विकसित । उसके पिछे एक सुदीर्घ परम्परा कार्यरत रहती है । आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव के पिछे भी प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, निराला, नागार्जुन आदि के उपन्यासों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इनके उपन्यासों को विशुद्ध आँचलिक तो नहीं कहा जा सकता लेकिन परवर्तीकाल में विकसित होनेवाले विशुद्ध आँचलिक उपन्यासों के उद्‌भव के लिए पृष्ठभूमि निर्माण करने का कार्य इन्हीं के द्वारा हुआ है ।

स्वतंत्रतापूर्व या रेणुपूर्वयुग आँचलिक उपन्यासों का प्रथम उत्थान काल है। इस युग में लिखे गये उपन्यास विशुद्ध आँचलिक नहीं है । इनमें आँचलिकता के कुछ तत्वों का निर्वाह हुआ है । इन उपन्यासों में 'बलवंत भूमिहार' (१९०१), 'रामलाल' (१९१४), 'देहाती दुनिया' (१९२६), 'गोदान' (१९३६), 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१९४१), 'रतिनाथ की चाची' (१९४४), 'कचनार' (१९४७) आदि उपन्यास उल्लेखनीय है । इन उपन्यासों के विचित्र वातावरण ने ही आगे चलकर आँचलिकता का व्यापक रूप धारण किया है ।

''स्वातंत्रोत्तर भारत में विभिन्न स्थित्यंतर पाए जाते हैं । इस युग में जीवन के साथ साहित्य में भी समांतर रूप में परिवर्तन हुआ । परिणाम स्वरूप बदलते संदर्भो को समेटने के लिए वह विभिन्न रूप लेता रहा ।''[३६] अधिकांश विद्वान आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव के पिछे व्यक्तिवादी चेतना का विरोध स्वीकार करते हैं । दूसरी ओर इसे पाश्चात् प्रभाव या अनुकरण से भी जोड़ा जाता है । मूलत: आँचलिक उपन्यास का उद्‌भव किसी प्रतिक्रिया, अनुकरण या फैशन के रूप में नहीं हुआ है । यह पाश्चात् आँचलिक उपन्यास से प्रभावित हो सकता है लेकिन आयात नहीं । इसका उद्‌भव यहाँ की माटी में युगीन जीवन एवम् परिवेश के अनुरूप हुआ है । ''यह मूलत: प्रेमचंद की दृष्टि का रेणु द्वारा नया परिष्कार है।''[३७] प्रकृति के प्रति रुझान, उपेक्षित एवम् पिछड़े जीवन का उद्‌घाटन, लोकसंस्कृति का अन्वेषण,

मोहभंग, राजनीतिक पतन, लोकभाषा का उत्थान, सामुहिक जीवन का प्रतिपादन, व्यक्ति चेतना एवम् अँधी आधुनिकता का विरोध आदि विभिन्न कारक इसके पिछे विद्यमान हैं ।

आँचलिक उपन्यास, उपन्यास का कोई नया प्रकार है या किसी अँचल के जीवन से संबंध होने के नाते यों ही आँचलिक नाम से जुड़ गया है ? यदि किसी प्रदेश से संबंध होने के नाते उपन्यासों को नये-नये नाम दिये जाने लगेंगे तब फिर उपन्यास गौण हो जायेगा, स्थान विशेष प्रधान और तब स्थान विशेष की कहानी अपने स्थानीय वैचित्र के साथ कही जाकर उपन्यास का पद प्राप्त करने लगेगी, फिर उपन्यास का क्या होगा !

उपन्यास का अर्थ है कथा (सूक्ष्म या सघन) के माध्यम से व्यक्त होनेवाला जीवन चित्र , जो स्थान विशेष या स्थान सामान्य से संबंद्ध होकर सर्व-देशीय मानव संवेदनाओं और मूल्यों की प्रतिष्ठा करे । साहित्य में उपकरण आर्त्यंतिक मूल्य नहीं होता । शहरी और देहाती उपन्यास जैसे प्रकार गढ़कर उपन्यास की उपलब्धि पर विचार करना सतही दृष्टि का परिचायक है । सही दृष्टि तो यह देखती है कि किसी उपन्यास में दृष्टव्य जीवन अपनी कितनी सच्चाई, सश्लिष्टता और समग्रता बृहत्तर मानव सत्य को कहाँ तक स्पर्श करता है ।

''आँचलिक उपन्यास की महत्ता यही से शुरू होती है । जैसे नई कविता ने तीव्रता से सच्चाई से भोगे हुए अनुभव की भट्ठी में तपे हुए पलों को व्यंजित करने में ही कविता की सुन्दरता देखी, वैसे ही उपन्यास के क्षेत्र में आँचलिक उपन्यासों ने अनुभवहीन, सामान्य या विराट के पिछे न दौड़कर अनुभव कि सीमा में आनेवाले अँचल विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया ।''[३८] आँचलिक उपन्यासकार जनपद विशेष के जीवन के बीच जिया होता है या कम से कम समीपी दृष्टा होता है। वह विश्वास के साथ वहाँ के पात्रों, वहाँ की समस्याओं, वहाँ के संबंधों, वहाँ के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रूपों, परम्पराओं और प्रगतियों को अंकित कर सकता है । क्यों कि उसने उन्हें अनुभूति में उतारा है । आँचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है । आँचलिक कथाकार को युग के जटिल जीवन

का बोध नहीं है, इसलिए वह आज भी पिछड़े जनपदों के सरल, निच्छल जीवन की ओर भागने में सुगमता अनुभव करता है । ऐसा कहना असत्य होगा ।

आँचलिक उपन्यास का एक विशिष्ट अर्थ है और वह एक प्रकार की अनिवार्यता की उपज है । ''आँचलिक का अर्थ बहुत से लोग स्थानीय रंगत से लगाते हैं ।''३९ स्थानीय रंगत तो प्रायः सभी उपन्यासों में होती है । कथा जिस प्रदेश में बहती है, वहाँ की प्रकृति, वेशभूषा, रीति-रिवाज की रंगत लेखक उपन्यास में देता चलता है । आँचलिक उपन्यास तो अँचल के समग्र जीवन का उपन्यास है । उसका संबंध जनपद से होता है । ऐसा नहीं वह जनपद की ही कथा है । किसी अँचल या जीवन से जिन्हें प्रीति नहीं होती ऐसे लेखक भी स्थानीय रंगत देकर सामान्य पात्रों की कथाओं को घटित करते चलते हैं । उनकी कथाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकती फिरती है । यानी कि कथा का पटफलक केवल एक अँचल नहीं रह जाता, वह आवश्यकतानुसार हिन्दुस्तान से विलायत तक फैल जाता है । प्रेमचंद के उपन्यासों में ग्रामजीवन की छवि है किन्तु प्रेमचंद के स्थानीय रंगत के बावजूद गाँव विशेष नहीं है, सामान्य है । आवश्यकतानुसार कहानी एक गाँव से दूसरे गाँव या शहर तक संक्रमण करती चलती है । यानी प्रेमचंद को स्थान विशेष के जीवन का चित्रण करना प्रिय नहीं है, वरन् सामान्य गाँवों की सामान्य समस्याओं और जीवन मूल्यों की कथा कहना अभिप्रेत है । कथानक पर उपन्यासकार का ध्यान केन्द्रित रहता है, न कि अँचल विशेष पर । ''आँचलिक उपन्यासों में अँचल अपनी संपूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है । अँचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों, अशक्तियों, छवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई स`लेखक पकड़ सकेगा, अँचल जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होगा ।''४० केवल बाहरी रंग, रूपों, स्वरों को सतही कथा के ऊपर ओढ़ाकर मोहक माया-जाल खड़ा करनेवाले लेखकों के कारण आँचलिक उपन्यास को कुछ सुनना भी पड़ा है । वास्तव में आँचलिक उपन्यास को पिकनिकी दृष्टि से किसी स्थान की बाहरी रंगीनी तथा लहलहाट बटोरनेवाली चेष्टा और भौगोलिक दृष्टि से भूमि का सर्वेक्षण करनेवाले प्रयत्नों - दोनों से अलग देखना होगा । अँचल को देखना यानी उसके समग्र जीवन को देखना । जीवन बाहर भी है भीतर भी । दोनों एक दूसरे से संयुक्त है । मनोवैज्ञानिक कथाकार जीवन को बाहर से काटकर भीतर की ओर देखने लगता है और सतही सामाजिक दृष्टि जीवन को ऊपर-ऊपर देखने लगती है । आँचलिक उपन्यासकार जीवन को बाहर-भीतर के संपूर्ण,

सामंजस्य में देखना चाहता है, देहाती अँचल, वन्य अँचल, पहाड़ी अँचल आदि में जीवन और प्रकृति का बड़ा गहरा संबंध दिखाई पड़ता है । आँचलिक उपन्यासकार जीवन की समस्याओं की अपेक्षा प्रकृति के सौन्दर्य को विशेष महत्व देते हैं । ऐसा आक्षेप भी हुआ है । कुछ लोगों ने यह भी कहा है कि प्रेमचंद भी गाँव के लेखक है किन्तु उन्होंने जो प्रकृति के चित्र दिये हैं वे अनावश्यक प्रतीत नहीं होते । कथा से अलग हटकर मात्र प्रकृति चित्रण के लिये वे चित्र अंकित नहीं किये गये हैं ।

शहरों में प्रकृति जीवन निर्वाह का साधन बनकर नहीं आती । प्रकृति वहाँ पालतू बनकर आती है । पालतू चीज शौक के लिए होती है । अतः शहरों में प्रकृति विरल मात्रा में होती है और जितनी होती है वह जीवन के साथ रागात्मक संबंध नहीं स्थापित कर पाती । देहात में वह सर्वत्र हमारी सहचरी है । वह विविध रूपों में हमारे विविध बोधों और भावों से जुड़ी है । अर्थात् वह हमारे प्रयोजनों और सांस्कृतिक जीवन दोनों से अपरिहार्य भाव से सम्बद्ध है । ''आँचलिक उपन्यासकार जिन अंशों को लेता है, वे अंश कथा की धारा से असंबद्ध भले ही जान पड़े किन्तु वे हमारे उस सौन्दर्य बोध, भावबोध और अनुभूति के संदर्भ बनकर आते हैं, जिन्हें उद्‌घाटित करना उपन्यासकार को अभिप्रेत रहता है ।''[४१] यों भी प्रकृति हमें अच्छी लगती है किन्तु वह जीवन के संदर्भो से जुड़ कर और भी सार्थक हो उठती है । 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'जंगल के फूल', 'पानी के प्राचीर' में जीवन के भीतर बहनेवाली तपन और जीवन को सर्वथा अलग करके देख ही नहीं सकते । यही बात आँचलिक उपन्यासों में उद्धत लोकगीतों के संबंध में कही जा सकती है । अंचल का समग्र जीवन ही नायक होता है । अतः आँचलिक उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन संबंधों को दिखने के लिए कथाकर प्रयत्न करता है । इस प्रयत्न में वैविध्य तो होता है किन्तु ऐसा नहीं कि वह जीवन के उन तमाम पहलुओं का किसी इतिहासकार की भाँति अलग-अलग विवरण पेश करता है । वरन् वह तो जीवन के उन मूलस्त्रोतों या आधारों को पकड़ता है, जिनसे जीवन के तमाम स्वरूप बनते हैं और समग्र जीवन ही साहित्य का उपजिव्य सिद्ध होता है ।

''आँचलिक उपन्यास के नामकरण, उद्‌भव एवम् उत्कर्ष का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु तथा उनके 'मैला आँचल' उपन्यास को है ।''[४२] इस दृष्टि से 'मैला आँचल' की भूमिका दृष्टव्य है । रेणु ने इसके माध्यम से पूर्णतः अछूते जीवन

और विषय को नये साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है । वह आँचलिक उपन्यास का उद्‌भव ही नहीं, अपितु उत्कर्ष भी है । 'मैला आँचल' का प्रथम प्रकाशन सन् १९५२ में समता प्रकाशन, पटना से हुआ, जो भलीभाँति वितरित नहीं हो पाया । इसी वर्ष नागार्जुन का 'बलचनमा' और शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' उपन्यास प्रकाशित हुए । अत: यह वर्ष हिन्दी आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

'मैला आँचल' के पश्चात् आँचलिक उपन्यासों की एक लंबी श्रृंखला पाई जाती है । देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रथ का पहिया' (१९५४), नागार्जुन कृत 'बाबा बटेसरनाथ' (१९५४), उदयशंकर भट्‌ट कृत 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५५), रेणु कृत 'परती परिकथा' (१९५७), अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' (१९५६), रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' (१९५८), राजेन्द्र अवस्थि कृत 'सूरज किरण की छाँव' (१९५९) और 'जंगल के फूल' (१९६०), शैलेष मटियानी कृत 'हौलदार' (१९६०) और 'चिट्‌ठी रसैन' (१९६२), रामदरश मिश्र कृत 'पानी के प्राचीर' (१९६१), 'जल टूटता हुआ' (१९६९) और 'सुखता हुआ तालाब' (१९७२), मनहरसिंह चौहाण कृत 'हिरना साँवरी' (१९६२), हिमांशु श्रीवास्तव कृत 'नदी फिर बह चली' (१९६१) और 'लोहे के पंख' (१९६३), राही मासूम रज़ा कृत 'आधागाँव' (१९६६), शानी कृत 'काला जल' (१९६५) तथा 'शाल वनों का द्वीप' (१९६७), शिवप्रसाद सिंह के 'अलग अलग वैतरणी' (१९६७) तथा 'गली आगे मुड़ती है' (१९७४), श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' (१९६८), जगदीशचन्द्र पाण्डेय कृत 'गगास के तट पर' (१९६८), आनंद प्रकाश जैन कृत 'आठवीं भाँवर' (१९६९), रामकुमार भ्रमर कृत 'तीसरा पत्थर' (१९६९), जगदीशचन्द्र कृत 'धरती धन अपना' (१९७२), हिमांशु जोशी कृत 'अरण्य' (१९७३) आदि हिन्दी आँचलिक उपन्यासों में प्रमुख कृतियाँ है, जिनमें आँचलिकता की प्रवृत्ति विकसित हुई है ।

उत्तर आधुनिककाल में आँचलिक उपन्यास का प्रवाह अधिक समृद्ध बन चुका है । इस युग के प्रमुख उपन्यास है - हिमांशु जोशी कृत 'कगार की आग' (१९७६) और 'सु-राज' (१९८४), जगदीशचन्द्र कृत 'कभी न छोड़े खेत' (१९७६) तथा 'मुट्‌ठी भर कांकर' (१९७६), गोविन्द मिश्र कृत 'लाल पीली ज़मीन' (१९७६), विवेकी राय कृत 'लोकऋण' (१९७७) तथा 'सोनामाटी' (१९८३), कृष्णा

सोबती कृत 'जिन्दगीनामा' (१९७९), मार्कण्डेय कृत 'अग्निबीज' (१९८१), मणि मधुकर कृत 'पिंजरे में पन्ना' (१९८१), राकेश वत्स कृत 'जंगल के आसपास' (१९८२), अब्दुल बिस्मिल्लाह कृत 'जहरबाद' (१९८४) तथा 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (१९८६), तिलकराज गोस्वामी कृत 'चंदनमाटी' (१९८५), सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव कृत 'वनतरी' (१९८७), रामदेव शुक्ल कृत 'उस चिड़िया का नाम' (१९८९), शिवप्रसाद सिंह कृत 'शैलूष' (१९९०), संजीव कृत 'सावधान निचे आग है' (१९८६), 'धार' (१९९०) तथा 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' (२०००), द्रोणवीर कोहली कृत 'तकसीम' (१९९४) और 'वाह कैंप' (१९९५), कमलाकांत त्रिपाठी कृत 'पाहीघर' (१९९१) और 'बेदखल' (१९९७), वीरेन्द्र जैन कृत 'डूब' (१९९१) और 'पार' (१९९४), मोहरसिंह यादव कृत 'सुखिया सब संसार' (१९९१), रामस्वरूप अणखी कृत 'कहानी एक गाँव की' (१९९३) तथा 'परतापी' (१९९५), रामदरश मिश्र कृत 'बीस बरस' (१९९६), रज्जन त्रिवेदी कृत 'कंचन बरसाते नर्क' (१९९८), मैत्रेयी पुष्पा कृत 'चाक' (१९९७) और 'अल्मा कबूतरी' (२०००), मिथिलेश्वर कृत 'यह अंत नहीं' (२०००), डॉ. सूर्यदीन यादव कृत 'दूसरा आँचल' (१९९१), 'माँ का आँचल' (१९९२), 'ममता' (२००२) और 'अँधेरा जहाँ उजाला' (२००३) आदि ।

''आँचलिक उपन्यास अपनी यात्रा की अर्धशती पूरी कर चुका है । इन पचास वर्षो में अनेक महत्वपूर्ण और सशक्त आँचलिक उपन्यासों का सृजन हुआ है। इन उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य एवम् भाषा को समृद्ध बनाया है ।''[४३] अनेक अछूते अँचल एवम् जनजातियोंके जीवन को वाणी दी है । स्वातंत्रोत्तर भारतीय पिछड़े गाँवों का यथार्थ जीवन, नई मानसिकता, संघर्षशीलता, चेतना, टूटन, संक्रमण, मूल्य आदि को अभिव्यक्ति दी है । इनमें बृहत और खण्डप्राय भारत देश की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक विशेषताओं की झाँकियाँ प्राप्त होती है । इसने जीवन की ओर देखने का एक नया नजरिया विकसित किया है । कथ्य, शिल्प, शैली और भाषा के रूप में नये आयाम प्रस्तुत किये हैं । ''इसमें आम आदमी के जीवन स्पंदनों का गहराई के साथ अंकन हुआ है ।''[४४] आँचलिक उपन्यास के विकास की एक सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा मिलती है । छठे-सातवें दशक में इन उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई थी । आठवे दशक में कुछ शिथिलता है, लेकिन पूर्णत: अवरुद्ध नहीं । नवम दशक में इसने सशक्त कृतियाँ दी । भारत जैसे

विविधता से संपन्न एवम् विकसनशील देश में इसके लिए काफी भूमि परती है । अत: इसके विकास की और भी संभावनाएँ हैं ।

परिवर्तनशील जीवन का उद्‌घाटन करने के लिए यह उपन्यास अत्यंत सजग एवम् सचेत रूप में प्रस्तुत हुआ है । नया परिवेश, बदलते संबंध और संदर्भ, नई मानसिकता, विसंगतियाँ, अछूते विषय आदि को समेटने की उसकी कोशिश श्लाघनीय है । समसामयिक परिवेश में उपन्यासों की वृद्धि के साथ ही विषय वैविध्य दिखाई देता है । इसी कारण अब किसी रचनाकार को एक साँचे में ढालना या उस पर एक मात्र मोहर लगाना असंभव है । साहित्य अब तत्कालयुगीन परिवेश से जुड़ रहा है । इसीके परिणामस्वरूप अध्ययन और अनुसंधान के मापदण्ड भी परिवर्तित हो चुके हैं । युगीन परिवेश, प्रवृत्ति, विशेष संदर्भ, आंदोलन एवम् बिखरे सूत्रों को समेटने के लिए साहित्य का अध्ययन काल, सीमा, प्रवृत्ति, समान संदर्भ आदि के परिप्रेक्ष्य में किया जा रहा है ।

१.५ हिन्दी उपन्यास की महिला लेखिकाएँ :

हिन्दी की प्रारम्भिक उपन्यास लेखिकाओं में शैलकुमारी देवी, यशोदादेवी, प्रियम्बादेवी, गोपालदेवी और गिरिजादेवी आदि ने क्रमश: 'उमा सुन्दरी', 'मेम और साहब', 'सच्चा प्रतिप्रेम', 'लक्ष्मी', 'दयावती' और 'कमला कुसुम' नामक उपन्यास लिखे । उनके उपन्यासों का कुछ अंश इसप्रकार है ।

उमा सुन्दरी उपन्यास में अनमेल विवाह का चित्रण है । **मेम और साहब** में हिन्दू समाज की आलोचना की गई है । सीधी, सादी पत्नी सुशीला को पति के लिए मेम बनना पड़ता है । **सच्चा पतिप्रेम, लक्ष्मी, दयावती** और **कमला कुसुम** में भी नारी जीवन के चित्र और उनके जीवन की वेदना के चित्र उभारे गये हैं । तत्पश्चात् प्यारी ने 'हृदय का पाप' उपन्यास लिखा । जिसमें नारी जीवन की वेदना साकार हो उठी है । ''श्रीमती पूर्णशशीदेवी ने 'रात के बादल' नामक उपन्यास लिखा । इस उपन्यास में शुभ्रा के त्याग की कथा वर्णित है ।''[४५] इस काल में ज्योतिर्मयी ठाकुर का 'मधुबन' और तेजरानी दीक्षित का 'हृदय का कांटा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए । 'मधुबन' में नारी करुण गाथा वर्णित है । 'हृदस का कांटा' में विधवा नारी की दूर्दशा का वर्णन किया गया है ।

प्रारम्भिक इन महिला उपन्यास लेखिकाओं ने समाज की दुर्गन्ध को चरितार्थ किया है । साथ में नारी उद्धार तथा नारी सुधार की बातों पर विशेष ध्यान दिया है। उनके उपन्यासों की भाषा शिथिल है और चरित्र चित्रण गहराई के साथ नहीं हो पाया है ।

''उषादेवी मित्रा के उपन्यास 'प्रिया सोहिनी' और 'पथचारी' उल्लेखनीय उपन्यास है । 'प्रिया सोहिनी' में उन्होंने नारी जीवन की व्यथा का चित्रण किया है । साथ में जो विधवाओं के सामने सामाजिक दुर्व्यवहार हो रहे हैं, उनकी चर्चा भी उषादेवी ने अपने उपन्यास में की है ।''[४६] इसमें सोहिनी के त्याग की कथा का चित्रण मिलता है । तपेदिक के रोग से पीड़ित सोहिनी आत्मबल व आत्मविश्वास से जिंदा रहती है । 'पथचारी' उपन्यास में बांसुरी के अंर्तजगत् के भावों को उजागर किया है । बाहर से घृणा करनेवाली बांसुरी हृदय से नीतिन को चाहती है । 'बचपन का मोल' भी आपका आदर्श उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम की सूक्ष्म भावभूमि पर कथा आकार लेती है ।

''आधुनिककाल में कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यासों में 'मूक तपस्वी' उपन्यास में आधुनिकयुग की शिक्षित स्त्री के मन पर पड़े सनातन संस्कारों का चित्रण अंकित है । साथ में नारी व्यथा, नारी हृदय की विवशता, उसका तिरस्कार, उत्पीड़न, उनकी उपेक्षा की तस्वीर भी उपन्यासकार ने खिंची है ।''[४७] 'संकल्प' उपन्यास में नारी सहज गुण जैसे सहनशीलता, त्याग, पतिव्रता और देशाभिमान की लेखिका ने अपने उपन्यास में सृष्टि की है । 'त्रिवेणी' उपन्यास में नारी के प्रेयसी और पत्नी तथा माता के रूप का चित्रण किया है । इन उपन्यसों में नारी मन की तीव्र अनुभूति के दर्शन हम कर सकते हैं । लेखिका स्वयं इस बात का स्वीकार करती हुई लिखती है कि 'संकल्प' में आदि से अंत तक पाठकों को दर्द मिलेगा, वेदना मिलेगी किन्तु मनोरंजन मिलेगा सो मुझे ठीक से ज्ञात नहीं ।

रजनी पन्निकर के उपन्यास 'मोंम के मोती', 'पानी की दीवार' और 'काली लड़की', इस काल की सब से बहु चर्चित लेखिका अमृता प्रितम के 'डाक्टर देव', 'पिंजरा', 'अंशु' और 'हरदत्त का जिन्दगीनामा' उपन्यास आधुनिक काल के उल्लेखनीय उपन्यास रहे । 'डाक्टर देव' में प्रेमकथा वर्णित है । 'पिंजरा' में नारी

वेदना, विकलता, विवशता और वेदना का चित्र अंकित किया गया है । 'अंशु' उपन्यास में भी लेखिका ने नारी मन की मनोवेदना का चित्रण अंकित किया है । 'हरदत्त का जिन्दगीनामा' क्रान्तिकारी और विद्रोही दृष्टिकोण के कारण विशेष उल्लेखनीय और चर्चित महत्वपूर्ण और सशक्त औपन्यासिक कृति है ।

मन्नू भंडारी कृत 'महाभोज' की रचना यथार्थ के धरातल पर की गई है । ''भोगे हुए यथार्थ के दर्शन इस उपन्यास की अपनी विशेषता है ।''[४८] 'महाभोज' उपन्यास में राजनीतिक समस्या को रूपायित किया गया है । मूल्यहीनता, दलबन्दी, सँडाघ और द्वेषयुक्त राजनीति का चित्रण उपन्यास में किया गया है । वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियाँ, बेईमानी, भ्रष्टाचार, दुराचार और अत्याचार आज के प्रजातंत्र की विशेषताएँ है । पार्टी बनाम भ्रष्टाचार राजनीति का मंत्र बन गया है और आज का भारतीय नागरिक इसका शिकार बनता जा रहा है । इस बात की ओर लेखिका ने संकेत किया है । दा साहब, शुक्लजी, पांडेजी, लखन, अप्पा, राव, चौधरी शैतानी पात्र के रूप में उभरकर सामने आये हैं । उपन्यास में लेखिका ने इस सँडाघ राजनीतिक समस्या का कोई समाधान नहीं ढूँढ़ा है । 'आप का बंटी' उपन्यास में तलाकशुदा पति-पत्नी की समस्या को बंटी के माध्यम से उठाया गया है। माँ-बाप विहिन बच्चों को पति-पत्नी की मानसिकता के दो पाट के बीच पिसता हुआ उपन्यास में दिखाया गया है । बच्चे की अनिश्चित स्थिति का उपन्यास में चित्रण किया गया है ।

शशीप्रभा शास्त्री कृत 'परछायों के पीछे' उपन्यास नारी मन की परतों को उकेरता है । ''सुमित्रा महिपाल की कहानी उपन्यास का कथानक है । महिपाल सुमित्रा का तिरस्कार करता है । किन्तु अपनु पतिव्रता धर्म की रक्षा करनेवाली सुमित्रा तिरस्कृत व प्रताड़ित होते हुए भी पति का विश्वास संपादन करने के लिए उत्सुक बनी रहती है । उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के खोखलेपन का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।''[४९] उनके 'क्यों कि' उपन्यास में दम्पति की मनोवृत्ति को केन्द्र बनाकर लेखिका ने मध्यमवर्गीय समाज की मानसिकता, अर्थाभाव एवम् त्रासदी को रेखांकित किया है । मध्यमवर्गीय समाज के रीति-रिवाज, मान्यताएँ, कुरीतियाँ, विकृतियाँ तथा विद्रुपताओं का उपन्यास में सटिक वर्णन मिलता है ।

मृदुला गर्ग कृत 'चित्त कोबरा' उपन्यास मनु की दोहरी जिन्दगी को उजागर करता है । उसकी दमित वासना को उपन्यासकार ने विश्लेषित किया है । ''चित्त कोबरा अंग्रेजी शब्द का समन्वय है । लेखिका ने दोनों शब्दों के माध्यम से मनु के चित्त को विश्लेषित किया है ।''५० 'अनित्य' उपन्यास में आर्थिक असमानता, वर्गभेद तथा अनराधबोध की ओर लेखिका ने संकेत किया है । सुविधा धर्म के प्रति समर्पित है । अविजित जागरुक है तथा विवेकबुद्धि से काम करनेवाला व्यक्ति है । अनित्य का महाजनी संस्कृति से मोहभंग हो चुका है । उपन्यास में वर्तमान राजनीतिक सोच और स्थिति पर टिप्पणी है ।

सुभद्रा के 'साँझ के पलाश' उपन्यास में कामभाव को विश्लेषित किया गया है । पूरे उपन्यास में नायिका के मन में उठनेवाले आवर्तो की ओर संकेत किया गया है । उसके मन में पुरुष के प्रति घृणा, तिरस्कार, लगाव और आकर्षण जैसे भावों का अविरत संघर्ष चल रहा है ।

''मालती पक्खर कृत 'जहाँ पौं फटनेवाली है' उपन्यास में दलितवर्ग की अभावग्रस्त जिन्दगी, सामाजिक विसंगतियों, विद्रुपताओं, उत्थान-पतन, उन पर होनेवाले अत्याचार, उनकी पीड़ा, उनकी नाटकीय जिन्दगी तथा कुण्ठाओं के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है ।''५१

सुमित्रा चरतराम के 'जीवन संहिता' उपन्यास में नारी के त्याग व समर्पण की कथा वर्णित है । कंचन, राजन, कमल तथा आशुतोष की चारित्रिक विशेषताओं पर लेखिका ने प्रकाश डाला है । 'दो धाराओं के बीच' उपन्यास में नायिका के अंर्तमन की परतों को उकेरा गया है । अंत में छलित गरिमा देवांटा से विवाह कर लेती है । यहाँ शीर्षक सार्थकता प्राप्त कर लेता है ।

ममता कालिया के 'प्रेम कहानी' उपन्यास में प्रेम विवाह के कारण दाम्पत्य जीवन में पड़नेवाली दरार का चित्रण अंकित किया गया है । जया और यथा उपन्यास के दो नारी पात्र है । एक माँ-बाप की इच्छानुसार विवाह करती है और दूसरी अपनी इच्छानुसार । दोनों अंत में यह समझ लेती है कि प्रेम और विवाह की वैयक्तिक तथा सामाजिक मान्यताओं में कोई फर्क नजर नहीं आता है । लेखिका ने उपन्यास में अस्पतालों में चलनेवाले द्वेष, ईर्षा, लाचारी प्रवृत्ति, मरीज के प्रति

दुर्व्यवहार, भ्रष्टाचार तथा अस्पताल के कर्मचारियों की मानसिकता का भी चित्रण किया है ।

शकुन्तला पांडेय के उपन्यास 'फिर महकेंगे कदम्ब' में रुस की युवती शाहजादी की मार्मिक व करुण कहानी वर्णित है । उपन्यास में देश विभाजन के दिनों में व्याप्त सांप्रदायिक तनाव तथा तज्जन्य त्रासदी स्थितियों का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

''राजी सेठ के 'तत्सम्' उपन्यास में उच्च शिक्षा प्राप्त विधवा नारी की मनोवेदना तथा आधुनिक नारी की सामाजिक, मानसिक समस्या का चित्रण उभारा गया है ।'' ५२ विवेक का अकेलापन उसे अपने भूतकाल की ओर खींचे हुए है । ''आप मुझे नहीं जानती । किसी दूसरी जाति का जानवर हूँ मैं ...कह सुनकर खाली हो जाना मैं नहीं चाहता । मेरे अंदर इतनी जल्दी छिड़ जाता है । सब... किसी बड़ी बात की जरूरत नहीं होती । मुझे लगता है कि मैं जाने कब से किसी अण्डर वर्ल्ड में रह रहा हूँ ।'' इसप्रकार उपन्यासकार कभी-कभी अपने आप से भी संघर्ष करते हुए नजर आते हैं ।

उषा प्रियंवदा ने 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका की मन:स्थितियों का लेखा-जोखा रूपायित किया है । राधिका की अतीत स्मृति उसके वर्तमान में जीवंत हो उठती है । पापा-विधा विवाह के बाद उसका कठोर बनना, राधिका का पापा से मिलना और फिर दिल्ली लौट आना, उसका अक्षय और मनीष दोनों की ओर आकर्षित होना, अक्षय से विवाह संबंध न जोड़ना तथा उसका मनीष से यह कहना - ''मैं नहीं चाहती कि जल्दबाजी में तुम अपने को कमिट करो अक्षय ।'' उपन्यास में राधिका के अंत:संघर्ष का, घूटन का तथा टूटन का सम्यक चित्रण सफलता के साथ व्यंजित हुआ है ।

मीनाक्षीपुरी के 'देशनिकाले' उपन्यास की पृष्ठभूमि जर्मनी का शैक्षणिक एवम् औघोगिक नगर कोलोन है । ''एक ही शीर्षक के अंर्तगत दो लघु उपन्यासों में एक का केनद्र कोलोन विश्व विद्यालय है तो दूसरे का एक औधोगिक प्रतिष्ठान मारोमा शौकोला है । दोनों उपन्यासों में भारतीय परिवारों के अंर्तजगत् व संवेदनाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है ।''५३ साथ में भारत व जर्मनी की

मानसिकता का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में यौन समस्या का सटिक वर्णन हुआ है । अपनी छात्राओं के बीच यौन संबंध रखनेवाले प्राध्यापक सकर्मी की यौन आसक्ति, यौन भावों से ग्रस्त गृहिणियाँ, युवावर्ग की यौन आसक्ति तथा पुरुषों के व्यभिचार का चित्र हमारे मन में ऊब पैदा करता है । उपन्यास में उन्मुक्त संबंधों की सूक्ष्म व्याख्या की गई है ।

शुभा वर्मा का उपन्यास 'बीते हुए' नारी जीवन की कठोर विडम्बना को तथा मानसिक यातना को अंकित करता है । साथ में नारी जीवन के यथार्थ की ओर भी उपन्यासकार ने संकेत किया है । ''इस उपन्यास में लेखिका ने ग्राम्य जीवन की मान्यताएँ, परम्पराएँ तथा विश्वास-अंधविश्वास का स्वाभाविक चित्रण किया है।''[५४]

कुमारी इन्दिरा के 'अति अनावृत' उपन्यास में अति और अनावृत नायक-नायिका है । उपन्यास में स्वातंत्र सेनानियों के जीवन की कथा वर्णित है । यह लघु उपन्यास है ।

कृष्णा सोबती के 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में पंजाब के जन-जीवन, संसकृति, सामाजिक जीवन की विद्रुपताएँ, रीति-रिवाज, आशा-निराशा, विडम्बनाएँ तथा दंतकथाओं, शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों को सहजता से उभारा है । लेखिका अपनी प्रतिभा व कलम की धनी है ।

प्रतिभा वर्मा के 'सुबह होती है शाम होती है' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है । बेकार इंजिनियर श्याम की मनोव्यथा को उपन्यास में वाणी दी गई है । इमानदार और कर्मठ श्याम अंत में कहता है - कोई बड़ा नहीं है आज, न चीफ मिनिस्टर, न प्रभाकर शर्मा । सिर्फ पैसा बड़ा है । यहाँ पर उपन्यासकार ने बेईमानी और अनैतिकता की ओर संकेत किया है ।

''स्त्री लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में विशेषत: नारी मन के परतों को उकेरा है । उनकी सामाजिक व मानसिक नियती को गहराई के साथ यहाँ उभारा गया है ।''[५५] कई उपन्यास लेखिकाओं ने उन्मुक्त प्रेम की भी चर्चा की है । उन्मुक्त यौन और उन्मुक्त भोग की अवतारणा भी उनके उपन्यासों में की गई है। यौन संबंधों की उन्मुक्तता दो रूपों में अभिव्यक्त है । एक नारी-नर के प्रेम संबंधों

के औदात्य और पवित्रता की टूटन के रूप में तथा दूसरी शारीरिक यौन व्यापार के नग्न चित्रण के रूप में । पारिवारिक टूटन, पति-पत्नी के वैवाहिक संबंधों में पड़नेवाली दरार, नारी मुक्ति, नारी की पीड़ा, उसकी निराशा, विवशता, विषमता आदि समस्याओं को भी इन नारी लेखिकाओं ने उजागर किया है । स्त्री परम्पराओं को पूर्णत: छोड़ भी नहीं सकी है, तो अत्याधुनिकता को पूरी तरह अपना भी नहीं सकी है । उनसे मुक्त होन के लिए वह उत्सुक है किन्तु प्राचीन परम्पराओं से मुक्त होना उसके बस की बात नहीं है । इस बात की ओर नारी लिखित उपन्यास साहित्य संकेत करता है ।

१.६ साठोत्तरी उपन्यास :

विवेच्यकाल में विपुल औपन्यासिक साहित्य लिखा गया है । क्यों कि यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि यह विधा जहाँ उत्कृष्ट साहित्य स्तर की रचना देने के लिए दुष्कर है, वहाँ साधारण कोटि की कृति देना इसमें बड़ा सरल काम है । अत: केवल उन रचनाओं का चयन किया गया है जो वस्तु अथवा शिल्प की दृष्टि से रचनाधर्मिता की ऊँचाइयों को स्पर्श कर सकी है । इसके पूर्व कि हम इन रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत करे, विवेच्यकाल के युगीन संदर्भो को समझ लेना अत्यावश्यक है ।

''यहाँ से भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया । देश के इतिहास में पहलीबार कुछ प्रमुख विरोधी दलों ने मिलकर 'जनतादल' का निर्माण किया, जिसने उत्तर भारत के सभी राज्यों में अभूतपूर्व सफलता हांसिल की ।''[५६] स्वाधीनता के बाद पहलीबार कांग्रेस का विकल्प सामने आया और श्रीमुरारजी भाई देसाई प्रथम पश्चिम प्रदेशीय प्रधानमंत्री हुए । स्वाधीनता पूर्व की सारी बातें, सारे प्रण, सारी नीतियाँ स्वाधीनता के बाद उलट गई । कदाचित हम अधिक दासता के शिकार हुए। अपने देश का विकास, उसकी अपनी प्रकृति, परम्पराओं एवम् संस्कृति के अनुरूप होना चाहिए था, उसके स्थान पर पाश्चात्यिकरण का जो दिवास्वप्न पण्डित नहेरू ने देखा था उसने देश को धराशायी व दिवालिया बना दिया । गांधी अब केवल राष्ट्रीय समारोहों में सिमट कर रह गये ।

''देश की गति में अवरोध जहाँ नेताओं की स्वार्थपटुता, क्षुद्रता, कूपमण्डुकता एवम् संकीर्णता के कारण पैदा हुआ है, वह आजादी के बाद भी उसकी कार्य प्रक्रिया की अपरिवर्तनशीलता भी उतनी ही जिम्मेदार है ।''[५७] नौकरशाही ने भ्रष्टाचारी व्यापारियों, तस्करों तथा भ्रष्ट नेताओं के साथ हाथ मिला लिया है, जिसके परिणाम स्वरूप देश में चारों तरफ भयंकर मूल्यहीनता नजर आ रही है ।

टूटते गाँव, टूटते परिवार, बड़े होते जा रहे महानगर तथा उसकी रिक्त जिन्दगियाँ, औधोगिकरण और मशिनीकरण आदि ने एक अजीब शून्यावकाश पैदा कर दिया है । शोरशराबा है, स्पष्ट स्वर नहीं । भीड़ में आदमी सो गया है । दिशाहारा युवा वर्ग बेचैन, चेतनाशून्य और लक्ष्यहीन होता जा रहा है ।

''इधर आजादी के पश्चात् बढ़े भ्रष्टाचार ने नवधनिक वर्ग को जन्म दिया जिसके पास अतुल संपति है पर संस्कारों का नितांत अभाव है । जिसकी ताकात रुपया है ।''[५८] रुपये के इस बढ़ते प्रभाव ने सारे नैतिक मूल्यों की कमर तौड़ दी है। भ्रष्टाचारी रुपयों ने (कालाधन) फिल्मों की चकाचौंध बढ़ा दी है और लक्ष्यहीन युवा वर्ग उसकी चपेट में 'मारजुआना' के नशे की भाँति आता जा रहा है ।

पश्चिम की भौतिकतावादी सभ्यता तथा चिन्तन ने व्यक्ति को नितान्त अकेला, निस्सहाय व अजनबी बना दिया है । विगत दो युद्धों की विभीषिका ने उनकी आस्था को झकझोर डाला है । व्यक्ति नितान्त आत्मकेन्द्रित भौतिक होता जा रहा है । मानवीय प्रेम के स्थान पर चीज परस्ती बढ़ रही है । भौतिकता की इस दौड़ ने व्यक्ति के चैनोसकून को छीन लिया है । परिणाम स्पष्ट है 'हिप्पी और विटल्स' जिनका प्रभाव हमारे यहाँ भी बुरी तरह से बढ़ रहा है । हमारा क्रीम (बुद्धिधन) तो योरोप और अमरिका जा रहा है, बदले में विटल्स और हिप्पी मिल रहे हैं । अजीब व्यापार विनिमय चह रहा है ।

महानगरों में पश्चिम का, नगरों पर नगरों का दबाव बढ़ रहा है । कम होने के बजाय अंग्रेजीयत की अहमियत बढ़ रही है । गाँव तथा उनके लोग भी अपने सहज उन्मुक्त प्राकृतिक जीवन से दूर हटते जा रहे हैं । ''जटिलता वहाँ भी बढ़

रही है । दोहरे जीवन मूल्यों ने व्यक्ति के दोगलेपन व खोखलेपन को बढ़ा दिया है।''५९

बढ़ती हुई दिशाहीन शिक्षा पद्धति ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया है । स्त्री शिक्षा ने जहाँ इस वर्ग को आत्मनिर्भर किया है, वहाँ नवीन सामाजिक समस्याओं को जन्म भी दिया है । स्त्री शोषण का एक नया आयाम शिक्षित, अविवाहित, व्यवसायी लड़कियों के रूप में सामने आया है । उनकी सेक्स जनित कुण्ठा तथा उत्तरकालीन जीवन के असहाय एकाकीपन से एक नवीन नारकीयता एवम् मानव ट्रेजेडी का निर्माण हुआ है ।

बढ़ते हुए व्यक्तिवाद ने स्त्री-पुरुष की अहं वृत्ति को अत्यधिक उत्तेजित किया है, जिसके परिणाम स्वरूप दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ रही है और परिवार टूटते जा रहे हैं । इसमें छोटे-छोटे शिशुओं की स्थिति त्रिशंकू-सी होती जा रही है। ''भौतिकवादी चिन्तन की प्रणाली ने जीवन मूल्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किया है । तथापि मध्यमवर्गीय समाज नये-पुराने संस्कारों के बीच पिस रहा है । उच्च तथा एकदम निम्नवर्ग का नैतिक मूल्यों से कोई सरोकार नहीं है ।''६०

संक्षेप में राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा आदि सभी क्षेत्र समस्याओं से बुरी तरह ग्रस्त एवम् आक्रान्त है । जिसका आंकलन उपन्यासों में प्रगतिवादी तथा आधुनिकतावादी अस्तित्ववादी उपन्यासकार अपने-अपने ढंग से कर रहे हैं । उक्त परिस्थितियों के दबाव में मानव संबंधों में भी एक विशिष्ट बदलाव आया है । संबंधों के इस बदलते हुए यथार्थ की अगणित मुद्राएँ १९६० के बाद के उपन्यासों में ग्राम, नगर तथा महानगर के त्रिस्तरीय परिवेश में उपलब्ध होती है । ये मुद्राएँ निम्न-मध्यमवर्गीय समाज में आर्थिक स्तर पर दिये जा रहे संघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरी है । इसमें शिक्षित आधुनिक नारी के संबंधों का एक टूटता-बनता और बिखरता संसार है । पुरुष इस संसार में अधिकाधिक भावनाहीन होता गया है । आर्थिक शोषण तथा व्यवस्थातंत्र और नौकरीपेशा की किलेबँदियों की सर्व व्यापक प्रक्रिया से गुजरते हुए वह अवसरवादी समझौता- परक तत्वों का शिकार होकर जड़ एवम् भावनाहीन हो गया है ।

''हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कदाचित पहलीबार सन् १९६० के बाद स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के मैथुन संबंधों पर दृष्टिपात किया गया है।''[६१] प्योरिटन आलोचकों की नाराजगी मोल लेते हुए खुली आँख से दृष्टिपात किया गया है कि रमेश बक्षी कृत 'बैसाखियोंवाली ईमारत', शरद देवड़ा कृत 'टूटती इकाइयाँ', महेन्द्र भल्ला कृत 'एक पति के नोट्स', श्रीकान्त वर्मा कृत 'दूसरी बार' प्रभूति उपन्यासकार अपने समस्त दम्भ एवम् अहमन्यता के साथ हिन्दी उपन्यास के बिम्ब में एक झलक भर जाता है ।

आज के उपन्यास की एक प्रमुख विशेषता है मनुष्य की अवधारणा । जो इधर अधिकाधिक उभरती गई है । मनुष्य की इस मुद्रा को कुछ लोगों ने लिटिल मैन भी कहा है । इसका विरोध करते हुए डॉ.रमेश कुन्तल मेघ ने समुचित ही लिखा है ''कुल मिलाकर मेरा एक दिन का जीवन एक मामूली आदमी का जीवन है। इस तरह सबसे पहले मैं एक मामूली व्यक्ति हूँ । मैं न महान मानवी हूँ न ही लघु मानव । यदि हूँ तो एक मानव । एक विशेष का अनुभव करनेवाला ।'' इसप्रकार इधर के साठोत्तरी उपन्यासों में मनुष्य की इस साधारण छवि को उसकी समूचित शक्ति-अशक्ति के साथ आंकलित करने की चेष्टा हुई है ।

साठोत्तरी उपन्यास की इस संक्षिप्त भूमिका के परिपप्रेक्ष्य में अब हम कुछ विशिष्ट उपन्यासों का अनुशीलन करने का यत्न करेंगे ।

रेखा (१९६४) : इस उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने एक आधुनिक समस्या को अपनी पुरानी किस्सागोई शैली में प्रस्तुत किया है । समस्या अनमेल विवाह की है । परन्तु इसे भिन्न धरातल पर रखा गया है । 'निर्मला' या 'गबन' की रतन की भाँति यहाँ कोई आर्थिक या पारिवारिक विवशता नहीं है । यहाँ नायिका रेखा भारद्वाज में आत्म निर्णय की चेतना के दर्शन होते हैं ।

'' 'रेखा' आज की काम जनिक समस्याओं पर आधारित उपन्यास है । पर उपन्यास की संरचना पर समस्या का हावी होना तथा तत्संबंधी एप्रोच का पुरानापन 'रेखा' को नये उपन्यासों की पंक्ति में नहीं रखता ।''[६२] वर्माजी कथ्य की अपेक्षा उसकी बुनावट पर अधिक बल देते हैं तथा उनमें मूल्यांकन की दृष्टि भी सदैव ही रहती है । यह दो बातें नये प्रवाहों से परिचित रहने के बावजूद उन्हें नई पंक्ति में

आने से रोक देती है । डॉ.त्रिभुवनसिंह के अनुसार 'रेखा' में वर्माजी ने रूढ़िगत परम्परा से हटकर एक स्वेच्छाचारिणी नारी का चित्रण किया है । रेखा को उपन्यासकार की सहानुभूति मिली है और पाठक भी उससे घृणा नहीं करता । पर ऐसे चरित्रों से समाज का कौन सा कल्याण होगा..विचारणीय है । परन्तु उपन्यासकार का उद्देश्य सच्चे और वास्तविक पात्रों का चित्रण करना रहा है । उपन्यासकार हमें वह देता है जो हम है, वह नहीं देता जो हमें होना चाहिए और प्रस्तुत उपन्यास से हमारे समाज की रेखाएँ इतना तो सिख सकती है कि भावुकता की लौ में बहकर शरीर धर्म की उपेक्षा कर बड़ी उम्र के व्यक्ति से विवाह करने का क्या परिणाम होता है ।

अमृत और विष (१९६६) : इस उपन्यास में नागरजी ने कदाचित प्रथम बार युवापीढ़ी के संघर्ष का, उसकी विद्रोहात्मक मुद्रा के मूल कारणों को तटस्थता के साथ रेखांकित किया है । इसका चित्रण जहाँ एक बृहद सामाजिक फलक पर तत्कालीन समाज की अन्य समस्याओं को समेटते हुए किया गया है, वहाँ काशीनाथसिंह के 'अपना मोर्चा'(१९७३) में युवासमस्या के संदर्भ में छात्र आंदोलन को ही परिवेश बनाया गया है । ''वास्तव में अमृत और विष की कथा सामयिक भारत के तरुण वर्ग के बाह्य और आंतरिक संघर्ष की कथा है ।''[६३] यह पहला उपन्यास है जिसने तरुणों की शक्ति को साहित्यिक स्तर पर स्वीकार किया है । काजर की कोठरी में रहते हुए भी नयी पीढ़ी कालिमा को मिटा डालने के लिए कटिबद्ध है । इस कालिमा को वे अपने मन की ज्योति और बाह्य संघर्ष से मिटा डालेंगे ।

शहर में घूमता आईना (१९६३) : प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यास के नायक चेतन के जालंधर शहर की सड़कों, गलियों, मुहल्लों में बिताये गये घण्टों के दैनन्दिन जीवन में गिरती दीवारों के चेतन को स्मृति रूप में पकड़ने का प्रयास अश्कजी ने किया है । चेतन ह ीवह आईना है, जिसके द्वारा जालंधर का प्रतिबिम्ब दिखाया गया है । आईना यदि साफ हो तो प्रतिबिम्ब स्पष्ट उभरता है । परन्तु यहाँ चेतनरूपी आईना स्वयं अर्थ एवम् यौन की कुण्ठाओं से ग्रस्त है, अतः प्रतिबिम्ब भी तद्नुरूप उभर सका है, जो मध्यमवर्गीय जीवन को समग्रता में प्रस्तुत न करे उसके आंशिक रूप को विकृत एवम् घिनौने रूप को ही प्रस्तुत करता है ।

नदी फिर बह चली (१९६१) : प्रेमचंद की परम्परा को विकसित एवम् संवर्धित करनेवाले कथाकारों में हिमांशु श्रीवास्तव का स्थान अग्रिम पंक्ति में आता है । पूर्व चर्चित 'लोहे के पंख' (१९५८) के बाद इस द्वितीय कृति में लेखक का प्रगतिवादी दृष्टिकोण और भी उभरकर सामने आया है । जहाँ लोहे के पंख का मंगरुआ वर्ग संघर्ष से ऊबकर, थककर रिक्शा चलाकर पेट पालने के अतिरिक्त दूसरा निरापद रास्ता नहीं देख पाता, वहाँ प्रस्तुत उपन्यास की नायिका परबतिया अंतिम साँस तक परिस्थितियों से संघर्ष ही नहीं करती वरन् एक नयी चेतना का नवजागरण का शंख फूँक देती है ।

''उपन्यास का परिवेश विस्तृत स्थान एवम् काल के फलक को समेटता है । वह बिहार के सारन जिले के हराजी, फेरुसा, चरामनपुर आदि गाँवों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के नाना आयामों को कुशलतापूर्वक उकेरता हुआ पटना के निम्न मध्यवर्ग के विष का आकपठ पान कराता है ।''[६४] दूसरी ओर उपन्यास परबतिया के संपूर्ण जीवनकाल को घेरता है, अतः उसमें स्वतंत्रता पूर्व एवम् स्वातंत्रोत्तर सामाजिक, राजनीतिक तथा बदलते हुए जीवन मूल्यों का दिग्दर्शन भलीभाँति कराया गया है । पिछले कुछ वर्षो में ग्रामीण जीवन में जो बदलाव आया है, उस पर शहरी जीवन मूल्यों का जो दबाव बढ़ रहा है । उसका चित्रण लेखक ने परबतिया ने निरिक्षण द्वारा करवाया गया है ।

यह पथ बंधु था (१९६२) : मूलतः प्रयोगवादी कवि नरेश मेहता की औपन्यासिक कृति 'यह पथ बंधु था' उनके ही अन्य दो उपन्यास 'डूबते मस्तूल' (१९५४) और 'दो एकान्त' (१९५५) से भिन्न छोर पड़ती है । जहाँ उक्त दोनों उपन्यासों में सीमित मनोवैज्ञानिक परिवेश को आधार बनाया गया है, वहाँ 'यह पथ बंधु था' का स्थानगत एवम् सामाजिक, राजनीतिक परिवेश अपेक्षा कृत कुछ विस्तार लिये हुए है, जो नरेश मेहता के कृतित्व में नये मोड़ का अहसास कराता है।

उक्त कुछ दोष रचना में इसलिए भी खलते हैं कि यह कृति हिन्दी के कतिपय श्रेष्ठ उपन्यासों में स्थान पाने योग्य है । मध्य या निकृष्ट प्रकार की रचना में दोष इतने नहीं रखते, जितने किसी उत्तम रचना में । भोंडी स्त्री का भोंडापन असंगति नहीं, संगति है, पर सुन्दर स्त्री का भोंडापन आलोचना का विषय हो जाता

है । श्रीधर द्वारा साक्षात्कृत जीवन का यह विस्तृतपट लेखक ने लगभग ६०० पृष्ठों में जीवन की अगणित छोटी-छोटी साधारण-सी बातों के ताने-बानों से सुना हुआ है। कहीं-कहीं पर लम्बे-लम्बे अन्तराल पाठक की कैलिडोस्कोपिक कल्पना द्वारा भरे जाने के लिए छोड़ दिये गये हैं । ''शैली की यह सांकेतिकता तथा साधारणता में ही जीवन तत्व के गहनतम सत्य की अनुभूति को उपन्यास की एक उपलब्धि बना सका है ।''[६५]

साँप और सीढ़ी (१९७१) : शानी कृत 'साँप और सीढ़ी' सन् १९६० में पॉकेट बुक सीरीज में प्रकाशित लघु उपन्यास 'कस्तूरी' का संवर्धित एवम् पुनः संस्कारित रूप है । दोनों के अंत में भी शीर्षक की प्रतीकात्मकता के कारण थोड़ा अन्तर आया है ।

बहुत बड़े फलक पर देश, जाति, धर्म या संस्कृति और छोटे फलक पर किसी भी देशगत समाज या उसके समाजगत का उदाहरण लेकर इसे समझना एक दिलचस्प अनुभव होता है । पहला काम इतिहासकार का है और दूसरा अनुभव केवल लेखक का प्रस्तुत उपन्यास में हमें लेखक की इसी अनुभव प्रक्रिया से गुजरने की सफल कोशिश का अहसास होता है ।

इसे पढ़ते समय बस्तर जिले का कस्तूरी गाँव, उसके पेड़-पौंधे, फूल-पत्तियाँ तथा मनुष्यों की गंध ही नहीं, प्रत्युत लेजा, मारी रोसेना, रावनावेलो, पहतपरब आदि आदिवासी लोकगीतों की गमक भी हमारे मनोमस्तिष्क में रच-बस जाती है । ''चेतना की पश्चाद भूमि में एक मृदंग बजता रहता है और बूंद दर्द रिसता रहता है । घान माँ के व्यष्टि दर्द के साथ लेखक अँचल की वेदना पाटक में संक्रमित कर सका है । यही लेखक की अन्यतम सफलता है ।''[६६]

काला जल (१९७८) : गुलशरी खान शानी का यह उपन्यास रुसी भाषा में भी अनुदित होकर आदृत हो चुका है । कमलेश्वर ने हिन्दी के जिन सात-आठ स्वातंत्रोत्तर उपन्यासों का जिक्र किया है, उनमें एक 'काला जल' भी है । मध्यमवर्गीय मुसलमान परिवेश का वह ठहराव ही काला जल है । जिसकी बिसायंध और संडाघ से स्वयं लेखक ग्रस्त है । इसे हम मध्यमवर्गीय मुस्लिम समाज का एक प्रामाणिक दस्तावेज कह सकते हैं । क्यों कि समूचा मध्यमवर्गीय

मुस्लिम समाज अपनी सारी ईच्छाइयों, बुराइयों, रस्मों, रिवाज, मान्यताओं, गरीबी, विडम्बना, विसंगतियों, विद्रुपताओं के साथ यहाँ मूर्तिमंत हुआ है । इसी एक उपन्यास से हम मुस्लिम समाज को समग्रतया जान सकते हैं । ग्रामीण परिवेश और लोकजीवन का जितना सुक्ष्म अंकन इधर हिमांशु श्रीवास्तव में मिलता है, उतना ही मुस्लिम समाज का सूक्ष्म आंकलन शानी के इस उपन्यास में मिलता है । ''आधुनिकता के अजस्त्र प्रवाह से निरन्तर घुलती जाती लोकसंस्कृति व तहजीव से आक्रान्त आगत पीढ़ियाँ जब पिछे मुड़कर इस उपन्यास का परीक्षण करेंगी तो उसे अपनी अतीत की परम्पराओं का समुचित ज्ञान कदाचित यही कृति दे सकेगी ।''६७

मित्रो मरजानी (१९६७) : हिन्दी कथा साहित्य की बोल्ड अत: बहुचर्चित एवम् विवादास्पद लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का नाम लिया जाता है । उनकी अभी तक प्रकाशित कथा कृतियों में 'बादलों के घेरे', 'तीन पहाड़', 'यारों के यार', 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी' तथा सूरजमुखी अँधेरे के' है । जिनमें से प्रथम तीन लम्बी कहानियाँ है और शेष तीन लघु उपन्यास है । ''कृष्णा सोबती के साहित्य पर सबसे बड़ा आरोप अश्लीलता का लगाया जाता है, परन्तु यह कदाचित एक लेखिका द्वारा लिखा जाने के कारण हुआ है ।''६८ हमारे पुरुष आलोचक शायद एक स्त्री द्वारा स्त्री की तटस्थ अभिव्यक्ति को कुछ साहसिक और नयें तेवरों से युक्त अभिव्यक्ति को देखकर कुछ स्तंभित हुए हैं । उनके शताब्दियों से संचित संस्कारों को नारी की ऐसी अभिव्यक्ति से कुछ आश्चर्य हुआ है । अन्यथा 'एक पति के नोट्स', 'रेखा', 'मुर्दाघर', 'आगामी अतीत', 'दिल एक सादा कागज' प्रभूति कृतियों में नीति शास्त्रियों द्वारा वर्जित प्रदेशों को 'वर्जित' शब्दावली में ही देने का साहस अनेक पुरुष लेखकों ने किया हैं ।

सूरजमुखी अँधेरे के (१९७२) : परम्परागत नारी मुद्रा के विपरीत नारी मन का स्वतंत्र या स्वच्छन्द आलेखन तथा भाषा का एक विशिष्ट नवीन मुहावरा जहाँ कृष्णाजी के कथाकन की शक्ति है, वहाँ मर्यादा और सीमा भी । परन्तु भाषा के उस मुहावरे का 'बोल' कही जानेवाली शैली में प्रस्तुत किया था । तो ''प्रस्तुत उपन्यास में नारी जीवन की एक अछूती मनोवैज्ञानिक समस्या को निरूपित कर सोबतीजी ने निश्चय ही एक साहस का कार्य किया हैं ।''६९ 'मित्रो मरजानी' की मित्रो जहाँ जातीय जीवन की दृष्टि से अत्यंन्त गरम है, वहाँ इस उपन्यास की रक्ति की बरल का ठण्डापन लिए हुए है ।

मन वृन्दावन (१९६६) : सुप्रसिद्ध नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल एक लब्ध प्रतिष्ठित कथाकार भी हैं । ''इस क्षेत्र में उनका योगदान प्रेमचंदोत्तर काल में सन् १९५९ से ही प्रारम्भ हो जाता है ।''७० उनके साठ के बाद के उपन्यासों में 'मन वृन्दावन', 'प्रेम अपवित्र', 'नदी' तथा 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' प्रभूति प्रमुख है । आधुनिक वेशभूषा में सज्ज डॉ. लाल के भितर एक अल्हड देहाती, कभी फाग तो कभी विहाग अलायता हुआ हमें दृष्टिगोचर होता है । इस संबंध में ईलाचन्द्र जोशी के यह शब्द उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं - सभ्य नागरिक बनने का इच्छुक यह लेखक अपने व्यक्तित्व की देहाती मिट्टी को जी जान से प्यार करता है । अपने नागरिक बंधुओं के बीच उसके कारण संकुचित न होकर वह उस पर गर्व का अनुभव करता है । उस देहाती मिट्टी की गर्द उसके ऊपर लहलहानेवाली मुक्त हरियाली उसके खेत-खलिहानों से जुड़े हुए धूल भरे जीवन में बिखरी हुई मस्ती, रसमयता और पंकिलता इन सभी तत्वों के रंग इस सूट-बूटधारी नाटककार के केवल भितरी व्यक्तित्व में ही धुले हुए नहीं है, वरन् उसके बाहरी व्यक्तित्व को ऊपरी कृत्रिमता में भी छिटके हुए दिखाई सकते हैं ।

''इस देहाती आत्मा के स्वेच्छारोपित नागरिक व्यक्तित्व के भितर एक रसमीना, प्रेमसीझा व्यक्तित्व छिपा है । जिसका अनुभव हमें उनके प्रस्तुत उपन्यास में होता है । 'मन वृन्दावन' मथुरा से कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन की चौरासी कोस की यात्रा की ही कहानी नहीं, प्रत्युत्तर यात्रा के अर्न्तमन में चलती हुई असंख्य यात्राओं तथा उपयात्राओं की कथा है ।''७१

प्रेम अपवित्र नदी : लक्ष्मानारायण लाल का यह २८८ पृष्ठीय उपन्यास विस्तृत समय फलक को लेकर लिखा गया है । दिल्ली के कपूरवाले परिवार की यह तीन पीढ़ियों की कथा है । विस्तृत समय फलक एवम् दो-तीन पीढ़ियों की कथा प्रवृत्ति 'भूले बिसरे चित्र' (भगवतीचरण वर्मा), 'काला जल' (शानी) तथा 'आधागाँव' (डॉ. राहीमासूम रज़ा) प्रभूति में मिलती है, परन्तु उक्त तीनों रचनाओं में जहाँ घटनाओं का यथोचित गूँफन मिलता है, वहाँ प्रस्तुत कृति में बिखराव आ गया है । ''कथा का प्रारम्भ जितना प्रभावोत्पादक है, उसका समुचित निर्वाह लेखक नहीं कर पाये हैं । गदर के बाद से लेकर स्वातंत्रोत्तर मोहभंग तक की कथा को लेखक ने लिखा है ।''७२ ऐतिहासिक जानकारियों का सही उपयोग भी हुआ है, परन्तु जीवन

की जो अनुभूति उक्त तीनों रचनाओं में हो सकी है उसका यहाँ अभाव है । क्यों कि घटनाओं तथा पात्रों पर लेखक का दर्शन हावी हो गया है ।

एक कटी हुई जिन्दगी, एक कटा हुआ कागज (१९६५): इस वैज्ञानिक युग के क्षिप्रगामी प्रभावों से आक्रान्त नित्यप्रति परिवर्तित होनेवाले जीवनमूल्यों तथा नवीन खोजों से जीवन आस्थाहीन होकर अपनी धुरी को छोड़ता जा रहा है । यह आस्थाहीन जीवन आधुनिक युग का महान अभिशाप है । जिससे वर्तमान बौद्धिक पीढ़ी जीवन से कटी हुई प्रतीत होती है । लक्ष्मीकांत वर्मा प्रणित उपन्यास 'एक कटी हुई जिन्दगी, एक कटा हुआ कागज' इसी आस्थाहीन जीवन का आख्यान है ।

टेरा कोटा (१९७१) : कवि, आलोचक एवम् कथाकार लक्ष्मीकांत वर्मा प्रकृत्या ही प्रयोगधर्मी है । 'खाली कूर्सी की आत्मा', 'एक कटी हुई जिन्दगी, एक कटा हुआ कागज', 'कोयला और आकृतियाँ', 'सफेद चेहरे', 'टेरा कोटा' (उपन्यास) 'नई कविता के प्रतिमान', 'नये प्रतिमान पुराने निष्कर्ष' आलोचनाग्रंथ 'नये पत्ते', 'निष्कर्ष', 'कलग' आदि उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इसी तथ्य का द्योतन करती है ।

लौटती लहरों की बाँसुरी (१९६४) : 'लौटती लहरों की बाँसुरी' सुपरिचित प्रयोगवादी कवि भारतभूषण अग्रवाल का दिवास्वप्न की शैली में लिखा गया एक प्रयोगधर्मी उपन्यास है । दिवास्वप्न शैली चेतना प्रवाहशैली का ही एक अंग है । इसमें उपन्यासकार ने तैंतालिस दिवास्वप्नों द्वारा नायक के अतीत जीवन के तानों-बानों को बुनते हुए कथा पट का निर्माण किया है ।

अन देखे अन जाने पुल (१९६३) : लेखकीय प्रतिबद्धता, सज्जता एवम् ईमानदारी को अधिक महत्व देनेवाले राजेन्द्र यादव नई पीढ़ी के उन लेखकों में से हैं जिनमें लिखने की जीवन के एक अभिनय पक्ष के रूप में उपलब्ध होती है । मोहन राकेश के शब्दों में - अपने लेखन में यह आदमी निरन्तर जूझता और प्रयोग करता रहा है । लिखने के सिवा और किसी रूप में यह जिन्दगी की बात सोचता ही नहीं। हमेंशा नये-नये प्रयोग करने की उनकी कामना ही इस बात की गवाह है कि वह जो लिख लेता है उससे संतुष्ट कभी नहीं होता । वह एक बना हुआ लेखक नहीं बनता हुआ लेखक है और यही उसकी सफलता का रहस्य भी है । बना हुआ लेखक

अपने संस्कार के एक पीस से लिखना आरम्भ करता है और जीवन भर या वही बना रहता है या निरन्तर उस पीस से नीचे उतरता आता है । अपने कृतित्व को लेकर उसके मन में शंका नहीं होती, इसीलिए उसकी हर नई रचना नया प्रयोग न होकर पहली रचना की ही कंटीन्यूटी होती है ।

चारू-चन्द्रलेख (१९६३) : पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, बंगला प्रभूति भाषाओं के ज्ञाता तथा साहित्य, कला, दर्शन तथा नाना शास्त्रों के महान पंडित कवि, आलोचक डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है । कवि-आलोचक शब्द का जान-बूझकर प्रयोग किया गया है । आचार्य प्रणित कोई भी साहित्यिक विधा कविता तत्व से रहित नहीं होती । उनका प्रस्तुत उपन्यास भी इस बात को प्रमाणित करता है ।

''द्विवेदीजी ऐतिहासिक उपन्यास में नहीं इतिहास विषयक यह मनोधारणा भी पुष्ट करते हैं कि इतिहास महज किसी काल-विशेष के राजा-रानियों की तथा उनके युद्धों की कहानी नहीं है । प्रत्युत उस युग के जन-जीवन की जीती-जागती तस्वीर है ।''[७३] इस अर्थ में 'चारू-चन्द्रलेख' १३ वीं शताब्दी के मध्यकालीन भारत का मानक दर्पण है । समूचा उस युग में बोल उठा है ।

अपने-अपने अजनबी (१९६१) : हिन्दी कथा साहित्य में निजी शिल्प सजगता को लेकर अज्ञेय अप्रतिम है । उनके तीन उपन्यास प्राय: दस-दस साल के अन्तराल में आये हैं । परन्तु उनमें से प्रत्येक ने शिल्प के नये आयामों की सम्भावना को बढ़ा दिया है और हिन्दी कथा साहित्य में नयी जमीन को तोड़ा है । ''अज्ञेय साहित्य में एक स्पष्ट अंतर्विरोध यह भी है कि अज्ञेय की दार्शनिक मुद्रा व पाश्चात् साहित्य के प्रभावों का आंकलन जितना उपन्यासों में उपलब्ध होता है उतना कविता में नहीं ।''[७४] वहाँ पर उनका तद्भव, ठेठ और भारतीय रूप ही प्राय: मिलता है । 'अपने-अपने अजनबी' की समानान्तर कृति 'आंगन के पार द्वार' को उदाहरण स्वरूप ले सकते है । उनके ललित निबन्धों (कुट्टीचारन के नाम से लिखित) में उनके विस्तृत ज्ञान का पता चलता है ।

उग्रतारा : प्रगतिशील कवि एवम् कथाकार नागार्जुन का औपन्यासिक कृतित्व सन् १९४८ (रतिनाथ की चाची) से अनवरत प्रवहमान है । डॉ. घनश्याम मधूप के

मतानुसार नागार्जुन हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद परम्परा को विकसित करते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन की यथार्थ के स्तर पर गहन अभिव्यक्ति उनकी कृतियों में मिलती है । जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि व्यक्तिवादी लघुउपन्यासकारों के समकक्ष सामाजिक यथार्थ को लघु उपन्यास विधा में प्रतिष्ठित करने का श्रेय नागार्जुन को है। शिल्प की कलाबाजियों की अपेक्षा अपने अँचल के प्रति गहरी आत्मीयता तथा पात्रों और परिवेश की सही पहचान नागार्जुन के औपन्यासिक को निरन्तर प्रतिष्ठित करती रहती है ।

इमरतिया (१९६८) : भाव एवम् शिल्प दोनों दृष्टियों से 'इमरतिया' नागार्जुन का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । मूलत: इसे मैथिली में लिखा गया था । ''मठों एवम् मंदिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार का संकेत तो कई उपन्यासों में मिलता है, पर केवल इसी वस्तु पर लिखा गया यह पहला उपन्यास है ।''[७५] शिल्प की दृष्टि से यह नागार्जुन का श्रेष्ठतम उपन्यास है । 'उग्रतारा' और 'इमरतिया' दोनों में नागार्जुन की शिल्पगत सजगता प्राप्त होती है, परन्तु इमरतिया में यह सजगता कला के नये आयामों को छूती हुई जान पड़ती है । इमरतिया प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं है । व्यापक जीवनानुभवों से संदर्भित कलाकार का शिल्पगत प्रयोग भी यथार्थ की नाना तहों को तराशता-तलाशता है । यह आत्मकथात्मक शैली का एक विशिष्ट उपन्यास है । आत्मविश्लेषण, आत्मसंभाषण, चेतनाप्रवाह, पूर्वदीप्ति, शब्द सहस्मृति, अखबारी रिपोर्ट, स्वप्न विश्लेषण आदि विभिन्न शैलियों का इसमें सफल निर्वाह हुआ है ।

बारह घण्टे (१९६४) : यशपाल मूलत: यथार्थवदी उपन्यासकार है । हिन्दी साहित्य में उन्हें मार्क्सवादी के व्याख्याकार अथवा फ्रायडीयन सिद्धांत के प्रयोगकर्ता के रूप में जाना जाता है । उनके 'झूठा सच', 'पार्टी कामरेड', 'दादा कामरेड', मनुष्य के रूप' आदि उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के संबंध क्रान्तिकारिता या जीवन की मार्क्सवादी व्याख्या ही दिखाई पड़ती है । 'बारह घण्टे' इस लीक से हटा हुआ है । यशपाल की नयी प्रगतिशील भाव सृष्टि एवम् बोध को, उनके औपन्यासिक के अगले विकास सोपान को हम 'बारह घण्टे' तथा 'मेरी तेरी उसकी बात' में सूक्ष्मता अंकित होता हुआ महसूस करते हैं ।

मेरी तेरी उसकी बात (१९७५) : अपने 'यथार्थवाद' नामक ग्रंथ में डॉ.शिवकुमार मिश्र ने यथार्थ और यथातथ्यता के अन्तर को स्पष्ट किया है । ''यथार्थ की समग्रता को आत्मसात किये बिना एक विशिष्ट परिवेश को विशिष्ट दृष्टि से यथातथ्य चित्रित कर देने मात्र से कोई कृति यथार्थवादी नहीं हो सकती।''[७६] 'शहर में घूमता आईना' तथा 'बांधो न नाव इस ठांव' जैसी कृतियाँ इसी कारण से 'मेरी तेरी उसकी बात' से अलग पड़ती है । अश्कजी उपर्युक्त दोनों कृतियों में कोई भी पात्र नहीं है । जब कि नारकीय से नारकीय जीवन बितानेवालों में भी उच्च मानवीय संवेदना के द्वीप झिलमिलाते हैं । 'मेरी तेरी उसकी बात' समाज के व्यापक फलक एवम् यथार्थ की समग्रता को सहेजकर चलनेवाली कृति है। 'झूठा सच' के बाद इस कृति ने लेखक के चिन्तन व कलात्मक प्रौढ़ता को एक कदम आगे बढ़ाया है ।

शहीद और शोहदे (१९७०) : हमारा राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम आंदोलन कथा की रत्न मंजूषा है । उसकी पृष्ठभूमि में 'मैला आँचल', 'झूठा सच', 'तमस', 'प्रेम अपवित्र नदी', 'प्रश्न और मरिचिका' आदि अनेक उपन्यास लिखे गये । प्रसिद्ध समाजवादी लेखक मन्मथनाथ गुप्त द्वारा प्रणित उपन्यास में उस आंदोलन के एक नये अनछुए पहलू को पहली बार इंगित किया है । आंदोलन में आई.पी.एस. अफसरों की सरकार परस्ती ।

अन्य उपन्यास : यहाँ हम कुछ ऐसे उपन्यासों का उल्लेख करने जा रहे हैं जिनकी चर्चा आनेवाले अध्यायों में की गई है । किन्तु स्थानाभाव के कारण जिन पर यहाँ विस्तार से विचार नहीं किया गया है । जैनेन्द्र कृत 'मुक्तिबोध' १९७४ कामराज योजना की थीम को लेकर लिखा गया है, किन्तु उसका मुख्य प्रतिनिधि तो सहायबाबू के भीतर चलनेवाला वह द्वंद्व और अन्ततः वह जैनेन्द्रिय ही है । यह उपन्यास निलिमा के ज्वलंत व्यक्तित्व के कारण स्मरणीय रहेगा । इसके अतिरिक्त आलोच्यकाल में उनके अन्य दो उपन्यास उपलब्ध होते हैं । 'अनन्तर' (१९६८) और 'अनास्वामी' (१९७४) । रेणु द्वारा प्रणित उपन्यास 'जुलूस' (१९६५) पूर्व बंगाल से आये शरणार्थियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है । रेणु की स्वप्नदर्शी कलम ने जहाँ एक और नोबिन नगर की मुख्य संचालिका के रूप में पवित्रा के चरित्र को उभारा है वहाँ गोडियार गाँव के तालेक गोढ़ी के द्वारा गाँव के लोगों के विश्वास, अंधविश्वास, मंत्र, जादू-टोना प्रभूति को उकेरते हुए उस अँचल के यथार्थ

को मूर्तिमंत स्वरूप दे दिया है । रेणु की यह विशेषता है कि कथा वह कोई भी कहे पर अपने समय की बात करना वह कहीं भी नहीं चुकते और यहाँ भी वे उसमें चुके नहीं है । 'दीर्घतपा' (१९६३), 'कितने चौराहे' (१९६६) और 'कलंक मुक्ति' (अपूर्ण १९७६) प्रभूति उनके अन्य उल्लेखनीय उपन्यास है ।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'पुर्ननवा' में गुप्तकालीन भारत की संस्कृति छवि को उभारा गया है । 'चारू-चन्द्रलेख' की तुलना में इसकी भाषा कुछ अधिक सरलता लिये हुए है । इसमें उस काल के सामाजिक जीवन का सूक्ष्म निरूपण हुआ है । तत्कालीन न्याय व्यवस्था का भी विषद चित्रण इसमें हुआ है । द्विवेदीजी के सद्यप्रकाशित उपन्यास 'अनामदास का पोथा' (१९७७) में उपनिषदकालीन भारत को लिया गया है । प्रेमचंद के दायित्व का निर्वाह करनेवाले हस्ताक्षरों में हिमांशु श्रीवास्तव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । 'कथा सूर्य की नई यात्रा' में उन्होंने कथा सूर्य प्रेमचंद की आत्मा को पुनः धरती पर भ्रमण करते हुए बताकर उसके द्वारा साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य की गतिविधियों का व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित किया है । हिन्दी साहित्य में चलनेवाली गुटबन्दियाँ, विश्व विद्यालयों के हिन्दी विभागों की सडियल स्थिति, बम्बई की फिल्मी दुनिया में लेखक व कवि की हास्यास्पद स्थिति, समीक्षा के नये नुस्खे आदि के व्यंग्यात्मक चित्रण के द्वारा इन सब की कलई खोलने का एक साहसिक प्रयत्न किया है । भगवतीचरण वर्मा के 'प्रश्न और मरिचिका' में सन् १९४७ से लेकर १९६२ तक की राजनीतिक घटनाओं का लेखा-जोखा उपलब्ध होता है । शैलेष मटियानी कृत 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' में नर्मदाबेन सेठानी के चरित्रांकन के द्वारा उच्च समाज की भद्रता का पर्दाफाश किया गया है । उच्च समाज की रंगिनियाँ तथा निम्न समाज का नारकीय जीवन दोनों का चित्रण इसमें यथार्थ रूप से हुआ है ।

आज हिन्दी के उपन्यास लेखन का क्षेत्र पहले की तुलना में पर्याप्त विस्तृत हो चुका है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का क्षेत्र प्रचार, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लेखकों का हिन्दी लेखन के प्रति आकर्षण तथा अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों द्वारा अपनी प्रतिभा और साधना का योगदान इसके लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है । हिन्दी के उपन्यासों का भारतीय भाषाओं में हि नहीं, रुसी, अंग्रेजी आदि विश्व भाषाओं में भी अनुवाद तथा हिन्दी में भारतीय तथा विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियों के अनुवादों की बढ़ती हुई विशाल

संख्या साहित्य सृजन और शिल्प विन्यास में अन्तरालम्बन की परिस्थिति का निर्माण कर दिया है । यह कहा जा सकता है कि ऐसी अनुकूल भूमिका में औपन्यासिक कृतियों का लेखन भविष्य में आज से कई गुना बढ़ना अवश्यम्भावी है । यह स्वाभाविक स्थिति अध्ययन की नयी दिशाओं, नये क्षेत्रों तुलनात्मक अध्ययन के विविध पक्षों तथा भविष्य उद्‌घाटित करेंगे । लेखक का अपना विश्वास है कि इससे अध्ययन, शोध साहित्यिक मूल्यांकन एवम् सृजन की नयी भूमियों का अवश्य निर्माण होगा । शोधगत विषय सीमा, समय की प्रतिबद्धता एवम् आरम्भिक अनुशीलन की क्षमता आदि की सीमाएँ सभी के साथ जुड़ी रहती है और रहती रही है । अतः लेखक निःसंकोच रूप में यह स्वीकार करता है कि वह भी उक्त स्थितियाँ किसी न किसी रूप में आबद्ध रहा है ।

::-----::

;\NE";}IR

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. ६६९ ।
२. वही, पृ. ६८० ।
३. वही, पृ. ६८३ ।
४. वही, पृ. ६८४ ।
५. आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, पृ.७ ।
६. वही, पृ. ७ ।
७. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण, डॉ. मोहम्मद अजहर ढेरीवाला, पृ.१ ।
८. हिन्दी शब्द सागर, श्री नवलजी, पृ. १६२ ।
९. चतुरसेन शास्त्री का कथा कौशल, डॉ. भावना मेहता, पृ. ४२ ।
१०. आधुनिक परिदृश्य आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास, विद्यासिंहा, पृ. ५ ।
११. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना, डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, पृ. ७ ।
१२. समकालीन हिन्दी उपन्यास महानगरीय बोध, सीमा गुप्ता, पृ. २ ।
१३. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपालराय, पृ. २४ ।
१४. वैज्ञानिक उपन्यास और उपन्यासकार, साहित्यालोक प्रकाशन, पृ. ७० ।
१५. हिन्दी उपन्यासकला, डॉ. रामलखन शुक्ल, पृ. १५ ।
१६. उपन्यास : समय और संवेदना, विजय बहादूरसिंह, पृ. ४२ ।
१७. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र, दुर्गेशनन्दिनी प्रसाद, पृ. प्रस्ताविक ।
१८. आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री चरित्र, डॉ. सविता किर्ते, पृ. १४ ।
१९. बदलते परिप्रेक्ष्य और हिन्दी उपन्यास, डॉ. बीना जैन, पृ. भूमिका ।
२०. प्रेमचंद और नानकसिंह के उपन्यास, डॉ. तिलकराज, पृ. २६ ।
२१. हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. सुमनलता, पृ. १ ।
२२. हिन्दी अभ्यास पुस्तिका, डॉ. पुष्पा शर्मा, पृ. २३१ ।
२३. वही, पृ. २३२ ।
२४. वही, पृ. २३३ ।
२५. वही, पृ. २३२ ।
२६. वही, पृ. २३२ ।
२७. वही, पृ. २३४ ।
२८. वही, पृ. २३४ ।
२९. वही, पृ. २३५ ।
३०. वही, पृ. २३६ ।
३१. वही, पृ. २३६ ।

३२. वही, पृ २३७ ।
३३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. ६८५ ।
३४. नवम दशक के आँचलिक उपन्यास, डॉ. पांडुरंग पाटिल, डॉ. गिरीश काशिद,पृ. ९ ।
३५. वही, पृ. ९, १० ।
३६. वही, पृ. १० ।
३७. वही, पृ. १० ।
३८. हिन्दी गद्य साहित्य : उपलब्धि की दिशाएँ, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. ९१ ।
३९. वही, पृ. ९२ ।
४०. वही, पृ. ९२ ।
४१. वही, पृ. ९३ ।
४२. नवम दशक के आँचलिक उपन्यास, डॉ. पांडुरंग पाटिल, डॉ. गिरीश काशिद, पृ. १० ।
४३. वही, पृ. १२ ।
४४. वही, पृ. १२ ।
४५. हिन्दी उपन्यास सौं वर्ष का सफरनामा, डॉ. ए. ए. शेख, पृ. ९० ।
४६. वही, पृ. ९१ ।
४७. वही, पृ. ९२ ।
४८. वही, पृ. ९५ ।
४९. वही, पृ. ९६ ।
५०. वही, पृ. ९८ ।
५१. वही, पृ. ९९ ।
५२. वही, पृ. १०१ ।
५३. वही, पृ. १०२ ।
५४. वही, पृ. १०२ ।
५५. वही, पृ. १०६ ।
५६. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में साठोत्तरी उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, पृ. १४८
५७. वही, पृ. १४९ ।
५८. वही, पृ. १४९ ।
५९. वही, पृ. १५० ।
६०. वही, पृ. १५० ।
६१. वही, पृ. १५१ ।
६२. वही, पृ. १५४ ।
६३. वही, पृ. १५५ ।
६४. वही, पृ. १५८ ।

६५. वही, पृ. १६० ।
६६. वही, पृ. १६३ ।
६७. वही, पृ. १६५ ।
६८. वही, पृ. १६८ ।
६९. वही, पृ. १७० ।
७०. वही, पृ. १७१ ।
७१. वही, पृ. १७२ ।
७२. वही, पृ. १७३ ।
७३. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में साठोत्तरी उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, पृ. १८३ ।
७४. वही, पृ. १८५ ।
७५. वही, पृ. १९० ।
७६. वही, पृ. १९४ ।

अध्याय - २
नागार्जुन : व्यक्तित्त्व - कृतित्त्व

२.१ व्यक्तित्त्व ।
- २.१.१ जन्म-स्थान-परिवार ।
- २.१.२ बचपन ।
- २.१.३ शिक्षा ।
- २.१.४ दाम्पत्य जीवन ।
- २.१.५ जन्मजात विद्रोही प्रवृत्ति ।
- २.१.६ जीवन दृष्टि के निर्णायक तत्त्व ।

२.२ कृतित्त्व ।
- २.२.१ नागार्जुन का कविता साहित्य ।
  - २.२.१.१ रागबोध की कविताएँ ।
  - २.२.१.२ प्राकृतिक सौन्दर्य की कविताएँ ।
  - २.२.१ ३ प्रणयभाव की कविताएँ ।
  - २.२.१.४ यथार्थपरक कविताएँ ।
  - २.२.१.५ सामाजिक यथार्थपरक कविताएँ ।
  - २.२.१.६ आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करती कविताएँ ।
  - २.२.१.७ राष्ट्रीयता की भावपरक कविताएँ ।
  - २.२.१.८ व्यंग्यपरक कविताएँ ।
  - २.२.१.९ अन्य कविताएँ ।
- २.२.२ नागार्जुन का उपन्यास साहित्य ।
  - २.२.२.१ रतिनाथ की चाची ।
  - २.२.२.२ बलचनमा ।
  - २.२.२.३ नई पौंध ।
  - २.२.२.४ बाबा बटेसरनाथ ।
  - २.२.२.५ वरुण के बेटे ।
  - २.२.२.६ दु:खमोचन ।
  - २.२.२.७ कुम्भिपाक ।
  - २.२.२.८ अभिनंदन ।
  - २.२.२.९ उग्रतारा ।
  - २.२.२.१० जमनिया का बाबा ।
  - २.२.२.११ पारो ।
  - २.२.२.१२ शीर्षकहीन ।
  - २.२.२.१३ गरीबदास ।

२.२.३ नागार्जुन का कहानी साहित्य ।
२.२.४ नागार्जुन की अन्य रचनाएँ ।
२.२.४.१ मैथिली साहित्य ।
२.२.४.२ बाल साहित्य ।
२.२.४.३ संस्कृत काव्य ।
२.२.४.४ एक व्यक्ति : एक युग ।
२.२.४.५ अनुवाद ।

अध्याय : २
नागार्जुन : व्यक्तित्त्व - कृतित्त्व

उपन्यास गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि और अत्यंत लोकप्रिय विधा है जो मनुष्य के जीवन में घटित घटनाओं को खरी-खरी वर्णित करता है । सामाजिक यथार्थ का चित्रण उपन्यास की केन्द्रिय विशेषता है । उपन्यास की लोकप्रियता का एक प्रमुख आधार यह है कि इसमें शास्त्राधारित कोई शर्त नहीं होती । उपन्यास सबसे अधिक लचीली विधा है । इसलिए यह कभी निबंध, कभी नाटक, कभी कहानी और कभी रेखाचित्र के स्वरूप को धारण कर लेता है । नाटक की अभिनेयता जैसी कोई शर्त भी उपन्यास में नहीं होती । अत: पाठकों ने उपन्यास के रूप में एक ऐसी साहित्यिक विधा को पाया जो जीवन और कला की निकटता बनाए रखते हुए उन्हें पाठकों को संतुष्ट करता है । जीवन की अंर्तबाह्य स्थितियों के चित्रण करने और शैली की सहजता के कारण इसने अधिक से अधिक पाठक वर्ग पैदा किया है ।

नागार्जुन ने उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब उपन्यास विधा स्थापित हो चुकी थी और प्रेमचंद के उपन्यासों की प्रसिद्धि और लोकप्रियता घोषित हो चुकी थी। प्रेमचंद के बाद किसान और ग्राम्य जीवन को आधार बनाकर लिखनेवाले उपन्यासकारों में नागार्जुन प्रमुख है, जिनके उपन्यास अपने समय के समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था को समझने में हमारी मदद करते हैं । सरकार की जनविरोधी नीतियाँ, जमींदार वर्ग, जमींदार के सहायक सरकारी अधिकारी, महाजन जो लगान और ब्याज की वसूली करते हैं, प्राकृतिक आपदाएँ जैसे कि बाढ़, अकाल, महामारी ने भी । यथार्थ के विविध रूपों को वे अपनी रचना में दर्ज करते हैं । नागार्जुन स्वयं उस यथार्थ से होकर गुजरे हैं इसलिए उनके प्रस्तुतिकरण में अधिक प्रामाणिकता मिलती है । उनके उपन्यास प्रारम्भ होते ही शोषण-अत्याचार का एक विकृत संसार हमारे सामने मूर्त होता चला जाता है और एक भयावह दुनिया के सामने हम अपने आपको खड़ा पाते हैं ।

चाहे कविता हो या उपन्यास प्रेमचंद की तरह नागार्जुन की दृष्टि भी मूल्यपरक रही है । इस मूल्यपरकता को वे मानवीय संवेदना के विकास और मानव जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से आवश्यक मानते हैं । मूल्यवत्ता ने ही जीवन को इतना अधिक विश्रृंखलित बना दिया है, इस सत्य से वे वाकिफ है । कला को जीवन के लिए मानते हुए व्यक्ति के मानसिक विकास के साथ उसके कर्ममय जीवन को जोड़ने के वे पक्षधर रहे हैं । उनकी साहित्य संबंधी मान्यताओं में यह तथ्य निहित है कि प्रगतिशील दृष्टि ही कला और साहित्य के प्रयोजन को पूरा कर सकती है । इसलिए वे अमूर्त कला के विरोधी है । उनमें कलावाद, कल्पनावाद, रहस्यवाद जैसी अमूर्त धारणाओं के लिए स्थान नहीं है, जो प्रेमचंद की विचारधारा के मेल में हैं । इस सत्य से वे अवगत है कि अतिशय कल्पना और रहस्यवादी प्रवृत्तियों के कारण सामाजिक समस्याओं से रचनाकार की संबद्धता के सूत्र टूट जाते हैं ।

नागार्जुन जिस भाव और विचारबोध को लेकर उपन्यास में प्रवेश करते हैं वह नया नहीं है क्योंकि प्रेमचंद जैसे प्रगतिशील रचनाकार ने उस विषय पर रचनाएँ प्रस्तुत की थी और एक गहरी सामाजिक दृष्टि के द्वारा उपन्यास का धरातल और दिशा ही बदल दी थी । अतः नागार्जुन का मुहावरा उपन्यास में भले ही नया न हो लेकिन उनमें यथार्थ चित्रण का आग्रह बड़ा प्रबल है जिसके तहत वे समाज और राजनीति की उन अनुत्तरित समस्याओं से टकराकर उन्हें व्यापक परिप्रेक्ष्य में उठाते रहे हैं । जिनसे मानव अहर्निश जूझ रहा है । ''जहाँ प्रेमचंद अपनी लेखनी को मजदूर का फावड़ा समझते थे, वहाँ नागार्जुन हल फारा, प्रेमचंद ने जिस फावड़े से यथार्थ की जमीन तोड़ी थी, नागार्जुन उसमें लेखनी का हल चलाकर मानवता का बीजवपन करते हैं ।''१

२.१ व्यक्तित्त्व :

२.१.१ जन्म - स्थान - परिवार :

बाबा के नाम से लोकप्रिय हिन्दी और मैथिली के प्रख्यात कवि और कथाकार 'नागार्जुन' का पूरा नाम है श्री वैधनाथ मिश्र 'यात्री' । ''जून १९११ ई. में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को नागार्जुन का जन्म हुआ ।''२ इनसे पूर्व चार भाई- बहनों का शैशवकाल में ही देहांत हो चुका था । अतः उनके पिता ने वैधनाथ धाम (देवधर),

जिला संथाल परगना में जाकर पुत्र के दीर्घायु होने की मानता की । इसीके फलस्वरूप इनका नाम वैधनाथ रखा गया ।

नागार्जुन का जन्म अपने ननिहाल के ग्राम सतलखा, पोस्ट मधुबनी, दरभंगा में हुआ था पर पैतृक गाँव दरभंगा शहर से दस-पन्द्रह मील पूरब में 'तरौनी' है । यद्यपि इनका जन्म प्रसिद्ध मैथिली ब्राह्मणों ने संस्कृत पंडित घराने में हुआ था लेकिन इनके परदादा, दादा, पिता सब खेती करते थे ।

''मिथिला के ब्राह्मणों की वंश पंजिका के अनुसार मैथिल ब्राह्मणों की आनुवंशिक पंजी परम्परा का आरंभ १४वीं शताब्दी में हुआ था ।''[३] इसमें कई प्रसिद्ध विद्वानों का उल्लेख पाया जाता है, जिन्हें अपने समकालीन राजाओं द्वारा काफी भू-संपत्ति मिलती रही । दर्शन, व्याकरण और ज्योतिष का अध्ययन-अध्यापन इनके पूर्वजों का मुख्य विद्या व्यसन था । इन लोगों का गोत्र 'वटरु' है और कुल की शारदा, पलिवाड़ समौल थी । वाचस्पति (अभिनव) और रुचिपति आदि महामहोपाध्यायों का उल्लेख नागार्जुन के पूर्वजों में मिलता है ।

घराने में छोटा भाई होने के कारण नागार्जुन की पीछली चार-पाँच पुशतों के पूर्वज (पिता, पितामह, प्रपितामह) अल्पपठित रह गये । वे गाँव में रहते हुए अपने अंग्रेजों के परिवारों की निगरानी करते थे और अपनी खेती-बाड़ी में मस्त रहते थे । वस्तुतः उनका सम्पर्क विद्या से छूटकर धरती से स्थापित हो गया था । नागार्जुन के प्रपितामह का नाम था पारसमणि मिश्र, पितामह का नाम था छत्रपतिमणि मिश्र और पिता थे गोकुल मिश्र । ये तीनों ही अल्पपठित, किन्तु ईमानदार स्वभाव के लोग थे । इनकी प्रकृति में लापरवाही, घुमक्कड़ी और दायित्वहीनता परिलक्षित होती थी । इन्होंने जमकर कभी खेती-बाड़ी की हो, इस बात का सबूत किसी से नहीं मिला । हाँ सच्चाई, साहस, पर-दुःख, कातरता और मस्ती गोकुलनाथजी के प्रकृत गुण थे ।

दरभंगा मधुबनी उत्तरी बिहारी के राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र हैं । मधुबनी तो अपनी लोककला के लिए आज भी विख्यात है । दीवालों पर अल्पना रचने से लेकर महीन खादी तक की छपाई मधुबनी शैली के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ के तालमखाने सारे हिन्दुस्तान में अपने स्वाद के लिए जाने जाते हैं । यदि

बंगभाषियों को अपने भोजन-पान, लिबास और पांडित्य का अहंकार है तो उनका भी कान काटनेवाले मैथिल ब्राह्मण कुछ कम नहीं । मिथिला की मधुरता बंगाल से कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी है । वैसी ही शस्य श्यामल, उतनी ही द्रवणशील, रस में डूबी हुई, उतनी ही प्रखरता से सम्पन्न, प्रतिभा प्रसूतिनी । नागार्जुन इसी धरती के लहलहाते 'बाबा बटेसरनाथ' है जो अपने लेखन से मिथिलांचल ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान की नई पीढ़ी को यौवन का आशिष और संघर्ष की प्रेरणा दे रहे हैं ।

यह कहने की परिपाटी तो नहीं निभाना चाहता कि प्रतिभा का जन्म गरीबी और दारिद्रय में ही होता है तब नागार्जुन तरौनी (दरभंगा) के दरिद्र ब्राह्मण परिवार में ही जन्मे । ''पिता गोकुल मिश्र और माँ उमादेवी ने लगातार महीने भर का अनुश्ठान किया और जब छठवीं संतान ने जन्म लिया तो आस्थाव्रती दंपति ने कुलदीपक की रक्षा के लिए उसे बाबा वैधनाथ का ही आशीर्वाद मानते हुए नामकरण वैधनाथ किया ।''[४] गाँव-घर के लोगों को भय सताता रहा कि बालक वैधनाथ भी एक न एक दिन माँ-बाप को ठगकर चला जायेगा, तब उसे 'ढक्कन मिसिर' कहकर पहले से ही कलेजा पोढ़ा क्यों न कर लिया जाय । तो शिशु वैधनाथ गाँव-घर के लिए ढक्कन मिसिर हो गया । पैदा होते ही जिनके प्रयाण कर जाने की आशंका से कुल-परिवार के लोग आशंकित थे, वही बाद में चलकर 'यात्री' नाम से मैथिली उपन्यास और कविताएँ लिखने लगा । यात्री कितना दार्शनिक नाम है और ढक्कन मिसिर कितना यथार्थपरक! और दोनों कितना बढ़िया समन्वय प्रदर्शित करते हैं जब 'नागार्जुन' हो जाते हैं ।

२.१.२ बचपन :

नागार्जुन की माँ-उमादेवी-सरल प्रकृति की ग्रामीण महिला थी । उनकी सन्तानों में एक मात्र कवि नागार्जुन जीवित बचे थे उनको भी चार वर्ष की अवस्था में ही छोड़कर वे चली गई थी । इस प्रकार मातृविहीन बालक पर अपने घुमक्कड पिता का प्रभाव पड़ा जिससे उन्होंने भी आगे चलकर यायावरी जीवन ही अपनाया।

नाना के यहाँ से महिषी ग्राम में मिली भू-संपति की देखभाल के लिए जाकर बसने के साथ पिता श्री गोकुल मिश्र के साथ बालक वैधनाथ मिश्र का बचपन बीता। ''कोसी नदी की छोटी-सी शाखा घेमुड़ा नदी के किनारे बसा हुआ यह गाँव

कवि कथाकार नागार्जुन की बचपन की स्मृतियों का केन्द्र रहा है । नागार्जुन ने अपने बचपन का कुछ भाग यहीं पर व्यतीत किया ।''५ पिता की यायावरी प्रवृत्ति और परिवार के प्रति दायित्वहीनता उन्हें एक जगह नहीं टिकने देती थी । पिता की इस प्रवृत्ति का बालक नागार्जुन पर भी प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप इन्होंने भी घुमक्कडी जीवन अपनाया और विद्रोही प्रवृत्ति बढ़ती गई । जिसका रूप आगे चलकर देखने को मिला । न केवल भारत के सभी प्रान्तों बल्कि नेपाल, श्रीलंका देशों तक में इन्होंने कई वर्षो तक प्रवास किया और बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन और अध्यापन कार्य किया । विवाह भी इन्हें एक जगह नहीं बांध सका । विवाह के थोड़े दिन पश्चात् ही सन् १९३४ में घर से निकलने के बाद सन् १९४१ में ही नागार्जुन वापस लौटे । इस प्रकार रुढ़ियों, आडम्बरों, अंधविश्वासों और सामाजिक विषमताओं के प्रति विद्रोह की भावना का उदय शैशवकाल में ही हो चुका जो उत्तरोत्तर और अधिक दृढ़ होती गई ।

२.१.३ शिक्षा :

तरौनी ग्राम शिक्षा की दृष्टि से अपने अँचल में सबसे आगे रहा है । न केवल संस्कृत बल्कि अंग्रेजी शिक्षा में भी वहाँ के लोग उतनी ही रुचि लेते थे । नागार्जुन के पिताश्री उनको अध्ययन करवाना तो चाहते थे पर अंग्रेजी स्कूल में अध्ययन न करवा सकने की उनकी अपनी विवशता थी जो उन्हें आजीवन खलती रही । संस्कृत का अध्ययन करवाने में ज्यादा मुद्रा या तामझाम की आवश्यकता नहीं थी । उस युग में ब्राह्मण कुमारों को अध्ययन के लिए धनी सेठों की ओर निःशुल्क व्यवस्था थी । इसके अतिरिक्त पूजा-पाठ के द्वारा भी संस्कृत के छात्र दक्षिणा के रूप में थोड़ा-बहुत अर्जित कर लेते थे ।

''तरौनी ग्राम में संस्कृत की छोटी-बड़ी तीन पाठशालाएँ थी । दो लोअर प्रायमरी स्कूल (दो दर्जा तक) एक अपर प्रायमरी स्कूल (दर्जा चार तक) और कुछ दूर मिडिल स्कूल (दर्जा ७ वाला) पड़ता था ।''६ अपने इस सुसंस्कृत परिवेश का यथेष्ट प्रभाव कवि कथाकार नागार्जुन पर भी पड़ना स्वाभाविक था । इनके पिता एक साधारण किसान एवम् अल्पपठित होने के कारण अपनी जाति के बड़े-बड़े विद्वानों की बजाय जन-साधारण से अधिक घुले-मिले रहते थे । उन्हीं के साथ अपना दुःख-दर्द बाँटते । इन सबका प्रभाव बालक नागार्जुन पर भी पड़ा और वे

भी हम उम्र निम्न जाति के ब्राह्मण के साथ खेला करते थे । और ऊँच-नीच तथा बाह्य आडम्बरों आदि का इन्होंने सदैव विरोध किया । छात्र जीवन की एक घटना का उल्लेख करना यहाँ समीचरन होगा । काशी में जिस छात्रावास में रहते थे उसकी निचली मंजिल में धर्मशाला थी । त्यौहार आदि के दिनों में यहाँ यात्रियों की भीड़-भाड़ रहती थी । एक बार यात्रियों के चले जाने के पश्चात् किसी कोठरी से भयंकर बदबू आ रही थी । कोठरी खोलकर देखने की हिम्मत किसीकी नहीं थी । नागार्जुन न गये, कोठरी खोलकर देखा एक बुढ़िया की लाश सड़ रही थी । ये अपने एक साथी के पास गये और उसे सारी बात बताई । एक चादर में बुढ़िया की लाश को लपेटकर दोनों साहसी युवकों ने मणिकर्णिका घाट ले जाकर स्वयं अपने हाथों से उसका दाह संस्कार कर दिया ।

नागार्जुन ने संस्कृत के गहन अध्ययन किया । साहित्यशास्त्र में आचार्य तक पढ़े । व्याकरण मध्यमा उन्होंने काशी से संस्कृत विद्यालय से चार साल पढ़कर किया । फिर एक साल पचगछिमा (जिला सहरसा) और एक साल कलकत्ता रहे । अध्ययन के दौरान ही ये संस्कृत में कविता करने लगे थे । ''संस्कृत भाषा में अनुष्टूप, वसन्ततिलका, पृथ्वी, शिखरणी आदि छन्दों का अन्दाज मिल गया था । समस्यापूर्ति की शैली में वैधनाथ मिश्र के अन्दर जन्मे कवि के भावों को बाँधना सिख लिया था ।''७ इस सिलसिले में नागार्जुन अपने प्रथम काव्य गुरुश्री अनिरुद्ध मिश्र को कभी नहीं भूलते । काशी में कवि रत्न सीताराम झा से परिचित होने पर भाषा, छनद आदि का अभ्यास सहज हो गया । मैथिली और हिन्दी की आरम्भिक रचनाएँ सुना है किसी मिश्र परिवार में अब भी सुरक्षित है । नागार्जुन संस्कृत कविताओं के लिए समस्यापूर्ति की प्रतियोगिता में कई बार पुरस्कृत हुए थे । नाटकों में प्राकृत, मागधी आदि भाषाएँ आकर्षित करने लगी । लगे हाथ पालि भाषा का भी अभ्यास हो चला । इसी क्रम में आगे उन्हें लंका पहुँचा दिया ।

लेकिन नागार्जुन के गुरुजन उनकी काव्य-रसिकता से तनिक भी प्रभावित नहीं हुए । क्योंकि उनके अनुसार तो संस्कृत के व्याकरण एवम् शास्त्रीय तर्को से युक्त पांडित्य प्रदर्शन में ही विद्वता परिलक्षित होती है । लेकिन नागार्जुन तो इन सबसे अलग अपनी प्रखर मेधा द्वारा काव्य रचना कर हिन्दी के एक प्रखर व्यंग्यकार और कथाकार के रूप में उभर रहे थे और इसी क्रम में काशी को त्यागकर वे कलकत्ता चले गये ।

कलकत्ता में ''कॉलेज के प्रिन्सिपाल थे डॉ. सुरेन्द्रनाथदास गुप्त । संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला के प्रकाण्ड विद्वान रवि डाफट । बाधा प्रिन्सिपाल कहाँ पाये जाते थे । मने बहुत दबंग । तमि एक बार बटि बाधा मानुस' ऐसा कहते हैं बंगला में समझ गये ना ? कॉलेज में छात्रवृत्तियों के नाम तक होनेवाले थे । पन्द्रह रुपये का था वजीफा पन्द्रह बहुरा होते थे उन दिनों !''८

सवाल यह था कि बाधा प्रिन्सिपाल से छात्रवृत्ति के लिए कहाँ, कैसे जाये ? वैधनाथ ने एक अर्जी लिखी बहुत सुन्दर अक्षरों में, संस्कृत में प्रयुक्त हुआ है । अर्जी लिखी तो गई लेकिन भेजी जाये ? पुरबिया दरबान था प्रिन्सिपाल साहब का। उसको दिया चार आना अर्जी पहुँचाने का । चार आना उन दिनों बहुत होता था ।

बाधा प्रिन्सिपाल चमत्कृत हुए । किसने लिखी है ? खोज हुई कक्षा में पूछताछ हुई और 'ऐइ घोरो गोजो, गोय पकड़े गये कविवर ।' छात्रवृत्ति उन्हें मिली। किन्तु आचार्य की जमने-जमाने का इस प्रकार जुगाड़ होने के बावजूद धडल्ले से बंगला बोलने-लिखनेवाले वैधनाथ बाबू कलकत्ता से भी भाग खड़े हुए पहला अवसर मिलते ही ।

''सन् १९३४ में घर से निकलने के पश्चात् नागार्जुन भारत के विभिन्न प्रदेशों की घुमक्कडी करते रहे और इसी बीच करीब आठ-दस महीनों तक पंजाब में मासिक 'दीपक' का सम्पादन भी किया और वहाँ से भी स्वामी केशवनन्द का आशीर्वाद लेकर दक्षिण की ओर चल दिये । दर मँजझा दर कूँचा ।''९

सन् १९३६ के अन्त में नागार्जुन सिंहलदीप चले गये । वहाँ बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए । संस्कृत का अध्ययन यहाँ काम आया और यहाँ पालि के पण्डित भी बने तो अंग्रेजी भी यहीं सीखी । इस तरह राहुली के छोटे भाई नागार्जुन को इतनी भाषाएँ बखूबी आती है, वे धडल्ले से उन्हें पढ़ लेते हैं; मातृभाषा मैथिली, पैतृक भाषा संस्कृत, पालि, अर्ध मागधी, अपभ्रंश, सिंहली, तिब्बती, मराठी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी, सिन्धी इत्यादि । सिर्फ पढ़ते ही नहीं रुचि से उसके नवीनतम् साहित्य और कविता शैलियों से अपने आपको परिचित कराते रहते है । 'बाबा'

के पास कल के भोजन के पैसे नहीं है पर दिल्ली से सेन्ट्रल न्यूज एजेन्सी से नयी बंगाली, मराठी, पंजाबी पत्र-पत्रिकाएँ खरीद कर ले जा रहे हैं ।

वैधनाथ मिश्र को संस्कृत विद्या की जानकारी सिंहलद्वीप में बहुत काम आयी। विद्यालंकार परिवेण में वह बौद्ध सन्यासियों को संस्कृत माध्यम से व्याकरण और दर्शन आदि पढ़ाते थे और स्वयं वहाँ के आचार्यो से पालि भाषा के माध्यम से बौद्ध दर्शन का अध्ययन करते थे । नागार्जुन लगभग दो वर्षो तक लंका में रहे । यह सारा का सारा समय अध्यापन एवम् अध्ययन में बीता ।

२.१.४ दाम्पत्य जीवन :

नागार्जुन का विवाह काशी में अध्ययन करते समय ही हो गया था । वे कहते हैं कि गर्मियों की छुट्टियों में घर जाया करता था । उस साल भी गर्मियों में घर गया था और सौराठ का मेला देखने के मूड़ में मौसी के घर गया था । उन्हें पता नहीं था पिताजी एक सौभाग्यकांक्षिणी विशेष को चुन आये हैं और कहीं प्रस्ताव उधर से ठुकरा न दिया जाये, इस आशंका से वधूपक्ष से पैसे लेने के बजाय पैसे दे आये हैं । आज भी वयोवृद्ध दम्पति में इस बात को लेकर नोंक-झोंक होती है ।

''नागार्जुन का विवाह अठारह वर्ष की आयु में १६ (सोलह) वर्षीया अपराजिता देवी से हुआ था ।''[१०] उनके मन में अपनी पत्नी के लिए हमेशा सहानुभूति का भाव रहा है । लेकिन यायावरी वृत्ति के कारण यथोचित प्यार और स्नेह नहीं पाये । वे कभी भी ३,४ महीने से ज्यादा अपनी पत्नी के सानिध्य में नहीं रहे । सन् १९३४ में जब उन्होंने घर छोड़ा तो उसके बाद सन् १९४१ में ही घर वापस लौटे । नागार्जुन को तीन-तीन वर्ष बीत जाते हैं और वे अपने घर दरभंगा के ग्रामांचल में नहीं पहुँच पाते । उनके परिवारवाले और रिश्तेदारों का कहना है कि ऐसे गृहस्थ से संन्यासी ही अच्छा है ।

''सन् १९३४ से घर छोड़ने के बाद वह पिता के आग्रह पर सन् १९४१ में ही घर वापस गये । उस समय वे भागलपुर सेन्ट्रल जेल में बंद थे ।''[११] पिता ने जेलर से कहा कि जब इसे आप रिहा करना हो तो हमें तार देकर बुलवा लेना क्योंकि यह लड़का वर्षो से घर से गायब है और एक छबिया के पीठ में छुरा

घोंपकर बाबाजी बना फिर रहा है । जेल से छूटने पर उनके पिताजी उन्हें वापस घर ले गये । नागार्जुन घर तो जरूर गये, लेकिन उनका मन मार्क्सवादी विचारधारा के इर्द-गिर्द ही घूम रहा था । पुनः गृहस्थाश्रम में वापस आने पर इनके ससुरालवालों और नवयुवकों ने स्वागत किया, लेकिन कुछ दकियानुसी विचारधारा के लोगों ने इसका विरोध किया । उनका कहना था - ''एक तो सन्यास से वापस आया और दूसरे समुद्र पार गया । तीसरी बात थी बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ, बौद्ध तो आधा मुसलमान होता है, आधा ईसाई । वे गाय भी रखते हैं और सुअर भी । यह लड़का ब्राह्मणों के समाज में वापस नहीं लिया जा सकता है । लेकिन मिथिला के नवयुवकों ने इनके गृहस्थाश्रम में आने का स्वागत किया और यही कारण है कि युवकों के प्रति नागार्जुन आशावादी दृष्टिकोण रखते हैं । इस आशावाद की अभिव्यक्ति उनके उपन्यास 'नई पौंध' और 'बाबा बटेसरनाथ' में हुई है । गृहस्थाश्रम में वापस आने पर ससुरालवालों ने बाहर न निकलने का फरमान जारी कर दिया और पडोस के शहरों में जाने पर भी सुरक्षा-सन्तरी साथ कर दिये जाते थे ।

नागार्जुन जैसे विप्लवी युवक के पीछे उस जमाने में जासूस घूमा करते थे। ''सन् १९४३ में पिता की मृत्यु के बाद घरेलू दायित्व अपराजिता देवी ने संभाल लिया । लेकिन जमीन-जायदाद के नाम पर मात्र १० कट्ठा जमीन शेष बनी थी।''[१२] अपराजिता देवी एक सम्पन्न किसान की बेटी थी । जीवनयापन के लिए यह जमीन पर्याप्त नहीं थी उनकी बड़ी इच्छा थी कि धान के लिए अपने पास दो एकड़ अच्छी जमीन होती, लेकिन उनकी यह अभिलाषा कभी पूरी नहीं हुई ।

नागार्जुन के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं । पुत्र शोभाकांत, सुकांत, श्रीकांत और श्यामाकांत, पुत्रियाँ उर्मिल और मंजु । उपेक्षावृत्ति और धनाभाव के कारण संतानें उच्च शिक्षा से वंचित रह गई । बड़ा लड़का शोभाकांत ब्रह्मानन्द कला विद्यालय दरभंगा में पढ़ता है । सुकांत पटना में पत्रकार है । तीसरा पुत्र श्रीकांत मिश्र दिल्ली में पुस्तक प्रकाशन में है । और छोटा लड़का श्यामाकांत विदिशा (मध्यप्रदेश) में है ।

२.१.५ जन्मजात विद्रोही प्रवृत्ति :

नागार्जुन का बचपन उपेक्षा एवम् अभाव में बीता । उनके बचपन के हमउम्र दोस्त निम्न जाति के बच्चे थे । निम्न जातियों के बीच रहने के कारण नागार्जुन ने गरीबी, अभाव, भूखमरी को नजदीक से देखा । आर्थिक विषमता का यह दृश्य उनके मानस पटल पर गहरा असर छोड़ता रहा । उच्च जातियों के पाखण्ड, शोषण एवम् झूठे दंभ को उन्होंने करीब से महसूस किया । नागार्जुन का जन्म खुद एक सनातन ब्राह्मण परिवार में हुआ था । ब्राह्मण वर्ग में पनपने वाले झूठे दंभ, अहंकार, छुआछूत और अंधविश्वास को उन्होंने नजदीक से देखा और समझा है । यही कारण है कि वे ब्राह्मण को आज भी पुरातनपंथी का प्रतीक मानते हैं । वे कहते हैं ब्राह्मण की खोपड़ी यूँ तो ज्ञान की भंडार होती है पर पुरातनी पंथी से वह एक किस्म का मालगोदाम भी बन जाती है या ऐसे कह लो कबाड़ी का स्थान चिपके हुए है पंडित गली-सड़ी रुढ़ियों से दम्भ और अहंकार के साथ । धर्मशास्त्र जो लिखे गये बस वही हमारा जाजम वही हमारा ओढ़न । ''नागार्जुन हिन्दू मानस में पनपनेवाली विसंगतियों पर भी करारा व्यंग्य करते हैं । हिन्दू धर्म में पनपनेवाले अंधविश्वास, घृणा, छुआछूत, जातिवाद और वर्णभेद के खिलाफ वे हमेंशा संघर्षरत रहे हैं ।''[१३] नागार्जुन ने इन सारी विसंगतियों को मिथिलांचल में नजदीक से अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में हुई है । बचपन में मिली हुई उपेक्षा और अभाव ने उनको गरीबों के नजदीक ला दिया । उनके मन में शुरू से ही आडम्बर और दिखावे के प्रति सख्त नफरत है । गरीबी और सामन्ती शोषण का यथार्थ चित्रण हमें उनके उपन्यास 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' में मिलता है। 'बलचनमा' में बलचनमा की दादी आम की गुठली को कूट कर खाती है, तो 'वरुण के बेटे' में खुरखुन के बच्चे मछली को वैसे ही भून कर खाते है क्योंकि उनके यहाँ मछली बनाने के लिए तेल भी नहीं है । आर्थिक विपन्नता का यह दृश्य उन्होंने बचपन में निम्नवर्ग के परिवारों में देखा था । जिसकी अभिव्यक्ति बाद में उनके उपन्यासों में हुई । सर्वहारा के प्रति बाल्यावस्था में उपजी सहानुभूति ने बाद में उनका पक्षधर बना दिया । बचपन में ही जब वे काशी में पढ़ते थे तो उन्होंने एक अज्ञात लावारिस लाश की अंतिम क्रिया की, जिसके कारण छात्रावास के अध्यापकों एवम् छात्रों का कोपभाजन बनना पड़ा था । उनके मन में धार्मिक कुरीतियों एवम् प्रवृत्तियों के विरुद्ध जो भावना पनप रही थी, उसीने उन्हें इनके विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया ।

प्रकाश चन्द्र भट्ट बचपन की इन विद्रोही प्रवृत्तियों के बारे में कहते हैं - ''यं ही संस्कार भावी जीवन की भूमिका के रूप में नागार्जुन के हृदय पर ऐसा स्थाई प्रभाव जमा गये कि जिनके कारण आडम्बरों, रुढ़ियों और विषमताओं के विरुद्ध उनकी लेखनी जमकर चली । तरुणाई में इसी प्रकार सामाजिक संकिर्णताओं के और भी विकराल आभास रहने से वैधनाथ के मन में विद्रोही भाव-भूमि उभरती गई ।

''नागार्जुन के मन में पिता द्वारा माता के प्रति किये गये बर्बर व कठोरतम व्यवहार की छाप अमिट रूप में हमेंशा बनी रही, जिसकी अभिव्यक्ति 'रतिनाथ की चाची' में मिलती है । नागार्जुन के मन में माँ के प्रति जो भावना व सम्मान था उसकी झलक हमें बलचनमा की माँ, हरखू की माँ (दुखमोचन) आदि पात्रों में मिलती है ।''१४ नारी के प्रति सम्मान व आदर की भावना का जन्म इन्हीं संस्कारों के कारण हुआ । नागार्जुन के अधिकांश नारी पात्र जागरुक और चेतनशील है और अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत भी है । नागार्जुन ने अनमेल विवाह और वैधव्य जीवन के अभिशाप का जो रूप मिथिलांचल में देखा था उसीकी अभिव्यक्ति उन्होंने 'रतिनाथ की चाची', 'पारो', 'नई पौंध', 'उग्रतारा' आदि उपन्यासों में की है। नागार्जुन इन सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आक्रामक स्वर में अपनी आवाज उठाते रहे ।

नागार्जुन ने बचपन में जो आर्थिक विषमता, सामंती शोषण, अत्याचार, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, छुआछूत और अन्य आर्थिक-सामाजिक विषमताओं का नग्न दृश्य देखा था उन्हें समाप्त करने के लिए जूझते रहे । क्योंकि वे जानते हैं कि बिना इन सामाजिक बुराइयों से छुटकारा पायचे समाजवादी समाज की परिकल्पना अधूरी रहेगी । नागार्जुन कें मन में सर्वहारा के प्रति गहरी आस्था है । यही वैचारिक प्रतिबद्धता उन्हें शोषित, पीड़ित किसानों और मजदूरों से जोड़ती है । जन्मजात विद्रोही प्रवृत्ति ने उन्हें हिन्दी साहित्य में एक बेजोड़ व्यंग्यकार के रूप में उपस्थित किया जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हर तरह के विसंगतियों के खिलाफ सीना ताक कर खड़ा हो जाता है ।

२.१.६ जीवन दृष्टि के निर्णायक तत्त्व :

नागार्जुन का जन्म एक सनातनधर्मी, संस्कारहीन, रुढ़ीवादी परिवार में हुआ था । बचपन के ४ साल स्नेहमयी माँ के वात्सल्य में बीता । तत्पश्चात् उनका शेष युवा अवस्था कठोर, मुर्ख, दरिद्र, सनातनी पिता के संरक्षण में बीता । लेकिन वे पिता को अपने माँ के प्रति बर्बर स्वभाव को जिन्दगी भर नहीं भूले । इनके पिता की आसक्ति इनकी चाची पर थी । चाची ने नागार्जुन को अपार स्नेह प्रदान किया इसलिए वे 'रतिनाथ की चाची' में चाचीकी अस्थि कलश को प्रवाहित करते समय याद करते हैं । - ''अमावस की उस रात को कौन था चाची ? एक घनी और अंधेरी छाया तुम्हारे बिस्तर की तरफ बढ़ आई । वह क्या थी चाची ? सदा के लिए तुम्हारे सिर पर कलंक का टीका लगा गई ।'' इनको अपने पिता के प्रति प्रतिशोध की भावना थी । क्योंकि उन्होंने इनकी माँ को परेशान किया था । मनोहर श्याम जोशी को दिये गये साक्षात्कार में स्वीकारते हैं - घृणा हम नहीं कहेंगे, क्रोध अवश्य था । प्रतिशोध की सी भावना थी । समझ गये ना कि इन्होंने हमारी माँ को परेशान किया, हम इन्हें करेंगे ।''

''बचपन में माँ के प्रति पिता का व्यवहार ही उनके अन्दर नारी के प्रति श्रद्धा की भावना जागृत किया ।''[१५] बचपन में नागार्जुन के हम उम्र दोस्त निम्न जाति के बच्चे थे । उनका बचपन इन्हीं निम्न जाति के बच्चों के साथ बीता । इसी कारण इनके अन्दर शोषितों व पीड़ियों के प्रति गहरी सहानुभूति है । इन गरीबों की जिन्दगी को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा है । सामंतों और जमींदारों के शोषण के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं । काशी प्रवास के दौरान एक लावारिस बुढ़िया का दाह संस्कार इन्होंने अपने मित्रों की सहायता से किया । इसी कारण इनके अन्दर रुढ़ियों, आडम्बरों और कुरीतियों के प्रति विद्रोह की भावना बचपन में ही जागृत हुई । ''सन् १९३० के आस-पास वे वाराणसी में सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों से वाकीफ होने लगे थे । समाचार-पत्रों को पढ़ने की रुचि उनके अन्दर यही से जागृत हुई ।''[१६] संस्कृत, पालि व प्राकृत का विशेष अध्ययन उन्होंने किया । उनके सनातनी संस्कार पर आर्य समाज का प्रभाव काशी प्रवास के दौरान पड़ा । नागार्जुन ने काशी प्रवास के दौरान ही कवि अनिरुद्ध की प्रेरणा से काव्य रचना शुरू किया । यहीं पर वे बौद्ध धर्म के समतावाले सिद्धांत से परिचित हुए । १९३६ में बौद्ध दर्शन की दीक्षा लेने से पूर्व नागार्जुन का जीवन अभाव ग्रस्त व घुटन भरा था ।

नागार्जुन ने अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए प्रगतिशील व सामाजिक परिवर्तन के रास्ते को अपनाया, इसलिए तो गरीबी, कुसंस्कार और रुढ़िग्रस्त पंडिताऊ परिवेश नागार्जुन को मिल नहीं पाये । नही ंतो वे चुटन्ना और जनेऊवाले पंडित होते । नागार्जुन पुरातनपंथी को माल गोदाम मानते हैं। सड़ी-गली रुढ़ियों का नागार्जुन अगर इन शक्तियों से समझौता किये होते तो आज दरभंगा में पुरोहिताई करते होते । उन्होंने हमेंशा प्रतिक्रियावादी शक्तियों का विरोध किया ।

लंका-प्रवास के दौरान ही नागार्जुन का संघर्षशील जीवन शुरू होता है और वे वामपंथी विचारधारा के प्रभाव में आते हैं । उन्होंने यहाँ पर 'विद्यालंकार परिवेण' में आकर बौद्ध धर्म दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षु बन गये । वे प्रख्यात तत्त्ववेता नागार्जुन के दार्शनिक ग्रंथों का अनुवाद करना चाहते थे और यहीं पर उन्होंने अपना नाम भिक्षु नागार्जुन रख लिया । इसी जगह पर राहुल सांकृत्यायन, महंत आनन्द, कौशल्याय आचार्य जगदीश कश्यप, भवंतशांति भिक्षु आदि की मंडली में सम्मिलित होकर समतावाला सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया । वे लंका प्रवास के दौरान ही इन साथियों के साथ लंका-समाज स्थापित किया । सन् १९३८ में देश वापस लौटने पर स्वामी सहजानंद की प्रेरणा से किसान आंदोलनों में शरीक हुए । स्वामी ने कहा - ''अतीत बिल में मत घूसे रहो । वर्तमान संघर्ष के खुले मैदान में आओ ।''यहीं से राजनीति की दीक्षा शुरू हुई । उन्हें वामपंथी राजनीति में लाने का श्रेय राहुलजीर व स्वामी सहजानंद को है । स्वामीजी की प्रेरणा से वे किसान आन्दोलनों में कूद पड़े । भागलपुर जिले के जेल में इनकी भेंट भगतसिंह के साथी केदारमणि शुक्ल से हुई । जेल से छूटने के बाद वे पुनः पिता के आग्रह पर घर वापस आकर गौना कराया, लेकिन नागार्जुन का मन घर पर नहीं लगा । घर से विरक्ति का कारण पिता की चाची पर आसक्ति भी थी । मनोहर श्याम जोशी को दिये गये साक्षात्कार में वे स्वीकारते हैं - ''चाची हमारी माँ के लिए दो पैसों की दवा नहीं करने देती थी । हम को बराबर लगा कि पिता चाची के इशारों पर माता की उपेक्षा करते हैं ।''

स्वामी सहजानंद के बाद नागार्जुन सुभाषचन्द्र बोस के सम्पर्क में आये, लेकिन यह सम्पर्क मात्र पत्रों तक ही सीमित रहा । ''नागार्जुन की दूसरी गिरफ्तारी

फॉरवर्ड ब्लॉक की ओर से छपनेवाले युद्ध विरोधी परिपत्र के सिलसिले में हुई थी।''[१७] उस समय वामपंथियों और राष्ट्रवादियों का मुख्य नारा था 'न एक पाई न एक भाई' अंग्रेजी सरकार के बिना भारतीय नेताओं से पूछे वह देश की जनशक्ति और धनशक्ति को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंके जा रही थी ।

इसी प्रकार नागार्जुन पर प्रेमचंद, निराला, राहुल आदि साहित्यकारों का भी उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा । सन् १९३५ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद प्रेमचंद द्वारा उसका समर्थन करने के कारण कवि नागार्जुन भी उस ओर झुक पड़े । नागार्जुन के हृदय में शोषित किसान-मजदूर की पीड़ा धधक रही थी । १९३६ के कांग्रेसी सरकार द्वारा जमींदारों व उच्च वर्गो के साथ गठजोड़ का उन्होंने पर्दाफाश किया । किसानों के आन्दोलनों का नेतृत्व करनेवाले नागार्जुन अपने कथा साहित्य रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा में उनके संघर्षो का चित्रण किया है । जमींदारों द्वारा निम्नवर्ग के शोषण व उनके प्रति अत्याचार का दस्तावेज इनका उपन्यास 'बलचनमा' व 'बाबा बटेसरनाथ' है ।

''१९७४-७५ नागार्जुन जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन संपूर्ण क्रान्ति में शरीक हुए । उन्होंने आन्दोलन के दौरान जनजागरण के लिए पटना के नुक्कड़ों पर कविता पाठ किया, लेकिन जेल के दौरान उन्होंने महसूस किया कि पूरा आन्दोलन दक्षिणपंथियों के चंगुल में फँस गया है । जेल से वापस आने पर उन्होंने बयान दिया कि वेश्या की गली में भटक गये थे ।''[१८] १९६२ में चीन के आक्रमण के समय उन्होंने राष्ट्र की अस्मिता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए साम्यवादी चीन की आलोचना की और अपने उपन्यास 'उग्रतारा' में लिखते हैं - ''देश की दौलत को नुकसान पहुँचानेवाला हमारा वैसा ही दुश्मन है जैसा कि हमारी सीमाओं के अन्दर घुसपैठ करनेवाला । हम न उसको छोडेंगे न इसको । नागार्जुन के स्वभाव व जीवन दृष्टि को प्रभावित करने में उनके जीवन का संघर्ष और कटु अनुभव रहा । ''वे राहुलजी, स्वामी सहजानंद के सम्पर्क में मार्क्सवाद से प्रेरणा ग्रहण किये । उनके हृदय में शोषित, दलित व नारी के प्रति हमेंशा गहरी संवेदनशीलता रही है ।''[१९] नागार्जुन के व्यक्तित्त्व को निखरने में उनके जीवन के कटु संघर्षो के अलावा उस प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचार दर्शन का योगदान है, जिसकी प्रारम्भिक शिक्षा स्वामी सहजानंद से मिली । जिसने उनके जीवन के हर निर्णायक और नाजुक मोड़ पर उनकी जीजिविषा को नई तेजस्विता प्रदान की है ।

नागार्जुन सच्चे अर्थो में एक समाजवादी, यथार्थवादी कथाकार है । मार्क्सवाद में उनकी गहरी आस्था है, लेकिन इस विषय में किसी भी प्रकार की कैद के वे विरुद्ध है । वे कहते हैं कि – हम सर्वहारा के साथ हैं । अपनी राजनीति में, साहित्य में वे संगठन के विरोधी नहीं हैं । लेकिन विवेक को गिरवी रखकर नहीं । वास्तव में नागार्जुन की वैचारिक प्रतिबद्धता सर्वहारा वर्ग के प्रति है जो उन्हें श्रमजीवी मजदूर, किसान व उत्पीड़ित जनता के साथ जोड़ती है ।

२.२ कृतित्त्व :

नागार्जुन जीवन और साहित्य दोनों में पीड़ित जन के पक्षधर रहे हैं । इन्होंने साहित्य में पदार्पण किया तब मार्क्सवाद का आग्रह अधिक था । ''लन्दन में १९३५ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हो चुकी थी । तत्कालीन लेखकों पर समाजवादी यथार्थवाद का आग्रह बढ़ता जा रहा था ।''[२०] नागार्जुन जब स्वयं अभावग्रस्त, अर्थपीड़ित व उच्च वर्ग द्वारा शोषित रहे हो तो इस ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था, जब कि समाजवादी यथार्थवाद का तात्पर्य भी निम्नवर्गीय समाज की पीड़ाओं का चित्रण और उसे उच्च वर्ग के शोषण से मुक्ति दिलाना था। किसानों, मजदूरों के मध्य रहकर सतत संघर्षशील मानवता को संत्रासों से मुक्ति के लिए संघर्ष और उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति । समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं के मूल कारण को पहचान कर उन्हें नष्ट करने के प्रतिक्रियात्मक हल प्रस्तुत करता है । इसके अन्दर ऐसे समाजों का चित्रण उपस्थित किया जाता है जो उपेक्षित निम्नश्रेणी के हों तथा जीवनयापन के प्रस्तुत अपनी विषम परिस्थितियों में संघर्ष कर रहे हो ।

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् १९३६ में हुई । जिसके अध्यक्ष प्रेमचंद थे । प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन से जोड़ते हुए कहा कि – हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता नहीं जिससे नैराश्य छा जाये । हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, हममें गति, संघर्ष और बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है । और नागार्जुन गरीबों के हित के लिए सदैव संघर्षशील रहे । ''छपरा में गरीब खेतिहरों का साथ देते हुए राहुलजी

गिरफ्तार हो गये तो आन्दोलनों का रूप और उग्र हो गया । जिसका नेतृत्व नागार्जुन ने किया और अन्ततः उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया ।''[२१] इसी देहाती होने का कारण देहात की समस्याओं, कठिनाइयों से निकट का परिचय होने के कारण उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई और उनकी सहायता में सदैव आगे रहे । पीड़ितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवम् विचारों के प्रस्फूटन में मार्क्सवादी विचारधारा ने सहायता पहुँचाई । राजनीति से सक्रिय रूप से सम्बद्ध नागार्जुन साहित्य के राजनीतिक महत्व को मानते हैं । उनके कथानुसार शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है । संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं उन्हें उभारता हूँ ताकि रग-रग में माहौल पैदा हो जाये । साम्यवादी होने के कारण वे वर्ग संघर्ष में आस्था रखते हैं और सर्वहारा जनता ही उनकी आराध्य हो जाती है । मानते हैं कि अस्सी प्रतिशत (जनता या किसान) हमारे इष्ट देवता है, जो जीवन के आसपास फैली हुई है । मैं भी उन्होंने उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ है । समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूँ । पात्रों के साथ मुस्कुराता हूँ, उनसे बात करता हूँ । मैं ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नहीं चुनता जिसमें मैं नहीं हूँ ।

सादे जीवन एवम् परिवेश तथा प्रगतिशील विचारधारा ने नागार्जुन के दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की । सामान्यजन के प्रति पक्षधरता इनके सम्पूर्ण साहित्य में अभिव्यक्त हुई है ।

''नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अनेक विविधताओं और सम्पन्नताओं के रचनाकार हैं । न केवल हिन्दी बल्कि मैथिली, संस्कृत और पालि में भी रचना करते रहे हैं और भाषाएँ तो न जाने कितनी आती है । पंजाबी, अंग्रेजी भाषाएँ वे धडल्ले से लिख-पढ़ सकते हैं ।''[२२]

साहित्य की ओर रुचि बचपन से रही । नागार्जुन की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'राम के प्रति' कविता थी । जो सन् १९३५ में 'विश्वबंधु' साप्ताहिक (लाहौर) में छपी । इसी समय मैथिली में उनकी कुछ कविताएँ और उपन्यास प्रकाशित हुए । मैथिली को प्रथम प्रकाशित रचना 'मिथिला' (मासिक, लहोरिया सराय) में १९३० में छपी थी । मैथिली और संस्कृत से लेखन आरम्भ कर नागार्जुन हिन्दी साहित्य में अवतरित हुए ।

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में पदार्पण से पूर्व नागर्जुन की 'यात्री' नाम से लिखी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थी । वह काल पराधीनता का काल था जिसमें नागार्जुन को अपने आसपास का परिवेश बार-बार झकझोर रहा था । जनता दोहरे शोषण से पीड़ित थी । एक ओर अंग्रेजों की गुलामी तो दूसरी ओर जमींदारों का शोषण । सामान्यजन इस दोहरी चक्की में पिसता हुआ हाँफ रहा था । ऐसे में नागार्जुन जैसे संवेदनशील कथाकार असम्पृक कैसे रह सकते थे ? ये न केवल अपने साहित्य में बल्कि व्यक्तिगत जीवन में भी शोषित मानव के 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के मध्य जागृत नई चेतना को चित्रित कर अपनी सजगता का परिचय दिया । अपनी कविताओं में भी प्रामाणिक जमीन ही परिलक्षित होती है । इस प्रकार नागार्जुन किसी एक देश, जाति, वर्ग या वर्ण के कवि नहीं हैं । ''वह समूची जाति, मानव जाति के कवि हैं । सम्पूर्ण विश्व की पतीत, पराजित, शोषित, दलित इन्सानियत के कवि हैं ।''[२३] उन्होंने भी विराटजन समूह में स्वयं को तिरोहित कर लिया है । वे एक चलायमान अक्षोहिणी के साथ चलते है - वह जहाँ भी जाये क्योंकि उसकी बुद्धिमता तथा त्रुटियों दोनों को समझते हैं । यह नहीं है कि जनता कभी गलती नहीं कर सकती या कवि कभी गलत नहीं हो सकता- दोनों ही एक साथ या अलग-अलग गलतियाँ कर सकते हैं और उन्हें सुधारेगे भी वही-लेकिन कवि जनता से श्रेष्ठत्तर अथवा यह महस्तर नहीं है । नागार्जुन की यहाँ यही असली विनम्रता है ।

जहाँ कहीं शासन दलन, शोषण, उत्पीड़न, आक्रमण, अन्याय है, वहाँ नागार्जुन को अपने वर्गगत शत्रु नजर आते हैं । ये शत्रु गाँधी के हत्यारे भी हो सकते हैं, संहारक भी, कालीमाई भी हो सकती है । बस सर्विस को बन्द करनेवाली व्यवस्था भी । नागार्जुन न शासन की बन्दूक से धबराते हैंन सत्ता की मस्ती में भूली हुई इन्दुजी से । सत्ता जब अतिवाद बन जाती है तब नागार्जुन की हलक से प्रसर गूँज सुनाई देने लगती है । इस प्रकार नागार्जुन हमेंशा जन साधारण के पक्षधर रहे और कभी किसी प्रलोभन या सत्ता भय से नहीं धबराये, इसी कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा । लेकिन अपने व्यंग्य की धार से किसीको अछूता नहीं छोड़ा ।

इस निर्भिक जन कवि की प्रखर प्रतिभा दिनोंदिन निखरती ही गई और साहित्य की सभी विधाओं में इनकी कलम आजमाई देखी जा सकती है । कविता, उपन्यास, बालसाहित्य, अनुवाद, जीवनी आदि सभी में इनकी समान गति रही है । 'पत्रहीन नग्नगाछ' (मैथिली) पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला है ।

इसके अतिरिक्त मैथिली में ही चित्रा, नवतुरिया, पारो आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

''१९३५ में साहित्य सदन अबोहर से निकलनेवाले हिन्दी मासिक 'दीपक' का सम्पादन किया । सन् १९४२-४३ में लाहौर के 'विश्वबन्धु' साप्ताहिक का हैदराबाद (सिन्ध) से निकलनेवाले 'कौमीबोली' मासिक पत्र का सम्पादन भी उन्होंने किया ।''[२४] साहित्य में प्रवेश के आरम्भिक काल में रेल में किताबिया बेच-बेचकर जीविकोपार्जन करना उनके लेखनजीवी होने का प्राण है ।

संस्कृत, मैथिली और हिन्दी भाषाओं में साहित्य सृजन चित्रण, पथहीन नग्नगाछ (मैथिली में काव्य संकलन), युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान खून और शोले, चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखे, तालाब की मछलियाँ, तुमने कहा था, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, हजार-हजार बाहोंवाली (हिन्दी में काव्य संकलन) भस्मासुर (हिन्दी में खंडकाव्य) कथा साहित्य - पारो, बलचनमा, नई पौंध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दुखमोचन, कुम्भीपाक, उग्रतारा, ईमरतिया, अभिनन्दन (हिन्दी में उपन्यास) आलोचनात्मक एवम् अनुवाद साहित्य निराला एक व्यक्ति एक युग, प्रेमचंद । कालिदास का मेघदूत, जयदेव का गीत गोविन्द, विद्यापति के गीतों का हिन्दी अनुवाद, बंगला, गुजराती, संस्कृत आदि भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी रूपान्तर । धर्मालोक शतकम (सिंहली लिपि में प्रकाशित संस्कृत भाषा का लघुकाव्य) । देश शतकम, कृषक दशकम, श्रमिक शतकम (संस्कृत में कविताएँ) बाल साहित्य - अयोध्या का राजा, कथा मंजरी, रामायण की कथा, वीर विक्रम, सयानी कोयल आदि ।

समय-समय पर हंस, अवन्तिका, सरस्वती, ज्ञानोदय, नईधारा, जनयुग, जनशक्ति, धर्मयुग, कल्पना, कौमी बोली, आजकल, बालक, मुक्तधारा, नया संसार, नव भारत, नई दुनिया, नया जीवन, विश्व बंधु, प्रतीक, मधुमाधवी, लहर, पहल आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सैंकड़ों रचनाएँ ।

२.२.१ नागार्जुन का कविता साहित्य :

नागार्जुन हिन्दी कविताधारा के उन प्रमुख स्तम्भों में हैं जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उनको जीया भी है । उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यथार्थ से

सीधा साक्षात्कार करती हुई और जन-जीवन से सीधे जाकर जुड़ती है । जनकवि होने के कारण उनमें तरल संवेदनात्मक आवेग हैं । इसलिए वे सीधे जनसाधारण से जुड़ जाते हैं । उन्होंने स्वयं को तरल आवेगोंवाला हृदयधर्मी जनकवि कहा है इसलिए वे किसीसे नहीं डरते बल्कि फटकार बताते हैं । नागार्जुन अपने समय की सभी समस्याओं से सीधे टकराते हैं । समस्याएँ चाहे राजनीतिक हो, आर्थिक हो या सामाजिक एक युग की धड़कन उनके साहित्य में हैं ।

कविता में नागार्जुन की दिलचस्पी का दायरा बहुत बड़ा है । और बातों को छोड़ भी दे तो भाव बोध और मानवीय स्थितियों की जैसी विविधता उनके यहाँ है वैसी अन्यत्र नहीं । उनकी कविता एक तरह से अपनी सम्पूर्णता में विगत चालीस वर्षो के भारतीय जीवन के उथल-पुथल की महागाथा है । भावात्मक साक्ष्य देने की विकलता उन्हें यथार्थ की अनेक दिशाओं में ले जाती है । कभी वे कफ्र्यु के आतंक को देखते हैं, कभी बोतल के टुकड़ों पर उछल रही चाँदनी को, कभी सुदूर नवादा के स्टेशन पर होनेवाले रक्तपात को, कभी बस ड्रायवर की स्टीयरींग पर टंगी उन चुड़ियों को जिन्हें उनकी नन्हीं बिटियों ने टांग दिया था । इस तरह नागार्जुन की पक्षधरता स्पष्ट है क्योंकि उनके अनुसार युग के इस विप्लवी उताप से आज कोई भी बाहर नहीं रह सकता है ।

''इधर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत
कलाधर या रचयिता होना पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो...
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा...
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
जीर्ण संस्कृति को अगर सप्राण करना चाहते है ।''[२५]

जन में सीधे जुड़ने की जो प्रवृत्ति नागार्जुन में दिखलाई देती है, अन्य कवियों में दुर्लभ है । समकालीन कविता के इतिहास में नागार्जुन का एक बहुत बड़ा अवदान यह माना जायेगा कि उन्होंने पुनः कविता की दिशा को विशिष्ट बोध से सामान्य बोध की तरफ मोड़ने का प्रयास किया । इसी प्रयास के चलते उनकी कविता के उस क्रान्तिकारी चरित्र का निर्माण हुआ है जिसके हम उतने अभ्यस्त हो गये है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नागार्जुन के पास कविता से बाहर कुछ

भी नहीं है अथवा उनकी कविता सबमें और सब जगह है । ''उनमें शोषित, प्रताड़ित जन के प्रति तरल एवम् राष्टप्रेम है तो प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव, देश के प्रति प्रेम है तो आततायियों के प्रति मार भगाने का संकल्प ।''[२६] इस प्रकार उन्हें विविधता का कवि कहे तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । नागर्जुन ने अपने जीवन के लगभग पचास वर्षो में हजारों कविताएँ लिखी है । एक-एक कतरे को कविता में जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत, इतना जन संकुल है कि किसी एक बिम्ब या सूत्रों में उनके काव्यालोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता । ये हजार-हजार बाहोंवाली कविताएँ हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती, हजार वस्तुओं अपनी मुट्ठियों में थामे । निष्कर्ष रूप में देखा जाये तो उनके काव्य में सामाजिक विषमता के स्थान पर एक ऐसे समाज की रचना पर बल दिया गया है जहाँ सभी अपना पूरा अधिकार पा सकें और शोषणकारी ताकतों का खात्मा हो ।

नागार्जुन की काव्य कृतियाँ :- युगधारा, प्यासी पथराई आँखे, सतरंगे पंखोवाली, खून और शाले, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, और अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, हजार-हजार बाहोंवाली तथा तुमने कहा था । 'तालाब की मछलियाँ' में पूर्वे प्रकाशित कुछ काव्य ग्रंथों की चुनी हुई कविताएँ हैं । इनमें से शुरू के काव्य ग्रंथ अनुपलब्ध है 'भस्मांकुर' एक खण्ड काव्य है । जिसमें काम दहन के प्रसंग को बरवै छंद में लिखा गया है । मैथिली में प्रकाशित 'पत्रहीन नग्नगाछ' जो कि मैथिली में था का भी अब हिन्दी में अनुवाद हो चुका है ।

''नागर्जुन पिछले पचास वर्ष से अद्यतन कविता में संलग्न है । सन् १९३०-३५ से उनकी काव्य प्रतिभा निरन्तर सक्रिय है, लेकिन आज भी कई कविताएँ ऐसी हैं जो इधर-उधर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी है ।''[२७] इसका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि कवि नागार्जुन आज तक किसी एक जगह बंधकर नहीं रहे । घुमक्कड़ी प्रकृति के कारण उनकी कविताएँ भी इतस्तत: सफर करती रही है । कुछ खो गई है कुछ खो जाने की स्थिति में है, कुछ मित्रों के पास बिखरी पड़ी है और बाकी इस यात्री कवि के थेले में दरभंगा, पटना, इलाहाबाद-दिल्ली-इलाहाबाद, पटना-दरभंगा सफर करती फिरती रही है । इधर उनकी कविताओं के कुछ संग्रह प्रकाश में आये भी है और आते जा रहे हैं ।

हमने नागार्जुन की कविताओं को समझने के लिए वर्गीकरण कर देने का प्रयास किया है, हाँलाकि उनकी धारा को समझने के लिए स्पष्टत: कोई रेखा नहीं खिंची जा सकती है, फिर भी हमने अपनी सुविधा की दृष्टि से मोटे तौर पर इसी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है । इसमें रागबोध की कविताएँ, जिसमें प्रकृति और प्रणयपरक दोनों तरह की कविताओं को शामिल किया गया है । दूसरे यथार्थपरक कविताएँ, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक यथार्थपरक कविताओं को विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे । तीसरे राष्ट्रीयता से मुक्त कविताएँ और चौथे व्यंग्यप्रधान कविताएँ जो कि उनकी काव्यधारा का मूल अन्त:स्रोत है । यह विभाजन अन्तिम हो ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है क्योंकि नागार्जुन की कविताएँ अधिक संवेदनात्मक तथा व्यापक है । अत: उन्हें स्पष्टत: किसी विभाजित रेखा के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है ।

नागार्जुन की कविता उन तीन-चौथाई हिन्दूस्तानी से सम्बन्धित है जो राष्ट्रीय उत्पादन और विकास की रीढ़ कहा जा सकता है । पर इस देश में कुछ लोग ऐसे हैं जो पूँजी के बल पर सारे राष्ट्र के भविष्य और वर्तमान पर कुण्डली मारकर बैठ गये हैं । ''धन कुबेरों की यह जमात भी नागार्जुन की कविताओं में अक्सर दिखाई दे जाती है । इन्हीं की बदौलत समाज में तिकड़म, शोषण, भ्रष्टाचार और प्रदर्शन का नंगा नाच होता है । धर्म और राजनीति इन्हीं के घर दूल्हा-दुल्हन की तरह ब्याहे जाते हैं ।''[२८]

विदिशा लायंस क्लब में उदास मन से कविता-पाठ के लिए जाते हुए रास्ते में बाबा ने कहा था - जानते हो ये लायंस रोटरी क्लब क्या है ? समाज-सेवा तो सिर्फ बहाना है । वस्तुत: ये धनपतियों और सरकारी अफसरों के विवाह मण्डप है। विदेशों की चमक-दमक दिखाने के झरोखे हैं । नागार्जुन की कविता जहाँ भी इन धनकुबेरों को देखती है, फूट पड़ती है । वह उन पर फब्तियाँ कसती है, उनका उपहास करती है, उनके सामाजिक तरीकों की अश्लीलता निरूपित करती है । 'यह उन्मत प्रदर्शन', 'पैसा चहक रहा है', 'बोला ठाकुरिया का पानी', 'प्लीज एक्सक्यूज मी' और 'करने आये हैं चहल कदमी' जैसी कविताएँ इसी वैभव संसार के रंग-ढंग, रीति-नीति और जीवन शैली का उद्‌घाटन करती है ।

उनकी कविता का वास्तविक संसार वस्तुतः पारिभाषिक अर्थो में सर्वहाराओं का संसार कहा जा सकता है । पिछली दुनिया वह है जिसे वे नष्ट करना चाहते हैं। यह दुनिया वह है जिसे वे नये सिरे से संगठित और विकसित करना चाहते हैं । ''बचपन से ही गरीबी की मार खाने और जीवन भर संघर्ष और असुविधा का जीवन जीनेवाले इस कवि की सहानुभति, उस कवि की सहानुभूति से कई कदम आगे है जो ग्रामीण विश्व को बौधिक दृष्टि से देखता चला आ रहा है । यह कवि सिर्फ गाँव में पैदा भर नहीं हुआ है । गाँव से जुड़ा हुआ भी है । गाँव की सरल और अकुण्ठित बिरादरी का प्रेमी है ।''२९ वे लोग जो गाँव छोड़कर नगरों, महानगरों और उपनगरों की ओर चले गये है इस कवि की निगाह उनका पीछा भी निरन्तर करती रहती है । यह वहाँ भी जाता है, उनके साथ रहता है । उनके जीवन संघर्ष को देखता है और उनके भविष्य के लिए कविता को जुटाता है । जरूरी नहीं कि जिसे गाँवों की, वहाँ के लोगों की, कल-कारखानों में काम करनेवाले लोगों की तथ्यगत जानकारी हो वह कविता लिखते समय उसका लाभ ले ही सकता हो । इसके लिए जरूरी है वह लोक संवेदना, सहायता और जुड़ाव जो कविता को प्रामाणिक बनाते हैं । नागार्जुन की कविता इस रूप में बतौर फैशन नहीं, जरूरत के तहत पैदा हुई है । सिद्धांतवादी आग्रहों के फलस्वरूप भी वह नहीं जन्मी है । कवि की भीतरी पीड़ा और अनुभव-प्रबलता के बलबूते पर उसका स्त्रोत फूटा है ।

२.२.१.१ रागबोध की कविताएँ :

इसके अन्तर्गत उन कविताओं को लिया जा सकता है जिनमें उनका प्राकृतिक सौन्दर्यबोध और वैयक्तिक जीवन की रागासक्ति की अभिव्यक्ति मिली है । इस प्रकार की कविताएँ संवेदनात्मक गहराई को लेकर चलती है । व्यंग्य नागार्जुन की कविता की ऊर्जा है और रागबोध से युक्त कविताओं में भी उसकी अनुगूँज को यत्र-तत्र सुना जा सकता है । प्रकृति की अनुभूतियों से सम्बद्ध कविताओं के अतिरिक्त नागार्जुन ने कुछ कविताएँ ऐसी भी लिखी है जिनमें तरौनी ग्राम, इमली के पेड़ और गाँव के सीवान पर तैरती माटी की सौंधी महक है, जिसमें रह-रहकर रचनाकार डूबता-उतरता रहता है । यह माटी के प्रति एक अबूझ लगाव का परिणाम है कि उनकी महक शब्दों में फूट-फूट पड़ती है । इन लौटती कविताओं को भी इसी भावबोध के अन्तर्गत शामिल किया जा सकता है ।

२.२.१.२ प्राकृतिक सौन्दर्य की कविताएँ :

यायावरी जीवन व्यतीत करनेवाले कवि ने देश-देशान्तर के अनुभव बटोरे और उन अनुभवों के आधार पर प्रकृति को उसके नाना रूपों में देखा । प्रकृति सौन्दर्य की सर्वाधिक प्रशंसित कविताओं में 'बादल को घिरते देखा है' कविता है । इसमें मैदानी भागों से आकर हिमालय की गोद में बसी झीलों में क्रीड़ा- कौतुल करते हंसों और निशाकाल में शैवालों की हरी दरी पर प्रणयरत चकवा- चकवी के दृश्यबन्ध प्रस्तुत तो किये ही साथ ही कहीं पगलाए कस्तूरी मृग को कविता में ला खड़ा किया -

''निज के ही उन्मादक परिमल
के पीछे धावित हो होकर
अपने ऊपर चिढ़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।''[३०]

'' 'कुहरा छाया है' में कवि को सब कुछ कुहरे से दबे ढंके लगते हैं । तो 'कोयल आज बोली' में बसंत की मदोन्मत प्रकृति का सजीव चित्रण प्रस्तुत कर दिया है ।''[३१] 'धन कुरंग' कविता में मौज-मस्ती का यह आलम देखिए -

''नभ में चौकडिया भरे भले
शिशु धन कुरंग
खिलवाड़ देर तक करे भले
शिशु धन कुरंग
लो, आपस में गुंथ गये खूब
शिशु धन कुरंग
लो, घटा जल में गये डूब
शिशु धन कुरंग ।''[३२]

२.२.१.३ प्रणय भाव की कविताएँ :

नागार्जुन के कवि हृदय में अपनी प्रेयसी पत्नी के प्रति गहरी रागात्मकता देखी जा सकती है । उसके साथ जी गई जिन्दगी के आत्मीय क्षणों में कवि बार-बार खो

जाता है । घुमक्कड़ी जीवन अपना लेने के बाद प्रिया का बिछोह समय-समय पर अंतर को बिंधने लगता है । ''नागार्जुन सामाजिकता के सदैव पक्षपाती रहे हैं । इसलिए उनके प्रणयचित्र शालीनता और गरिमा से युक्त है ।''[३३] 'सिन्दुर तिलकित भाल' में प्रिया स्मरण के साथ मिथिला के ग्राम्यांचलों के प्रति भी रचनाकार का अटूट लगाव देखा जा सकता है । 'यह दन्तुरित मुस्कान' कविता में कवि अपनी प्रेयसी पत्नी की दन्तुरित मुस्कान को झोपड़ी में लिखे हुए जलजात सदृश है पर न्यौछावर है, साथ ही पत्नी के सानिध्य के लिए प्रेयसी की माँ को धन्य करार देता है-

''यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज
मैं न सकता देख
मैं न पाता जान
तुम्हारी यह दन्तुरित मुस्कान ।''[३४]

जिन्दगी के घोर अंधकार के सीने को चाककर फूट पड़नेवाली जोत की फांस और कोई नहीं.....तुम थी । नागार्जुन की प्रणयानुभूति के गहनतम सन्दर्भ 'यह तुम थी' कविता में व्यक्त हुए हैं । जहाँ वे अपने जीवनगत सौन्दर्य में प्रियतमा की प्रतिच्छवि निहारते हैं -

''सिकुड़ गई रग-रग, झूलस गया अंग-अंग
बनाकर ठूठ छोड़ गया पतझर
अलग असगुन-सा खड़ा रहा कचनार
अचानक उमगी डालों की सन्धि में छरहरी टहनी
पोर-पोर में गसे थे दूसरे
यह तुम थी ।''[३५]

२.२.१.४ यथार्थपरक कविताएँ :

नागार्जुन सबसे पहले सामान्यजन है, बाद में रचनाकार । एक आम आदमी की हैसियत से जीवन जीनेवाले रचनाकार का दीन-हीन दलित वर्ग के कष्टों, किसान-मजदूर के संघर्षो और भूखे-प्यासे लोगों की पीड़ाओं के साथ और उतनी

ही गहराई के साथ महसूस करना स्वाभाविक है । सही मायने में नागार्जुन ने इस देश के शोषित, प्रताड़ित गरीब लोगों को वाणी दी है । किसान, मजदूर और निम्न मध्यवर्ग का शोषण करनेवाली ताकतों के वे हमेंशा विरोधी रहे हैं और व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति का आह्वान करते हैं ।

२.२.१.५ सामाजिक यथार्थपरक कविताएँ :

नागार्जुन सन् १९३१ में साहित्य क्षेत्र में सक्रिय रूप से जुड़ गये थे । यह समय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जन-जन की भूमिाक को निर्णायक बिन्दु प्रदान करनेवाला था । नागार्जुन प्रारम्भ से जन-मन के सजग चितेरे रहे हैं । ''नागार्जुन की कविताओं में सामाजिक संघर्ष मुख्य रूप से मुखरित हुआ है । जब व्यक्तिवादी कवि अपने ही घेरे में बन्धे खुद के सुख-दु:ख को अपना रहे थे उससे पूर्व ही नागार्जुन ने सामाजिक संघर्ष की ओर अपनी कविता को तो मोड़ा ही खुद भी उसमें कूद पड़े । मानव कल्याण का मार्ग कम्यूनिज्म को मानकर चलने लगे और 'लालचीन' के मकरन्द के भारत में आगमन का सपना देखने लगे ।''[३६]

''चीन समूचा लाल हो गया
या
अब है भारत की बारी
चीन विरोधी बकवासों से होगा न सवाल ।''[३७]

नागार्जुन ने वर्ग-वैषम्य, अन्तर्विरोधों और व्यंग्य के माध्यम से भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है । आजादी के बाद सामाजिक स्थितियों में कितनी तेजी के साथ बदलाव आया और आजादी के अर्थ को कुछ जननायकों ने किस तरह उलट दिया इसके अतिरिक्त अकाल के बाद फैली भूखमरी को नागार्जुन ने इस तरह व्यक्त किया है ।

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास,
कई दिनों तक लगी भींत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त ।''[३८]

२.२.१.६ आर्थिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण करती कविताएँ :

शोषित और श्रमिक जनता के प्रति सहानुभूति का जो चित्रण नागार्जुन के यहाँ देखने को मिलता है उसके मूल में इन वर्गो का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होना है । आर्थिक वैषम्य इनकी कविताओं में व्यंग्य को पैना बनाता चला गया है । ये आर्थिक अन्तर्विरोध इस देश की वस्तुस्थिति है । जो गरीब है वह और अधिक गरीब होता चला गया है । यथा –

''मैं दरिद्र हूँ, पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता,
कटहल के छिलके जैसी जीभ से, मेरा लहू,
चाटती आई है, मैं न अकेला, मुझ जैसा तो,
लाख-लाख है, कोटि-कोटि है ।''[३९]

२.२.१.७ राष्ट्रीयता की भावपरक कविताएँ :

जन सामान्य की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही हालत से नागार्जुन पूरी तरह वाकिफ और चिन्तित है । प्रगति की यात्रा में लगातार अपने देश का पिछड़ते जाना नागार्जुन के भीतर रह-रहकर टीसता है । ''भ्रष्ट नेताओं का विरोध देख कुछ लोग नागार्जुन को विद्रोही कहते हैं ।''[४०] लेकिन वस्तुतः सच्चा कवि स्वभाव से ही विद्रोही होता है । वह चली आती हुई गलत परम्पराओं के आगे सिर नहीं झुकाता। वह अपने देश की जनता को गुलामी, दासता और शोषण की ठोकरे खाता देख चुप नहीं रह जाता वरन् अपने देश की जनता को जागृत करता है । उसमें चेतना का शंखनाद भरकर अपनी गिरी हुई स्थिति से उठ खड़े होने की प्रेरणा देता है । शोषकों और अत्याचारियों से संघर्ष के लिए वह जनता को उकसाता है ।

राष्ट्रीय नेताओं के प्रति श्रद्धा भावना और देश के कलाकारों, साहित्यकारों के प्रति विनयावनत होने और उन्हें सम्मान देने का भाव भी राष्ट्रीयता की भावना का ही सूचक है । गाँधीवादी विचारधारा को अस्वीकार करते हुए और नेहरू पर व्यंग्य प्रहार करते हुए भी वे उनकी मृत्यु पर आँसू बहाते हुए दिखाई देते हैं । 'युगधारा' की 'शपथ' और 'तर्पण' कविताएँ गांधीजी के राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व के प्रति आस्था की सूचक है । यथा –

''तेरे उन अनगिनत स्वप्नों को,
हम रूप और आकृति देंगे,
हम कोटि-कोटि तेरी औरस सन्तान पीते ।''[४१]

नागार्जुनजी की राष्ट्रीयता का पूरा-पूरा प्रमाण उनके द्वारा सन् १९६२ के चीनी आक्रमण और १९६५ और १९७१ के पाकिस्तानी आक्रमणों के दौरान लिखी गई उनकी कविताओं में मिल जाता है । १९६२ में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण किये जाने के बाद अब तक के कम्यूनिस्ट नागार्जुन का कम्यूनिस्टों से मोह भंग हुआ और वे 'माओ' के मर जाने की गुहार लगाने लगे । एक सच्चे देशभक्त के यहाँ राष्ट्रीयता एवम् देशहित प्राथमिक होता है, वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं ।

''आज तो मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा,
पुत्र हूँ भारतमाता का,
और कुछ नहीं हिन्दूस्तानी अपने लोग,
प्राणों से भी प्यारी है मुझे अपनी भूमि ।''[४२]

२.२.१.८ व्यंग्यपरक कविताएँ :

हिन्दी में श्रेष्ठ व्यंग्य की स्वस्थ परम्परा स्थापित करनेवालों में नागार्जुन का स्थान प्रथम है । कोई भी ऐसा वर्ग नहीं जो उनकी पैनी नजर से बच सका हो । उन्होंने आज की भ्रष्ट राजनीति और राजनेताओं पर तो व्यंग्य कविताएँ लिखी ही है, सामाजिक, धार्मिक रुढ़ियों तथा आर्थिक विसंगतताओं पर भी व्यंग्य रचनाएँ उन्होंने लिखी है । ''नागार्जुन की सबसे मजबूत पकड़ ही व्यंग्य पर है ।''[४३] हिन्दी कवियों ने कोई ऐसा रचनाकार नहीं है जिसने नागार्जुन जितनी व्यंग्य कविताएँ हिन्दी साहित्य को दी हो । नागार्जुन के लगभग समस्त काव्यों में स्वतंत्रता बाद के युग की समूची विभिषिका को जनवादी दृष्टि से व्यंग्य के माध्यम से उकेरा गया है । यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि समूची प्रगतिवादी भावधारा में स्वतंत्रता के बाद नागार्जुन ही ऐसे कवि है जिन्होंने अकेले ही बहुत समृद्ध तथा कलात्मक व्यंग्य लिखा ।

२.२.१.९ अन्य कविताएँ :

विचारदर्शन की कविताएँ : नागार्जुनजी ने कुछ श्रद्धांजलिपरक तथा विचार दर्शन से युक्त कविताओं की रचना भी की है । वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव सभ्यता के विकास और नाश का सामान जुटा लिया है । नागार्जुनजी मानव प्रगति में विज्ञान के योग का स्वागत करते हैं ।

''जनम-जनम के अभिशापों से
त्रिशंकुओं को मुक्ति मिलेगी
सौ-सौ विश्वामित्र बनेंगे
नई सृष्टि के नये विधाता ।
दिव्य धाम शोभित होंगे तब
दूर बसे उन नक्षत्रों पर ।''[४४]

श्रद्धांजलियुक्त कविताएँ : नागार्जुन ने श्रद्धांजलिपरक एवम् संस्मरणात्मक कविताओं की भी रचना की है । इनमें उन्होंने साहित्यकारों, राजनेताओं, क्रान्तिकारियों आदि पर कविताएँ लिखी है । साहित्यकारों में कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राजकमल चौधरी, निराला, रामवृक्ष बेनीपुरी, शैलेन्द्र आदि पर कविताएँ लिखी तो राजनेताओं में लेनिन, गांधी, नेहरू, लालबहादूर शास्त्री, क्रान्तिकारियों में लुमुम्बा, डॉ.बन्धु जगन्नाथन आदि पर श्रद्धापूरित और 'गया', 'चन्दना' केदारनाथ आदि पर संस्मरणात्मक कविताएँ लिखी है ।

''कविकुल गुरु कालिदास पर लिखी गई कविता में नागार्जुन ने महाकवि की रचनायात्रा में उसकी वैयक्तिकता को तलाशा है ।''[४५] नागार्जुन की यह कविता अपनी संवेदनात्मक सघनता के कारण सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है -

''कालिदास सच-सच बतलाना, पर पीड़ा से पूर-पूर हो
थककर ओ चूर-चूर हो, अमल धवल गिरी के
शिखरों पर, प्रियवर तुम कब तक सोये थे ? दोया
यक्ष कि तुम रोये थे ? कालिदास सच-सच बतलाना ।''[४६]

नागार्जुन बराबर काव्य शिल्प के प्रति भी सचेत रहे हैं । वे पुराने छन्दों को पुनर्नवीन कर प्रस्तुत करते रहे हैं । कवि सपाट हुए है तो स्वयं जान-बूझकर इसके पीछे भी कवि दृष्टि ही काम करती रही है । डॉ. नामवरसिंह के अनुसार - जनकवि के रूप में नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि है कविता के कलात्मक सौन्दर्य की बलि चढ़ाये बिना कविता को सर्वसुलभ बना देना । जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है - नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के सन्तुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कवि हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी हल कर पाये हैं । ''नागार्जुन अपनी कविता को सीधे जन से उठाकर अपने रचना संसार को समृद्ध करते हैं । उनकी कविता भाषा के आभिजात्य को ललकार कर सीधे जन के बीच से आती है और उसकी बात कहती है । इसीलिए हम उनकी भाषा के द्वारा सीधे जन से जुड़ जाते है यही भाषा के स्तर पर नागार्जुन की कविता की सबसे बड़ी विशेषता भी कही जा सकती है ।''[४७]

कवि स्वयं जान-बूझकर भाषा के मांजने के पक्ष में नहीं है । कवि भाषा के प्रति आग्रही नहीं रहा है । आम तौर पर उनकी भाषा सहज और सरल होती है । उनकी कविता में संस्कृत, देशज, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द बेहिचक मिलेंगे । उदाहरणार्थ - शुभाशंसा, मृदुमद्धिम, पश्मीन और ठमक जैसे शब्दों के अतिरिक्त उर्दू के प्रचलित शब्द गवारा, काश, कबूल, सोहबत, मुताबिक, अनामत, केरुखी, लिबास, तासीर, हका, दागी, जाहीर, बेतरतीब, गश्त, शिकस्त, हमउम्र, इन्साफ आदि । कवि का यही रुख अंग्रेजी शब्दों के प्रति भी रहा है । अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के उदाहरण देखिये - जंक्शन, कैरियर, कोमर, स्ट्रीट, फूटपाथ, बैलेट, पेपर, पोलिंग बूथ, नैल-पालिश, रिस्टवॉच, पाउण्ड, साउण्ड, लिबर्टी, माइण्ड, ब्रेन, सीट, प्लेट, ट्रंक, कॉल, पार्टी, कैम्प आदि । साथ ही जनपदीय शब्दों का सटीक प्रयोग भी एक नवीन आकर्षण पैदा करता है । जैसे - बिजानी, बतकही, छिनाल, पुहिया, खूर्सट, झबरा, ललइया, अण्डबण्ड, तिडीबिडी आदि । इस प्रकार जनपदीय शब्दों के प्रयोग से ही मालूम पड़ता है कि कवि जन साधारण के कितना निकट है ।

२.२.२ नागार्जुन का उपन्यास साहित्य :

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नागार्जुन का अपना एक विशिष्ट स्थान है । निम्नवर्गीय समाज की वेदनाओं और उनकी समस्याओं के चितेरे नागार्जुन ने अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है । ग्रामीण जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति इनकी मुख्य विशेषता रही है । इनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों, वहाँ के जन-जीवन की मन:स्थितियों के साथ-साथ राजनीतिक हथकण्डों, पूँजीपतियों द्वारा शोषण, जमींदार-किसान संघर्ष एवम् प्राकृतिक चित्रण का अंकन बड़ी कुशलता से हुआ है । ''राजनीतिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारों के समर्थक होते हुए भी नागार्जुन ने प्रचारात्मक दृष्टि से मार्क्स के सिद्धांतों का प्रयोग अपनी कृतियों में नहीं किया है ।''[४८] उनके समस्त रचना संसार में अन्त:सूत्र की तरह क्लासिकी मार्क्सवाद अवश्य मौजूद है । वह भी उनके बौद्धदर्शन के अध्ययन संस्कारों के कारण करुणा, मैत्री और शान्तिप्रियता की मानववादी अन्त:धारा से बराबर सौम्य बनता गया है । आज नागार्जुन को किसी भी राजनीतिक पक्ष या मतवाद के 'केवल' से परिभाषित करना कठिन है । ये दलित, शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी हैं ।

इस प्रकार नागार्जुन को किसी धारा विशेष के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है । सच्चे अर्थो में पीड़ित, शोषित दलित जनता के प्रतिनिधि नागार्जुन मानवता के सजग प्रहरी हैं, जो समाजवाद और जनतंत्र दोनों में विश्वास रखते हैं ।

जब भी शोषित-दलित जन पर आँच आई उन्होंने हमेंशा उनके साथ मिलकर शोषकों के विरुद्ध आवाज उठाई । उपन्यासों में उनके दर्द और पीड़ा को अभिव्यक्ति दी । प्रेमचंदोपरान्त नागार्जुन ही एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने होरी और गोबर की पीड़ा को समझा । पर उनके पात्र सामाजिक व्यवस्था के आघातों को सहते हुए मर नहीं जाते हैं । बल्कि वे उनसे दृढ़ता के साथ संघर्ष करते हैं । उनके पात्रों को अत्याचार सहने की आदत नहीं है, वे खुलकर सामाजिक विकृतियों और अत्याचारों के विरुद्ध झण्डा खड़ा करते हैं । उनके उपन्यास यद्यपि समाजवादी सिद्धांतों से आच्छादित है, पर उनमें कोरी सैद्धांतिकता ही नहीं व्यावहारिकता भी है। नागार्जुन के उपन्यासों की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में मात्र बौद्धिकता या सैद्धांतिकता का समावेश न करके अपनी लेखनी द्वारा समाज के

यथार्थ जीवन को प्रामाणिक अनुभूतियों द्वारा प्रतिष्ठित किया है । नागार्जुन की प्रकाशित औपन्यासिक कृतियाँ निम्न है ।

(१) रतिनाथ की चाची (१९४८)
(२) बलचनमा (१९५२)
(३) बाबा बटेसरनाथ (१९५४)
(४) दुखमोचन (१९५७)
(५) वरुण के बेटे (१९५७)
(६) नई पौंध (१९५७)
(७) कुम्भी पाक (१९६०)
(८) हीरक जयन्ती (१९६१)
(९) उग्रतारा (१९६३)
(१०) इमरतिया (१९६९)
(११) पारो (१९७५)

नागार्जुन का नाम प्रायः आँचलिक उपन्यासकारों में लिया जाता है । कुछ इन्हें समाजवादी उपन्यासकार मानते हैं और यह कहा जाता है कि इनके उपन्यास समाजवादी और आँचलिक उपन्यासों के बीच की कड़ी में आते हैं । इस प्रकार विभिन्न साँचों में फिट कर इनके कथा साहित्य का मूल्यांकन किया जाता है । ''आँचलिक कथाकारों में भी फणीश्वरनाथ रेणु के पश्चात् इनका नाम लिया जाता है बल्कि वस्तुस्थिति यह है कि इनका उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' जिसमें मिथिला अँचल के तालाबों, नदियों और वहाँ के ग्राम जीवन को उनकी समग्रता के साथ अपने निजी अनुभवों के आधार पर संवेदनशील गहराई से रेणु के 'मैला आँचल' के पूर्व १९४८ में अभिव्यक्त कर चुके थे और इसीके पश्चात् १९५२ में नागार्जुन का एक और सशक्त आँचलिक उपन्यास 'बलचनमा' प्रकाशित हो चुका था, जिसे हिन्दी उपन्यासों में एक उपलब्धि माना गया ।''[४९] इस तरह हिन्दी के प्रथम आँचलिक उपन्यासकार के रूप में नागार्जुन को प्रतिष्ठित किया जा सकता है ।

इमरतिया, उग्रतारा, जमनिया का बाबा आदि में विधवा विवाह, अंधविश्वासों, रुढ़ियों आदि समस्याओं को उठाया है । सम्पूर्ण रूप से नागार्जुन जनवादी रुझान के प्रगतिशील चेतना के कथाकार हैं । उनके उपन्यास एक विशिष्ट

अर्थ में ही आँचलिक है । उनकी कथा एक अँचल से तो ली जाती है लेकिन आँचलिक उपन्यासों की भाँति उनमें एक विशिष्ट भू-भाग की समूची सश्लिष्ट जिन्दगी की अभिव्यक्ति नहीं होती । नागार्जुन अँचल के सश्लिष्ट जीवन की कथा कहने के स्थान पर अँचल से लिये गये पात्र की कहानी कहते हैं । अधिकतर यह कहानी सपाट वर्णनात्मकता लिये होती है । अँचल विशेष मात्र उस कथा को परिवेश प्रदान करता है । यह परिवेश आँचलिकता की तीन घटनाएँ लिये हुए होता है - एक प्रकृति की, दूसरी भाषा की, तीसरी वहाँ के स्थानीय रीति-रिवाजों अथवा चले आ रहे रुढ़ संस्कारों की । नागार्जुन का कथा नायक इसी परिवेश से गुजरता हुआ अपनी कथा यात्रा तय करता है जिसमें अधिक पड़ाव अर्थात् सश्लिष्ट पर्तो के स्थान पर गति होती है । लेकिन यह सर्वांग सत्य नहीं है क्योंकि उनके 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' में अँचल विशेष अर्थात् विशिष्ट भू-भाग की समूची सश्लिष्ट जीवन की झांकी देखी जा सकती है और अंचल के पात्र के माध्यम से सपाट वर्णनात्मकता को तो उनके अपने उपन्यासों की एक विशेषता कहा जा सकता है ।

''नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जिस समाज का चित्रण किया है, वह उनका अच्छी तरह देखा-भला है और उसी समाज में रहते हुए स्वयं ने भी उस दु:ख-दर्द को झेला और भोगा है ।''[५०] इसी कारण वह अधिक यथार्थपरक हो सकता है । विभिन्न वर्गो तक उनकी समस्याओं के प्रति उनकी गहरी पैठ है । गरीब चरवाहे से लेकर मंत्री तक का वर्णन उनके कथा साहित्य में देखा जा सकता है और इसके साथ ही विचारधारा भी अभिव्यक्त होती चलती है । नागार्जुन के कथा साहित्य में दीन-हीन शोषित जनता की यथार्थपरक झांकी देखी जा सकती है । उनके दु:ख-दर्द का उन्हें पूरा अनुभव है क्योंकि वे स्वयं इन सबसे जूझे हैं एवम् जन साधारण को जूझते हुए देखा है । ''जिनके पास मेहनत करने के बावजूद ओढ़ने, पहनने को कपड़ा नहीं और खाने को अन्न नहीं, मात्र चंद रुपयों के ब्याज में उम्र भर के लिए रहन रख दिये जाते हैं और यह सिलसिला पीढ़ियों तक चलता रहता है ।''[५१] 'रतिनाथ की चाची' का कुल्ली राउत और 'बलचनमा' में बलचनमा के पिता ऐसे ही पात्र हैं जो रहन रखे हैं और आजीवन जमींदारों की जूठन खाकर उनकी उतरन के कपड़े पहनकर जीने के लिए विवश कर दिये जाते हैं । इनका खाना, पहनना सबकुछ ऊँची जातवालों पर निर्भर करता है । नागार्जुन के ये सभी पात्र बलचनमा, कुल्ली राउत, दुखमोचन में हरसू की माँ, वरुण के बेटे में खुरखून, गौनड, बाबा

बटेसरनाथ के श्रमिक आदि आज भी समाज में पिसते हुए देखे जाते हैं । इन सभी का जीवन अभावों से जुड़ा है ।

खुरखून चावल भिगोकर खाने को मजबुर होता है । उनको पकाने का समय भी उसके पास नहीं है । तेल के अभाव में मछली को आग में भूनकर खाते हैं । ये सभी निर्धन वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किये गये हैं । गरीब होते हुए भी ईमानदार अपने काम के प्रति लगन और परिश्रमी तथा अन्याय के खिलाफ आवाज उठानेवाले हैं । खुरखून मालगाड़ी के डिब्बे में बाढ़ पीड़ितों को स्थान दिलवाता है और नरभक्षी मगर को मारकर साहस का परिचय देता है । न केवल मानव बल्कि मूक जानवरों के प्रति भी ये वैसी ही सहानूभूति रखते हैं । बैल के प्रति बलचनमा की सहानुभूति हृदयस्पर्शी है । इन गरीब और शोषित लोगों के जीवन का यथातथ्य वर्णन लेखक ने सफलता के साथ किया है । ''कष्टों के बावजूद इनके पात्र कभी झुकते नहीं हैं ।''५२ इस प्रकार नागार्जुन ने समाज के निम्न वर्गीय जीवन का चित्रण पूरी यथार्थता के साथ अपने उपन्यासों में किया है ।

जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध ने नागार्जुन को यथार्थ दृष्टि प्रदान की और इसी कारण उन्होंने अपने उपन्यासों में तत्कालीन जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति की है । कोई भी रचनाकार अपने परिवेश से असंपृक्त नहीं रह सकता । अपनी समकालीन जीवन स्थितियों का प्रभाव उस पर अवश्यमेव पड़ेगा । प्रेमचंद के पश्चात् नागार्जुन ने समस्याओं को उनसे भिन्न एवम् परिवर्तित नजरिये से देखा है । जहाँ वे होरी से आगे के पात्र बलचनमा की सृष्टि कर सके । अनमेल विवाह, विधवा विवाह, जमींदारों का अत्याचार, कर्ज के बोझ से पिसते किसान, मजदूर तथा अपने अधिकारों के लिए लड़ने को तत्पर निम्नवर्गीय लोग । अर्थात् नागार्जुन के सभी उपन्यास तत्कालीन परिस्थितियों की उपज है । ''दैनिक जीवन की कठिनाइयों, असंतोषों और उनके समाधान के लिए प्रयुक्त चित्रण ही उनकी कृतियों में है । उनके लघु उपन्यासों में यथार्थ की जो पकड़ है, वह बहुत कम लेखकों में है । यहाँ तक कि स्वयं लेखक की अन्य विधा विषयक रचनाओं में भी नहीं है ।''५३ नागार्जुन ने जो भी समस्या उठाई उसका यथार्थ अंकन किया है । ग्राम जीवन का कोई भी पक्ष उनसे नहीं छूट पाया है । समाज की रुढ़िग्रस्त और जर्जर मान्यताओं पर उन्होंने तीखे प्रहार किये हैं । उनके उपन्यासों में जीवन दर्शन समाजवादी चेतना के अधिक निकट है । परस्पर समानता स्थापित होना, सबको विकास करने का

समान अवसर प्राप्त होना, शोषण एवम् वर्ग वैषम्य का अन्त होना यही उनके उपन्यासों का मूल स्वर है । उन्होंने ऐसी क्रान्ति का सूत्र पास करने का प्रयत्न अपनी कृतियों में किया है जिसका सम्बन्ध ग्राम जीवन से अधिक है और जिसके सफल होने से ग्रामों की रुढ़ियाँ और जर्जरित मान्यताएँ समाप्त होगी और समाजवादी ग्राम समाज की नवरचना होगी ।

कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने मिथिला भूमि के जन-जीवन को आधार बनाकर नवीन समाजवादी चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में की है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जीवन को उसकी सम्पूर्णता के साथ जाँचा-परखा है । वे उस दुनिया के लेखक नहीं है जो केवल सैद्धांतिक बातें करते हैं बल्कि वे जीवित में भी शोषणकारी ताकतों के खिलाफ संघर्ष करते हैं और जन सामान्य के संघर्ष में अपनी भागीदारी निभाते हैं । अब उनके प्रमुख उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्न रूप से है ।

२.२.२.१ रतिनाथ की चाची :

'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन का पहला उपन्यास है, जिसका प्रथम संस्करण किताब महल, इलाहाबाद से सन् १९४८ में निकला । सन् १९७७ में राजपाल एण्ड सन्स से इसका नया संस्करण प्रकाशित हुआ । जिसकी भूमिका में नागार्जुन ने लिखा - 'रतिनाथ की चाची' की भावभूमि दरभँगा जनपद के एक अँचल में सीमित थी । कथाकाल '३७ और '४० के मध्य का था । रचनाकाल '४७ ... दूसरा संस्करण '६७ में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ । वह संस्करण अशुद्धियों की भरमार के चलते मेरे लिए क्लेषकारक बन गया । सरलमति पाठकों को ध्यान में रखकर कुछ एक अश्लील एवम् अप्रासंगिक अंशों को हटा लेना मुझे अनिवार्य प्रतीत हुआ । फुट नोट सारे ही हटा लिए गये है । अंत में आँचलिक शब्दों के अर्थ (परिशिष्ट के तौर पर) डालना था, यह काम भी कर दिया गया....इस प्रकार रतिनाथ की चाची का यह अभिनव संस्करण ही प्रामाणिक माना जायेगा ।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास का कथानक अत्यंत संक्षिप्त और परिचित घटनाओं पर आधारित है । ''वैधव्य जीवन की यातना का करुण आख्यान इस उपन्यास के प्रतिपाद्य के रूप में शामिल है ।''[५४] उपन्यास में गौरी (रतिनाथ की

चाची) एक विधवा ब्राह्मणी है । विधवा के पुनर्विवाह की इजाजत शास्त्र नहीं देता। गौरी के पिता ने उसके पति की कुलिनता से आकर्षित होकर उसकी शादी की थी । एक पुत्री सत्यभामा और एक लड़का उमानाथ को जन्म देकर गौरी विधवा बन गई। चाची का देवर जयनाथ विधुर है । विधवा गौरी मातृहीन बालक रतिनाथ को वात्सल्य देने और उसकी देखभाल करने के लिए अपने विधुर देवर जयनाथ के साथ अनावश्यक गर्भभार ढोने को विवश हो जाती है । लोकप्रमाद के भय से जयनाथ घर छोड़कर एक दूसरा अपराध करता है । गर्भवती गौरी हर तरह से असहाय होकर अपनी माँ के पास तरकुलवा गई । गौरी की माँ भैंस की बीमारी के बहाने बुधना चमार की औरत को बुलाकर पुत्री का गर्भपात करने में सफल हुई । समाज विरुद्ध इतना बड़ा कुकाण्ड होने पर भी तरकुलवा में किसीने भी गौरी की माँ पर ऊँगली नहीं उठाई । लेखक ने उसकी माँ को 'बाघीन' कहकर उसके प्रभाव को रेखांकित किया है ।

२.२.२.२ बलचनमा :

'बलचनमा' नागार्जुन के मैथिली उपन्यास 'बलचनमा' का हिन्दी रूपान्तर है। ''यह मिथिलाँचल के ग्राम्य जीवन पर आधारित उपन्यास है । जिसमें १९२७ से'३७ तक की राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा है ।''[५५] नायक बलचनमा आत्मकथात्मक शैली में अपने विगत जीवन की संघर्षगाथा का मार्मिक वर्णन करता है । उपन्यास का आरम्भ हृदयहीन जमींदार के क्रूर चरित्र के उद्‌घाटन के साथ होता है । बलचनमा के पिता द्वारा जमींदार के दो किशुनभोग आम तोड़ने के आरोप में उसे खंभेली से बाँधकर पीटा जाना तथा दादी के गिड़गिड़ाने पर भी न छोड़ना और अंतत: मौत जमींदार की हृदयहीनता और नृशंसता का चरम रूप है । इसमें अतिरंजना नहीं कि प्रेमचंद के बाद जमींदारों के अमानवीय अत्याचार का ऐसा घृणित रूप पहली बार नागार्जुन के 'बलचनमा' उपन्यास में मिलता है । प्रेमचंद के यहाँ जमींदारों के अत्याचार का ऐसा कुत्सित रूप नहीं है । नागार्जुन ने उसकी नृशंसता और बर्बरता को अत्यधिक तीव्र बनाकर पेश किया है । जिसका मूल प्रयोजन है - शोषक वर्ग में जमींदार के प्रति घृणा पैदा करना और आम जन में वर्ग चेतना भरना - नागार्जुन ने बड़ी कुशलता से अपना दृष्टिबिन्दु वर्गघुणा को उपन्यास के आरम्भ में ही बीजरूप में डाल दिया है, जो अंकुरित होकर वर्ग संघर्ष के रूप में परिणत होती है ।

२.२.२.३ नई पौंध :

नागार्जुन कृत 'नर्द पौंध' उपन्यास सन् १९५३ में प्रकाशित हुआ, जो उनके मैथिली उपन्यास 'नवतुरिया' का हिन्दी रूपान्तर है । इसमें बेमेल विवाह की समस्या और उसके समाधान को लेखक ने बड़ी गम्भिरता से उठाया है । इसमें नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष द्वारा नई-पुरानी मान्यताओं का संघर्ष दिखाया गया है । घटकराज ओर खोखा पंडित जो पुरानी मान्यताओं और पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र हैं-को गाँव में गठित 'बमपार्टी' और नवयुवक दल पराजित करता है । प्राचीन मान्यताओं पर नये मूल्यों और मान्यताओं की विजय दिखाई गई है । नई पीढ़ी अपेक्षाकृत अधिक उदार, मानवीय और प्रगतिशील दृष्टि लेकर गाँव के रंगमंच पर उपस्थित हुई, जो अन्याय-अत्याचार के उन्मूलन हेतु कटिबद्ध है ।

'' 'नई पौंध' एक समस्यामूलक सामाजिक उपन्यास है, विवेच्य उपन्यास में लेखक ने मिथिलाँचल के एक मैथिल परिवार और वहाँ की संस्कृति का जीवन्त चित्र खीचा है ।''[५६] वहाँ के समाज में अत्यंत जर्जर और रुढ़ मान्यताएँ मौजूद है किन्तु शिक्षा के माध्यम से रोशनी आ रही है । स्कूलों और समाचारपत्रों की सुविधा गाँवों में भी उपलब्ध होने से जनता में जागृति पैदा हो रही है ।

२.२.२.४ बाबा बटेसरनाथ :

प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' नागार्जुन का तीसरा उपन्यास है, जिसमें मिथिला के रूपउली गाँव की पीढ़ियों की कथा वर्णित है । इसमें एक बूढ़े वट्वृक्ष द्वारा उसके जन्म और विकास की कथा, जैकिशुन के परदादा राउत से लेकर आजादी के बाद तक की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है । ''जमींदारों की हड़पनीति, सरकार की जनविरोधी नीति, नीलहे अधिकारियों की बर्बरता, भारत का मुक्ति संग्राम, असहयोग आन्दोलन, नमक आन्दोलन आदि का इतिहास वट्वृक्ष जैकिशुन को उसके स्वप्न में बताता है ।''[५७] अकाल, बाढ़, महामारी, भूकम्प जैसे प्राकृतिक प्रकोप भी क्रमबद्ध रूप में वर्णित है । मानवनिर्मित समस्याओं और अत्याचारों से लेकर प्रकृतिक प्रकोपों से जूझती भारतीय जनता और उसकी स्थितियों की सच्ची तस्वीरें उपन्यास में है ।

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास की कथा के दो खण्ड है । पहला खण्ड जैकिशुन की स्वप्न कथा है, जो करीब १०० पृष्ठों तक चलती है । यह खण्ड अत्यंत लम्बा और किस्सागोई से पूर्ण है, जिसमें उक्त चीजें वर्णित है । दूसरे और अंतिम खण्ड में जैकिशुन बाबा बटेसरनाथ के बताये गये उपायों के अनुरूप कर्मप्रवृत्त होता है और कम्युनिस्ट पार्टी तथा लडाकू शक्तियों की मदद से कांग्रेस शासन के विरुद्ध विजय प्राप्त करता है । दूसरे खण्ड के अंतिम हिस्से में वट्वृक्ष द्वारा जैकिशुन को आशीर्वाद दिये जाने तथा निकट भविष्य में अपनी मृत्यु की सूचना देने के संदर्भ हैं । अत: दोनों कथाखण्ड एक-दूसरे से श्रृंखलाबद्ध है । उपन्यास की समाप्ति स्वाधीनता, शान्ति और प्रगति के नारे के साथ होती है । यह एक नई व्यवस्था का संकेत है जो नागार्जुन का एक स्वप्न है, एक युटोपिया है, जिसे वे उपन्यास में साकार करते हैं । वे मानवीय संघर्ष की परिणती स्वाधीनता, शान्ति और प्रगति में देखते हैं ।

अन्त में वट्वृक्ष के स्थान पर बरगद के नये पौधे लगवाकर लेखक ने नये युग के आगमन का संकेत दिया है ।

२.२.२.५ वरुण के बेटे :

'वरुण के बेटे' उपन्यास सर्वप्रथम उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा संपादित 'संकेत' पत्रिका में प्रकाशित हुआ । तत्पश्चात् पुस्तक रूप में राजपाल एण्ड सन्स से सन् १९५७ में प्रकाशित किया गया ।

'' 'वरुण के बेटे' में नागार्जुन ने मलाही गोंढ़ियारी के मछुआरों के संघर्षपूर्ण जीवन का मार्मिक आख्यान किया है ।''[५८] इसमें जन संघर्षो और जनांदोलनों को मछुआ समुदाय की समस्याओं और उनके प्रगतिशील दृष्टिकोणों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग-बगीचे, कुआँ, चभच्चा और पोखर, देवी, देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चरागाह, परती, परांत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अचल संपतियों के मामले में जमींदारी उन्मूलन कानून दलित मछुआरों का संगठनबद्ध संघर्ष . . . .ध्रुवीकरण वरुण के बेटे ने भूस्वामियों को खुली छुट दे दी, नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चरोगाहों तक का

वे चुपके-चुपके बेचने लगे...इसीके तहत देपुरा के जमींदार गढ़पोखरों की बंदोबस्ती सतधरा के जमींदार के हाथ ऊँचे मूल्यों पर करते हैं । मछुआरों की जीविका खतरे में पड़ने पर वे सभी संगठित होकर इसका जबर्दस्त विरोध करते हैं । मछुआ संघ के संगठन द्वारा लेखक ने जन- जीवन की संघर्षप्रियता और उसकी उभरती हुई वर्गचेतना को स्पष्ट किया है, जो युग की बदलती दिशा का सूचन करती है ।

२.२.२.६ दुखमोचन :

'दुखमोचन' उपन्यास का प्रकाशन सन् १९५७ में राजकमल प्रकाशन दिल्ली द्वारा हुआ । प्रकाशन से पूर्व यह उपन्यास आकाशवाणी के लखनऊ- प्रयाग केन्द्रों से जुलाई, अगस्त-सितम्बर सन् १९५६ में तेरह किश्तों में प्रकाशित हुआ था । ''नागार्जुन ने यह कृति उन सभी कलाकारों को समर्पित की है जिनका स्वर संयोग पाकर उपन्यास के पंद्रहों पात्र लाखों श्रोताओं के लिए अविस्मरणीय हो उठते हैं। ''[५९]

अन्य उपन्यासों की तरह नागार्जुन ने 'दुखमोचन' की कथा भी एक ठेठ गाँव से ली है जो अत्यंत पिछड़ा है, जहाँ अनेक जातियों और वर्गो में बँटा समाज अभावों की जिन्दगी जी रहा है । रुढ़ियों और अंधविश्वासों की जकड़बन्दी ने जिन्हें हिलने नहीं दिया है । कौन-सी बदमाशी छूटी है गाँववालों से ? लोभ-लालच, छल-प्रपंच, झूठ-बेइमानी, ठगी और विश्वासघात वह कौन-सा औगुन है जो यहाँ पर नहीं है । लेकिन आधुनिकता की हवा पाकर और ग्राम-सुधार आन्दोलन के चलते उनमें नवजागृति आ रही है तथा वे अपने रुढ़ संस्कारों से मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं, किन्तु पुरानी पीढ़ी यथास्थिति को ही बनाए रखना चाह रही है ।

'दुखमोचन' उपन्यास मिथिला के 'टमका कोइली' गाँव के नवनिर्माण की कहानी है । वहाँ का मात्र भौतिक नवनिर्माण नहीं, बल्कि उन ग्रामवासियों के मन, प्राण, सोच और संवेदना के नवनिर्माझा की भी कहानी है । नये सिरे से गाँव का अंतर्बाह्य परिवर्तन । दुखमोचन इसका केन्द्रिय पात्र है जो कलकत्ते में रहता था और पाँच साल बाद गाँव लौटकर गाँव के नवनिर्माण में तन, मन, धन से जूट जाता है । दुखमोचन के जीवन का लक्ष्य ही लोक-सेवा है । बाढ़ पीड़ितों की सहायता के

लिए वह प्राय: बाहर ही रहता है । ग्रामरक्षा, सहकारिता, श्रमदान, राहतकार्य आदि योजनाओं में वह बढ़कर हिस्सा लेता और अत्यधिक उत्साह दिखाता है । उसमें वे तमाम गुण मौजूद है जो नागार्जुन को एक युवक से अपेक्षित है ।

२.२.२.७ कुम्भीपाक :

'कुम्भीपाक' का प्रकाशनकाल सन् १९६० है । यह नागार्जुन का एकमात्र उपन्यास है जो शहरी जीवन पर आधारित है और जिसमें वेश्यावृत्ति की समस्या, नारी विक्रय तथा उससे उत्पन्न घृणास्पद स्थितियाँ चित्रित है । भारतीय नारी समाज की करुण मनोवृत्तियों का शिकार होकर सतत अभिशप्त जीवन जीने को विवश होती है – यही इस उपन्यास के केन्द्र में है । किराये के एक ही मकान में रहनेवाले छ: परिवारों में व्याप्त विसंगतियों द्वारा लेखक ने पूरे भारतीय समाज की विसंगत स्थितियों को सामने रखा है । पुरुष प्रधान समाज की सामंती मानसिकता तथा घोर नरक की मानिन्द जिन्दगी जीती नारियों के जीवन-संदर्भ को एक प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करते हुए लेखक ने उसका एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है ।

'' 'कुम्भीपाक' में नारी के यातनापूर्ण जीवन का करुण आख्यान है ।''[६०] चम्पा एक अच्छे खानदान की लड़की थी । अपने पति की मृत्यु के बाद वह अपने जीजा के साथ रहने को विवश होती है, किन्तु दोनों में अवैध सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, लेकिन जीजा उसे पत्नी रूप में नहीं स्वीकारता । समाज भी उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने की इजाजत नहीं देता । चम्पा के माध्यम से लेखक सम्पूर्ण नारी-समाज की वेदना, घुटन, विवशता और नियती को स्पष्ट करता है ।

२.२.२.८ अभिनन्दन :

'' 'अभिनन्दन' नागार्जुन के अन्य उपन्यासों से भिन्न भावभूमि पर आधारित है जिसमें राजनीतिक रंग काफी गहरा है ।''[६१]

नरपतबाबू की हीरक जयंती मनानेवाले लोग भी चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट है । मृगांक जैसा चापलूस और अर्थलोलूप कवि है जो संपादन कार्य के नाम पर पैसे

बटोरना चाहता है । बुझावनराम जैसे अछूतों के प्रतिनिधि नेता है जो कुँआ खोदने के नाम पर बीस हजार रुपये प्राप्त करते हैं किन्तु सारे पैसे हजम कर जाते हैं । मौका परस्त गेंदासिंह ठेकेदारी प्राप्त करने के लालच में चन्दा देते हैं । धर्मराज ने आयकर से बचने के लिए दो नामों से एक ही प्रेस खोल लिया है और आयकर विभाग के साथ धोखाघड़ी कर रहा है । महन्त सीताशरणदास जमीन बेदखली के हीरो है । वे अपने गुरुभाई को विषाक्त मीठाई खिलाकर उसे स्वर्ग पहुँचाकर घड़ियाली आँसू बहाते हुए गद्दी पर बैठते हैं । गोपीवल्लभ ठाकुर जालिम जमींदार गाँजे के अवैध व्यापारी और उसके अन्यतम हीरो हैं । बटाईदारी खेती से किसानों को बेदखल करना, कत्ल करना उनका मुख्य पेशा है । गोपी वल्लभ ठाकुर के अवैध रिश्ते माधवी के साथ है । अग्रवाल और पूनमचन्द जैसे सेठ हैं जो समाजसेवा के नाम पर गरीबों का शोषण करने में नहीं हिचकते और निजी स्वार्थो की पूर्ति के लिए कितने पाखण्ड करते हैं । ये ही सभी शोषक और भ्रष्ट लोग नरपतबाबू की यशोलिप्सा को पूरा करने के लिए हीरक जयंती का आयोजन करते हैं।

२.२.२.९ उग्रतारा :

नागार्जुन ने नारी-जीवन और उसकी समस्याओं पर स्वतंत्र रूप से उपन्यासों की रचना की है । इस दृष्टि से 'रतिनाथ की चाची', 'कुम्भीपाक' और 'उग्रतारा' विशेष उल्लेखनीय है । 'उग्रतारा' का रचनाकाल सन् १९६३ है ।

''बालविधवा और उसके जीवन की विशेषताओं तथा यंत्रणाओं का अत्यंत मार्मिक अंकन उपन्यास का मूल प्रयोजन है ।''[६२] यह उपन्यास विधवा- मन की अछूती और कसकती अनुभूतियों का ऐसा दर्पण है जिसमें सामाजिक रुढ़ियों में छिपी विसंगतियों और विडम्बनाओं की त्रासद तस्वीरें उभरती हैं । एक सिपाही की हवसखोर प्रवृत्ति सामने आती है और तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों से टक्कर लेती तथा रोड़ों को मार्ग से हटाती नारी अपना लक्ष्य पाने में सफल होती है । किस प्रकार रुढ़ियों की चट्टान एक सीधे-सादे ग्रामीण युवक की सदिच्छाओं के आगे खड़ी होकर सदा के लिए उनका नाश कर देना चाहती है किन्तु कामेश्वर धैर्य और तरकीब से उसका प्रतिरोध करता है । इसकी पूरी कथा उपन्यास में प्रस्तुत है ।

२.२.२.१० जमनिया का बाबा :

'इमरतिया' (१९६८) उपन्यास ही 'जमनिया का बाबा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । इमरतिया, बाबा, मस्तराम तथा भगौतिकदास - चार प्रमुख पात्र है । ये सभी पात्र बारी-बारी से अपनी जीवनकथा और अनुभवों का ब्यौरा देते हैं । दोनों उपन्यासों में सिर्फ पात्रों का क्रम बदल गया है । किन्तु लेखक के दृष्टिकोण और उपन्यास की मूल कथा के प्रवाह में कोई अवरोध नहीं आया है । उपन्यास के प्रत्येक पात्र को इस तरह चित्रित किया गया है कि उनकी चारित्रिक विशेषताएँ अलग-अलग उभरकर भी एक समग्र प्रभाव छोड़ती है और लेखक के दृष्टिबिन्दु के अनुरूप एक निश्चित परिणति तक पहुँचती है ।

२.२.२.११ पारो :

'पारो' एक नायिका प्रधान उपन्यास है जिसका प्रतिपाद्य बहुकोणीय या बहुपक्षीय नहीं है । इसमें अनमेल विवाह की समस्या को पूरी तीव्रता के साथ उठाया गया है । नागार्जुन अपनी रचनाशीलता को सामाजिक यथार्थ में रूपान्तरण का एक कारगर माध्यम मानते हैं और इसका प्रयोग वे अपनी प्रत्येक रचना में करते हैं । मिथिला के ब्राह्मण किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार को एक इतिहास मानकर उसके साथ अपनी लड़की को एक महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में जोड़ देने की महत्वाकांक्षा पालते हैं । भले ही उस परिवार का लड़का बूढ़ा या अयोग्य क्यों न हो । यह विडम्बना उनके अधिकांश उपन्यासों में व्यक्त हुई हैं ।

२.२.२.१२ (शीर्षकहीन उपन्यास) :

''नागार्जुन का एक अधूरा और शीर्षकहीन उपन्यास है जो 'साक्षात्कार' अगस्त-नवम्बर, १९८६ अंक में प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रस्तुति उनके ज्येष्ठ पुत्र शोभाकांत ने की ।''[६३] इसमें भी समाज के शोषक और शोषित वर्ग की गहरी खाई का पर्दाफाश किया गया है । लेखक ने उग्रवाम पंथी विचारधारा के आलोक में इसे प्रस्तुत किया है और समझौता परस्ती से अलग हटकर एक क्रान्तिकारी भावभूमि की रचना की है ।

टीपू इस उपन्यास का चरित्र है । जो एम.एस.सी. के अंतिम वर्ष में राजनीतिक गतिविधियों में पड़कर नक्सलाइट बनकर हजारीबाग सेन्ट्रल जेल की हवा खा रहा है । दुर्गति की कष्टतम अवस्था में भी अड़िग धैर्य और उत्साह के साथ टीपू अध्यवसायी बन गया है ।

२.२.२.१३ गरीबदास :

'गरीबदास' (१९९१) नागार्जुन का अंतिम उपन्यास है । जो बालसाहित्य की कोटि में आता है । नागार्जुन के पूर्ववर्ती उपन्यासों से इसकी विचारभूमि अलग है । इस उपन्यास द्वारा लेखक ने बालजीवन के बहुरंगी परिदृश्य में कुछ इजाफा का उसे बच्चों के मन और जीवन के निकट लाने की कोशिश की है । ''इसमें शैक्षिक वातावरण की उष्मा तथा बच्चों के अग्रगामी विकास की सम्भावनाएँ अभिव्यक्त हुई है ।''[६४] इसमें बालवर्ष की प्रदर्शनी दिखाई गई है तथा एक आदर्श विद्यालय की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हुए आदर्श छात्रों के क्रियाकलापों और उनकी सम्भावनाओं को रूपाकार दिया गया है ।

२.२.३ नागार्जुन का कहानी साहित्य :

यह कहने की अतिरंजना नहीं कि हिन्दी साहित्य में नागार्जुन ने कवि और उपन्यासकार के रूप में जो पहचान दर्ज कराई है वह कहानी क्षेत्र में नहीं । उनके सशक्त कवि और उपन्यासकार रूप के समक्ष उनका कहानीकार रूप उभर नहीं पाया है । उनका एक ही कहानीसंग्रह है 'आसमान में चंदा तैरे' जिसमें करीब बारह कहानियाँ है । जब तक अन्य कहानियों के प्रमाण न मिल पाये तब तक इसी संग्रह को उनका एक मात्र कहानी संग्रह माना जाना चाहिए ।

'असमर्थदाता' उनकी प्रथम कहानी है जिसका रचनाकाल सन् १९३६ है तथा यह मासिक पत्रिका 'दीपक' में १९३६ के अक्टूबर अंक में प्रकाशित हुई थी जिसका लेखक अकिंचन (नागार्जुन) है । नागार्जुन ने आरम्भ में 'अकिंचन' नाम से कहानियाँ लिखी थी । इन कहानियों में वे अभावग्रस्त व्यक्ति की पीड़ा को संवेदनात्मक स्तर पर महसूस करते हैं और यह संवेदना उन्हें मानवता के स्तर तक ले जाती है ।''[६५]

'असमर्थतादाता' (१९३६) कहानी में नागार्जुन ने एक असमर्थ स्त्री की गरीबी और आर्थिक विवशता का अत्यन्त मार्मिक चित्र खींचा है । इस कहानी का रचनाकाल सन् १९३६ है जब प्रेमचंद अपने अंतिम दौर की कहानियाँ 'पूस की रात' और 'कफन' जैसी यथार्थवादी कहानियों की रचना कर चुके थे । 'असमर्थदाता' कहानी में सुक्खो नाम की एक गरीब बालिका है जो कुछ पैसों के लिए लेखक का कुर्ता पकड़कर खींचती है । लेखक पान की दुकान पर छुट्टे पैसे माँगता है लेकिन वह नहीं देता तब तक सुक्खो की अन्य सहेलियाँ भी आकर लेखक को घेर लेती है। नागार्जुन किसी तरह उनसे पिण्ड छुड़ाकर भाग जाना चाहते हैं तब तक सुक्खो अपने साथियों को अलग ले जाकर फिर से लेखक के पास आकर उनसे एक इकन्नी माँगकर अपनी झोंपड़ी की ओर जाने लगती है । लेकिन लेखक का मन गहरे अवसाद से भर जाता है । कथा नायक मानवीय संवेदना से युक्त है ।

'तापहारिणी' (कौमी बोली मई, १९४५) कहानी के कथानायक स्वयं नागार्जुन है । कथानायिका उनकी पत्नी अपराजिता है । यह आत्मकथात्मक शैली में लिखित कहानी है । लेखक ने अपनी पत्नी के साथ किये गये गंगास्नान तथा उससे जुड़े अनुभवों का कथन किया है । इसमें लेखक ने कर्मकाण्ड, पुरुष मनोविज्ञान, पति-पत्नी के हास-परिहास आदि को प्रस्तुत किया है ।

'कायापलट' (१९४६) एक आदर्शवादी कहानी है । जैसे उनका 'दुखमोचन' उपन्यास । गांधीजी की मान्यता थी कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है । इसलिए वे गाँवों का पुनरोद्धार या कायापलट करना चाहते थे । ''गाँव के शिक्षित बेरोजगारों के शहर-पलायन से गाँव खाली हो जाने की समस्या खड़ी हो गई थी । इसलिए 'कायापलट' कहानी में नागार्जुन ने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है जिसमें गाँव में ही रोजगार के तमाम अवसर पैदा किये जाते हैं जिनमें गाँव के शिक्षित बेरोजगार कार्यरत होते हैं और वे गाँव को एक आदर्श गाँव का दर्जा देते हैं ।''[६६] छितौनी गाँव का वयोवृद्ध राजपूत बाबू पलटूसिंह गाँव से पलायन करते युवकों से बेहद चिन्तित है ।

'विशाखा मृगारमता' (पारिजात, मई-१९४७) आत्मकथात्मक शैली में लिखित नागार्जुन की ऐतिहासिक कहानी है । जिसमें विशाखा के दृष्टिबिन्दु से कहानी कही गई है । विशाखा के दादा सेठ मद्रिका नगर के निवासी थे । धनंजय

सेठ विशाखा के पिता थे । बाद में वे साकेत में बस गये । मगध सम्राट बिंबिसार को कोशलराज प्रेसनजित ने पत्र लिखा कि वे किसी खानदानी महाकुल के बनिये को कोशल में भेजे । बिम्बिसार ने भेजने से इन्कार किया किन्तु कोशल के दूत ने जिद की, कि बिना पाये वे जायेंगे नहीं । राजा के कहने पर धनंजय सेठ मगध जाने को तैयार हो गया । वह सामान के साथ वहाँ जाकर बस गया ।

'' 'जेठा' (१९४७) एक पितृ-मातृहीन बालक पर आधारित कहानी है।''[६७] कथानक जेठानन्द अपनी मौसी के यहाँ रहता है । चार साल की उम्र में बाप का साया उठ गया । जेठानन्द मेट्रिक का छात्र है । किन्तु पढ़ाई के प्रति बेहद लापरवाह और सिनेमा का शौकीन है । उसकी माँ ने एक बनिये को अपने पतिरूप में वरण किया है, इसलिए जेठा से अपना पिण्ड छुड़ा लिया है । अपनी बर्बादी के लिए जेठानन्द अपनी माँ को ही जिम्मेदार मानता है ।

'ममता' (योगी, नवम्बर-१९५२) कहानी नागार्जुन की आपबीती है । यह मातृहीन नागार्जुन के पारिवारिक जीवन को बड़ी मार्मिकता से उभारती है । मातृहीन बुलो शान्त स्वभाव का एक दस साला बालक है जिसे एक इकन्नी के हिसाब को लेकर चाची द्वारा दो चपत्तें लगाये जाने पर वह बैठक की ओर भागता है और एक जर्जर तख्तपोश पर बैठकर रोता है । फिर वह मित्र नरेन्द्र के घर भाग जाता है । बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिलता तब चाची अपने कठोर व्यवहार पर पश्चाताप करती है ।

'हर्षचरित का पॉकिट एडिसन' (१९५६) स्थाणीश्वर के राजा हर्षवर्धन और राजवर्धन का हत्यारा गौडाधिपति नरेन्द्रगुप्त शशांक के बीच युद्ध पर आधारित एक ऐतिहासिक कहानी है । ''कहानी में बहन के प्रति भाई की त्याग भावना और भाई-बहन के आदर्श प्रेम का भारतीय संदर्भ उजागर हुआ है ।''[६८]

'हीरक जयंती' (१९५७) कहानी इसी नाम के नागार्जुन के उपन्यास का एक अंश है । जिसमें मंत्रीबाबू नरपत नारायण सिंह की हीरक जयंती मनायी जाती है । चंदा इकट्ठा करके उन्हें एक अभिनन्दन ग्रंथ और ६१ हजार की थैली भेंट की जाती है । नरपतबाबू आज के भ्रष्ट नेता के प्रतीक है जो भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हैं ।

'आसमान में चंदा तैरे' (कहानी, जून-१९५८) में लेखक ने परीक्षा में पद्मानन्द की दूसरी बार असफलता और साहित्य प्रकाशन की समस्या को बड़े प्रबल ढंग से उठाया है । पद्मानन्द की खूबसूरती, गले की मिठास और कवित्वशक्ति उसे विद्यार्थियों की आम जमात से बाहर ले आती है और वह कवियों के पीछे-पीछे चलने लगता है । फलतः उसकी परीक्षा की तैयारी नहीं हो पाती । अभ्यास की कमी उसके सारे गुणों को गोबर कर रही थी । लीलाधर जैसे प्रतिष्ठित और स्थापित कवि की प्रेरणा पाकर पद्मानन्द निहाल हो उठा । किन्तु उसके सारे सगे-संबंधी लीलाधर को कोस रहे थे कि उन्होंने अच्छे लड़के को चौपट कर दिया और पद्मानन्द अपनी किस्मत को कोस रहा था कि उसकी कवि प्रतिभा का सम्मान करनेवाला कोई नहीं था ।

'' 'भूख मर गई थी' (नई धारा, अप्रैल-१९६७) एक संभ्रान्त परिवार के टूटने-बिखरने की कहानी है । यह एक अभावग्रस्त विपन्न वृद्ध की कहानी है ।''६९ जिसे विरासत में दस बीघा जमीन मिली थी किन्तु सारी जमीन बीक जाती है तथा एक मात्र पुत्र पुलिस की नौकरी करते हुए डाकुओं से मुठभेड़ में मारा जाता है। इसमें लेखक एक ऐसी प्रतिकूल स्थिति रचता है जब वृद्ध की पुत्रवधू को जीविकोपार्जन हेतु एक नौकरीपेशा युवक के साथ नाजायज जिस्मानी रिश्ता बनाना पड़ता है । वह स्त्री शौक से नहीं बल्कि अभावों की पूर्ति हेतु ऐसा कार्य करती है । वृद्ध ही उसे कुकर्म के लिए प्रेरित करता है ।

'' 'विषम ज्वर' गुजराती की एक कहानी के आधार पर लिखित है ।''७० पूर्ण यथार्थवादी इस कहानी में नौकरीपेशा कर्मचारी वर्ग की स्थितियों, विवशताओं और मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण है । मध्यम वर्ग की स्थिति बड़ी चिन्तनीय होती है । क्योंकि उन्हें सीमित या बंधा हुआ वेतन मिलता है ।

अन्तर्द्वन्द्व चित्रण 'विषम ज्वर' कहानी की एक विशेषता है । जो नई कहानी से मेल खाता है । कथानायक दीनानाथ निरन्तर मानसिक ऊहा-पोह में रहता है । वह कई प्रकार की मानसिक उलझनों में फँसा हुआ है ।

'मनोरंजन टैक्स' कहानी का कथानायक रतन है जिसकी रेलवे स्टेशन के बुकस्टॉल पर नौकरी कर रहे एक लड़के से दोस्ती हो जाती है । वह हर महीने

स्टॉल पर आकर उससे कुछ मैगझीन पढ़ने को ले जाता है । मनोरंजन के नाम पर वह सस्ती पत्रिकाएँ खरीदता है ।

इस प्रकार नागार्जुन की कहानियों में भावुकता और प्रगतिशीलता दोनों है। पारिवारिक संदर्भो में वे अत्यधिक भावुक हो उठते हैं और शोषण को देखकर प्रगतिशील, किन्तु प्रगतिशीलता का वह मुखर रूप इन कहानियों में नहीं है जो उनके उपन्यासों और कविताओं में है । उनकी कहानियों पर प्रेमचंद और निराला का प्रभाव तो है किन्तु उनका सम्पूर्ण विकास नहीं देखा जा सकता जैसा कि उपन्यासों में । इन तीनों रचनाकारों में जो एक चीज सामान्य है वह है ग्रामीण परिवेश और आम आदमी से लगाव । उनकी कहानियों में सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक परिवेश मूर्त हुआ है । नागार्जुन की कहानियाँ किसी फैन्टसीलोक में नहीं ले जाती और न किस्सागोई को ही प्रश्रय देती है, बल्कि अपने समय के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करती है । ''उनके पात्र अस्तित्ववादी पात्रों की तरह आत्मनिर्वासित नहीं हैं । बल्कि जीवन की कठोरता और कठिनाइयों से संघर्ष करते हैं । अनेक कहानियों में उनका आत्मसंघर्ष व्यक्त हुआ है ।''[७१]

२.२.४ नागार्जुन की अन्य रचनाएँ :

नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत और बंगला में भी साहित्य सृजन किया है । इसके अतिरिक्त निराला पर 'एक व्यक्ति : एक युग' नामक रचना है, तो बच्चों के लिए भी कहानियाँ, कविताएँ और प्रेमचंद की जीवनी लिखी है । इसके अतिरिक्त मेघदूत, विद्यापति, गीत गोविन्द आदि का अनुवाद भी उन्होंने किया है । यथा –

२.२.४.१ मैथिली साहित्य :

मैथिली नागार्जुन की मातृभाषा है । इसमें इन्होंने 'यात्री' नाम से साहित्य सृजन किया है । 'बलचनमा' पहले मैथिली में ही लिखा गया था । 'नवतुरिया' और 'पारो' नामक अन्य उपन्यास भी मैथिली में है । जिनका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है । '' 'चित्रा' और 'पत्रहीन नग्न गाछ' नामक मैथिली के काव्य संग्रह को साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है ।''[७२] नागार्जुन की मातृभाषा होने के कारण मैथिली में शुरू से ही लगाव रहा है । इसमें उन्होंने सुन्दर गीतों की रचना

भी की है । उपन्यासों के अतिरिक्त कहानियाँ भी लिखी है । मैथिली में 'चित्रा' और 'पत्रहीन नग्न गाछ' काव्यसंग्रहों के अतिरिक्त भी 'यात्री' ने मैथिली में खूब कविताएँ लिखी है जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इधर-उधर बिखरी पड़ी है । मैथिली कविताओं में मैथिल की माटी की सोंधी महक है जो कवि के भीतर बसी हुई है । उनकी हिन्दी कविताओं को समझने के लिए भी इन कविताओं का अध्ययन आवश्यक है । क्योंकि किसी भी कवि या रचनाकार को समझने के लिए उसके पूरे विकासक्रम को समझना भी उतना ही आवश्यक है जहाँ से उसका रचना संसार आरम्भ होता है ।

२.२.४.२ बालसाहित्य :

नागार्जुन ने बालसाहित्य की रचना भी की है जिसमें उन्होंने बच्चों के लिए कहानियाँ, कविताएँ आदि लिखा है । रामायण की कथा मंजरी, वीर विक्रम, अयोध्या का राजा और प्रेमचंद की जीवनी लिखी । ''बाल कहानियों में सैनिक की भिड़न यमराज से, दु:ख, नदी फिर जी उठी, पारितोषिक, ठहाका- दाढ़ियोंवाली फसल का, अदभूत टापू, अभिनेता, ड्यूटी, पिताजी...पैसे, वानर कुमारी, दया आती है, गजेन्द्रकुमार, तुर्को का खेल, आसमान में चंदा तैरे आदि प्रमुख है ।''[७३] ये कहानियाँ सरल एवम् रोचक भाषा में लिखी गई है ।

२.२.४.३ संस्कृत काव्य :

नागार्जुन ने संस्कृत में भी काव्य रचनाएँ की है । संस्कृत का इन्होंने बचपन में ही गंभीर अध्ययन कर लिया था तथा सिंहली प्रवास के दौरान भी ये उसका अभ्यास और कविता करते रहे थे । नागार्जुन की ये संस्कृत कविताएँ हैदराबाद (सिंघ) से प्रकाशित 'कौमुदी पत्रिका' में सन् १९४२ ई. में प्रकाशित हुई थी । 'देश दशक', 'श्रमिक दशक' और 'कृषक दशक' शीर्षक इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । कुछ संस्कृत कविताएँ 'चाणक्य' उपनाम से भी प्रकाशित हुई है । अपने लंका निवास के दौरान सिंहली लिपि में 'धर्मलोक शासक' शीर्षक से एक खण्डकाव्य भी भिक्खु नागार्जुन ने लिखा था । जो वहाँ के विद्यालंकार विद्यालय की मैगझिन में प्रकाशित हुआ था । 'महामानव लेनिन' पर भी बीस श्लोक नागार्जुन ने संस्कृत में लिखे हैं । इस प्रकार न केवल हिन्दी व मैथिली बहल्क संस्कृत में भी नागार्जुन ने

साहित्य सृजन किया । बंगला में भी समय- समय पर कविताएँ लिखी है । लेकिन अभी ये सब एक जगह उपलब्ध नहीं है ।

२.२.४.४ एक व्यक्ति:एक युग :

महाकवि निराला पर नागार्जुन ने 'एक व्यक्ति:एक युग' नाम से एक लघु प्रबंध की रचना की है । इसमें निराला की केवल जीवनी ही नहीं है बल्कि उनकी रचनात्मक उपलब्धियों की ओर भी प्रकाश डाला गया है । उनके जीवन को विविध कोणों से देखने का प्रयास किया गया है ।

२.२.४.५ अनुवाद :

नागार्जुन ने कुछ कृतियों के अनुवाद भी हिन्दी में किये हैं, उनमें प्रमुख है कालिदास कृत 'मेघदूत', शरतचन्द्र की 'परिणीता', जयदेव का 'गीत गोविन्द' और विद्यापति के गीत आदि । नागार्जुन द्वारा किया गया अनुवाद मात्र अनुवाद न होकर लेखक की मूल भवनाओं को पूरा उतारने का प्रयास है । जिससे वह हिन्दी पाठकों के लिए अधिक से अधिक बोधगम्य बन सके ।

''समय-समय नागार्जुन लेख भी लिखते रहे हैं और 'जनयुग' में एक स्तम्भ भी जिसमें उन्होंने कइयों को अपने व्यंग्य की लपेट में लिया है । 'आसमान में चंदा तैरे' नामक एक कहानी संग्रह भी है ।''[७४]

नागार्जुन की रचना धर्मिता के बहुआयामी रूप उनकी रचनाओं में उभरकर आते हैं । जहाँ उनकी छटपटाहट विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त होती है । अपने समय की पीड़ा, अपने समय का अंतर्द्वन्द्व कवि के भीतर निरन्तर पलता रहता है और कविता, उपन्यास के माध्यम से फूटता है । नागार्जुन का कवि अपनी सीमाओं को लाँघकर कविता को जन-साधारण के बीच लाकर खड़ा कर देता है । उनकी कविता विविध भाव-भूमियों पर यात्रा करती हुई जन-साधारण के बीच रचपचकर उसका दु:ख-दर्द टटोलती है । यही कवि इतिहासकार की भूमिका भी धारण करता है । क्योंकि इतिहासकार मोटे तथ्यों और प्रमुख घटनाओं को ही रेखांकित करता है,

जब कि जन–साधारण का इतिहास जन कवि की रचनाओं में ही अभिव्यक्त होता है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार हैं । जिन्होंने न केवल विभिन्न विधाओं में बल्कि विभिन्न दूभाषाओं में रचनात्मक लेखन कर अपने सामर्थ्य का परिचय दिया है ।

:: -- ::

पाद नोंध

१. कथाकार : नागार्जुन, डॉ. जगन्नाथ पंडित, नमन प्रकाशन, दिल्ली, २००५, पृ. ४ ।
२. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.१ ।
३. वही, पृ. १ ।
४. नागार्जुन का रचना संसार, विजय बहादुरसिंह, संभावना प्रकाशन, हापुड़, १९८२, पृ. १३ ।
५. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.२ ।
६. वही, पृ. ३ ।
७. वही, पृ. ३ ।
८. वही, पृ. ४ ।
९. वही, पृ. ४-५ ।
१०. कथाकार बाबा नागार्जुन, डॉ. अवधे ाकुमार राय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, २००६, पृ.१४ ।
११. वही, पृ. १४ ।
१२. वही, पृ. १४ ।
१३. वही, पृ. १५ ।
१४. वही, पृ. १६ ।
१५. वही, पृ. ४४ ।
१६. वही, पृ. ४४ ।
१७. वही, पृ. ४५ ।
१८. वही, पृ. ४५ ।
१९. वही, पृ. ४६ ।
२०. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.१४ ।
२१. वही, पृ. १४ ।
२२. वही, पृ. १५ ।
२३. वही, पृ. १६ ।
२४. वही, पृ. १७ ।
२५. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. ६७ ।
२६. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.१९।
२७. वही, पृ. १९-२० ।
२८. नागार्जुन का रचना संसार, विजय बहादुरसिंह, संभावना प्रकाशन, हापुड़, १९८२, पृ. ४५ ।
२९. वही, पृ. ४९ ।
३०. रूपाम्बरा, नागार्जुन, पृ. २७८-२७९ ।

३१. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.२३ ।
३२. तुमने कहा था, नागार्जुन, पृ. ८७ ।
३३. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.२४ ।
३४. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. १७ ।
३५. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. १०१ ।
३६. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.३० ।
३७. जनशक्ति, जनवरी-१९६०, पटना ।
३८. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. ११४ ।
३९. वही, पृ. १६७ ।
४०. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.३८ ।
४१. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. ३२ ।
४२. वही, पृ. ८८ ।
४३. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.४२ ।
४४. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ. १५७ ।
४५. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.५४ ।
४६. डॉ.प्रभाकर माचवे, सं ,नागार्जुन, पृ. २६ ।
४७. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.६६ ।
४८. वही, पृ. ६९ ।
४९. वही, पृ. ७० ।
५०. वही, पृ. ७१ ।
५१. वही, पृ. ७१ ।
५२. वही, पृ. ७२ ।
५३. वही, पृ. ७२ ।
५४. कथाकार : नागार्जुन, डॉ.जगन्नाथ पंडित, नमन प्रकाशन, दिल्ली, २००५, पृ.२६ ।
५५. वही, पृ. ५० ।
५६. वही, पृ. ७२ ।
५७. वही, पृ. ७८ ।
५८. वही, पृ. ९६ ।
५९. वही, पृ. १०९ ।
६०. वही, पृ. १२५ ।
६१. वही, पृ. १३३ ।
६२. वही, पृ. १४१ ।
६३. वही, पृ. १७० ।
६४. वही, पृ. १७८ ।

६५. वही, पृ. १८३ ।
६६. वही, पृ. १८५ ।
६७. वही, पृ १८८ ।
६८. वही, पृ. १८९ ।
६९. वही, पृ. १९२ ।
७०. वही, पृ. १९३ ।
७१. वही, पृ. १९५ ।
७२. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ.१९० ।
७३. वही, पृ. १९४ ।
७४. वही, पृ. १९६ ।

अध्याय – ३
नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना

३.१ सामाजिक संदर्भ ।
३.२ राजनीतिक संदर्भ ।
३.३ आर्थिक संदर्भ ।
३.४ धार्मिक संदर्भ ।
३.५ सांस्कृतिक संदर्भ ।
३.६ रतिनाथ की चाची ।
३.७ बलचनमा ।
३.८ नई पौंध ।
३.९ बाबा बटेसरनाथ ।
३.१० वरुण के बेटे ।

अध्याय : ३
नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना

गद्य विधाओं में उपन्यास विधा का विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा है । लोकप्रियता की दृष्टि से भी उपन्यास का स्थान गद्य साहित्य में महत्वपूर्ण रहा है। उपन्यास के लिए कहा गया है कि 'उपन्यास सह प्रसादनम्' अर्थात् उपन्यास मन को प्रसन्न करता है । यानी प्रसन्नता प्रदायक कृति को उपन्यास कहते हैं । वस्तुतः उपन्यासकार अपने उपन्यास में मानव जीवन की मीमांसा करता है । मानवजीवन के आंतरिक व बाह्य परिस्थितियों का, उसके मन के संघर्ष का, चारों ओर के वातावरण व समाज का एक काल्पनिक कथाचित्र उपन्यास है ।

हिन्दी साहित्य के उपन्यासों की विकासरेखा अपने प्रारम्भ से लेकर आज तक अपनी सम-सामयिक परिस्थितियों को व्यक्त करती रही है । हिन्दी साहित्य के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु प्रेमचंदजी का साहित्य रहा है । प्रारम्भिक युग में उपन्यासों का स्वरूप वस्तुगत दिखाई पड़ता है । प्रेमचंदयुग में इन उपन्यासों का विकास हुआ है और प्रेमचंदोत्तरयुग में नवीन दृष्टिकोण एवम् सामाजिक यथार्थ की तृष्णावादी विचारधारा को इसमें निहित किया गया है ।

प्रेमचंदोत्तरयुग में हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपना बहुमुखी विकास किया। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से साहित्यकार सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, पारिवारिक, दार्शनिक, भौगोलिक आदि संपूर्ण जीवन के हरेक क्षेत्र को पूर्ण विस्तार के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करता है । हिन्दी उपन्यास ने अपनी विकास यात्रा में विभिन्न रूपों तथा प्रकारों को प्रस्तुत किया है । जैसे ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, भावप्रधान उपन्यास, रोमानी उपन्यास, प्रगतिवादी उपन्यास आदि । इनमें **आँचलिक उपन्यास** अपनी निजी एवम् महत्वपूर्ण पहचान रखता है ।

'अँचल' शब्द की भाववाची संज्ञा 'आँचलिकता' है । किसी निश्चित अँचल विशेष या प्रदेश विशेष के समग्र जनजीवन तथा लोक प्रचलित धारणाओं आँचलिक उपन्यासों में चित्रित किया जाता है । आँचलिक उपन्यास साहित्य के आधार पर जनपदीय एवम् जनजातीय समाज के समसामयिक संदर्भो का विश्लेषण किया जाता है । कोई एक अँचल, कोई भाषा-भाषी ऐसा सामाजिक एवम् सांस्कृतिक पक्ष होता है, जिसके व्यक्ति, व्यवहार की भाषा, पद्धतियों, मूल्यों, सामान्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवम् घटनाओं से सम्बद्ध होते हैं । आँचलिक उपन्यासकारों द्वारा इन अँचलों के आर्थिक, सामाजिक एवम् प्रशासनिक सुविधाओं की दृष्टि से ग्रामों को विकास की इकाई बनाया गया है । जन-जीवन पर आधारित आँचलिक उपन्यास साहित्य भी इन्हीं ग्रामों की पृष्ठभूमि पर विचरित है । जन-जीवन पर आधारित आँचलिक उपन्यास साहित्य के परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए व किसी आँचलिक उपन्यास की कथ्यगत विवेचना के लिए भारतीय ग्रामीण समाज के परिवेश के नियामक तत्त्वों पर विचार करना अनिवार्य आव यक बन जाता है । इस हेतु आँचलिक परिवेश के प्रमुख पाँच नियामक तत्त्वों की विवेचना निम्न प्रकार से है ।

३.१ सामाजिक संदर्भ :

भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण करनेवाली संस्थाएँ हैं - वर्णव्यवस्था, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, परिवार एवम् नारी की सामाजिक स्थिति, ये भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन का आधार रही है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने वर्ण, जाति एवम् अस्पृश्यता के आधार पर सामाजिक विषमता का उन्मूलन करने के लिए अनेकों विधानों का निर्माण किया, जिनसे इनकी कुछ शक्ति अवश्य क्षीण हुई है । तथापि ग्रामीण परिवेश में निरक्षरता एवम् निर्धनता के कारण इनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है ।

भारतीय ग्रामीण समाज वैदिक काल में वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। इस व्यवस्था के अनुसार समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवम् शुद्र चार वर्ण होते हैं। यह चारों अपने गुण कर्म के अनुसार अपने कार्य करते हैं । यजुर्वेद में समाज के इन चार अंगों की तुलना एक विशालकाय पुरुष के समान की गई है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवम् शुद्र इस समाजरूपी मानव के क्रमशः मस्तिष्क, भुजा, उदर और मानव के ज्ञान को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण अपने ज्ञान

से संपूर्ण समाज को आप्लावित करता है । दो भुजाएँ जिस प्रकार मानव शरीर एवम् दूसरे व्यक्तियों से समाज की रक्षा करती है उसी प्रकार क्षत्रिय अपने बल से संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करता है । उदर जिस प्रकार मानव शरीर को मिलनेवाले भोजन को पचाकर एवम् रस- रक्त बनाकर संपूर्ण शरीर में पहुँचाता है, उसी प्रकार समाज में वैश्य धन को एकत्रित कर अपने पास न रखते हुए संपूर्ण समाज की संपत्ति एवम् उसके उत्पादन की व्यवस्था करता है एवम् जिस प्रकार चरण मानव के शरीर की सेवा करने एवम् उसे एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने का श्रम करते हैं ठीक उसी प्रकार शुद्र समाज में शारीरिक श्रम करते हैं । इस मंत्र से स्पष्ट है कि उस समय वर्ण व्यवस्था का आधार गुण कर्म था । ''परन्तु स्मृतियों के काल में जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ एवम् व्यक्ति के अधिकार एवम् कर्तव्यों का निर्धारण गुण कर्म के स्थान पर जन्म के आधार पर होने लगा ।''१

समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में वर्तमान आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक चेतना, प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रचार एवम् प्रसार, वर्तमान शिक्षा पद्धत्ति के विस्तार एवम् वैज्ञानिक साधनों के प्रभाव के कारण परम्परागत वर्ण व्यवस्था प्रासाद के लगभग खण्डहर शेष है । उसकी आत्मा मर चुकी है । नागरिक जीवन में तो इस व्यवस्था का महत्व समाप्त प्राय: है, परन्तु ग्रामीण जीवन में निर्धनता एवम् अज्ञान के कारण इसका थोड़ा महत्व अव य बना हुआ है ।

भारतीय ग्रामीण समाज का आधार जाति-व्यवस्था है । 'जाति' से अभिप्राय (अ) भारतवर्ष में सुलभ एक ऐसे सामाजिक संगठन से है जो विवाह एवम् व्यवसाय के प्रतिबन्धों, जन्मानुसार सुदृढ़ स्तरों एवम् ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में धार्मिक वि वासों पर आधारित है । (ब) भारतीय सामाजिक व्यवस्था के वंश परम्परागत समूहों में से एक है । (स) वंश परम्परागत एवम् निषेधात्मक वर्ग है । (सामान्यत: अनुचित विशेषाधिकार अथवा भष्ट करनेवाले अर्थ के साथ समाविष्ट)। भारतीय ग्रामीण समाज में जाति, व्यक्ति के कार्य, जीवन स्तर एवम् उसे सुलभ अवसरों पर सुनिश्चित करती है । ''जातिगत वैभिन्य पारिवारिक एवम् सामाजिक जीवन की पद्धत्तियों, सांस्कृतिक स्वरूपों एवम् गृहों की बनावट तक को निर्धारित करता है ।''२ भूमि का स्वामित्त्व भी प्राय: जाति प्रथा के आधार पर ही प्रतीत होता है । इसने ग्रामीण जगत् के अनेकों सामाजिक समूहों की मन:स्थिति को

निर्धारित कर दिया है और सामाजिक सम्बन्धों की ऊँचाई-निम्नता, सामिप्य अथवा दूरी के क्रमानुसार स्तर निर्धारित कर दिये हैं ।

समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में आधुनिक संचार व्यवस्था के विकासोन्मुख प्रसार, औघोगीकरण एवम् पाश्चात् सिद्धांतों पर आधारित शिक्षा के प्रसार, पूँजीवादी अतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय सरकार की समाजवादी नीतियों एवम् विविध विधानों के कारण जाति व्यवस्था के परम्परागत कार्य एवम् अर्थ संबंधी आधारों में परिवर्तन आया है । आज शताब्दियों से आर्थिक एवम् शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए शुद्रों के उत्थान के लिए सरकार वचनबद्ध है । भारतीय संविधान में प्रत्येक प्रकार के जातिगत भेदभाव का उन्मूलन करते हुए पिछड़ी हुई अनुसूचित जातियों एवम् जनजातियों के शैक्षणिक एवम् आर्थिक हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा एवम् उन्हें सामाजिक अन्याय तथा प्रत्येक प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करेगा । संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था तथा सरकारी प्रयासों के कारण कुछ अनुसूचित जातियों एवम् जनजातियों में विकास की आंशिक लहर अवष्य आई है और साथ ही कुछ जातियाँ अपने पूर्वकालीन जीवन स्तर एवम् कार्यो को खोती जा रही है तथा समाज के निम्न वर्गो में मिलती जा रही है ।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक परिवेष में वर्ण-व्यवस्था एवम् जाति व्यवस्था की भाँति अस्पृश्यता भी अपना स्थान बनाए हुए है । ''अस्पृश्यता समाज की वह व्यवस्था है जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को या एक समाज दूसरे समाज को परम्परा के आधार पर छू नहीं सकता, अगर छूता है तो स्वयं अपवित्र हो जाता है और इस अपवित्रता से छूटने के लिए उसे किसी प्रकार का प्रायश्चित करना पड़ता है ।''[३]

वस्तुत: 'अस्पृश्यता' की जननी जाति व्यवस्था है, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि है एवम् शुद्र का सब से निम्न । शुद्र अस्पृश्य है, जिन्हें छूना ही अपवित्रता का द्योतक है । ''इस व्यवस्था ने भारतीय समाज के लगभग पंचमाश को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवम् धार्मिक रूप से पिछड़ी हुई परिस्थितियों में रहने के लिए बाध्य किया है ।''[४] भारतीय सामाजिक व्यवस्था की दीमक को दूर करने के लिए महात्मा गांधी, राजा राममोहनराय आदि

समाजसुधारकों, आंग्ल प्रशासन के विद्वानों एवम् स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा अथक परिश्रम किया गया है । भारतीय संघ के संविधान के अनुसार 'अस्पृश्यता' का उन्मूलन किया जाता है । अस्पृश्यता के कारण उत्पन्न किसी भी प्रकार की अयोग्यता को लागू करना विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा । संविधान की इस धारा को पूर्ण करने के लिए केन्द्रीय सरकार एवम् विविध राजकीय सरकारों ने समय-समय पर अनेकों कानून पारित किये हैं ।

इन सब प्रयासों के परिणाम स्वरूप भारतीय नागरिक समाज एवम् नगरों के समीपस्थ गाँव एवम् कस्बों में 'अस्पृश्यता' की परम्परागत संस्था अवश्य क्षीण हुई है परन्तु नगरों से दूरस्थ ग्रामीण अँचलों जहाँ पर अभी आवागमन के साधन भी समुचित नहीं है और शिक्षा का प्रसार नाममात्र को है, वहाँ अस्पृश्यता आज भी पाई जाती है । ग्रामीण समाज का संगठन करनेवाली संस्थाओं में मध्य परिवार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है । मानव परिवार वयस्कों (कम से कम दो विवाहित विरोधी लिंग एवम् रक्त संबंधों से सम्बद्ध) बच्चों और विवाह द्वारा सम्बद्ध वयस्कों की संतानों का ऐसा संस्थागत समूह है जिनके न्यूनतम् कार्य संतति के प्रजनन, रक्षण एवम् सामाजीकरण के लिए सामाजिक एवम् सांस्कृतिक स्थिति की व्यवस्था एवम् यौन संबंधों को सम्मिलित करते हुए प्रवृत्यात्मक आवश्यकताओं के नियंत्रण एवम् समावान का संभरण करना है । ''परिवार ग्रामीण समाज की सबसे पुरातन संस्था है।''[५] यह ग्रामीण व्यक्ति एवम् समूह की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, सांस्कृतिक तथा औधोगिक जीवन के निर्माण एवम् विकास में एक निर्णायक भूमिका सम्पन्न करता है । वस्तुतः परिवार एवम् परिवारवाद सम्पूर्ण ग्रामीण समाज पर अपना प्रभुत्व रखता है ।

''परम्परागत रूप में जातिप्रथा सामाजिक वह गतिशील व्यवस्था है जो अपने सदस्यों पर खान-पान, व्यवसाय एवम् विवाह संबंधी प्रतिबंधों को कठोरता से लागू करती है ।''[६]

किसीका पूँजीवादी आर्थिक विकास उसका सामाजिक एवम् राजनीतिक वातावरण में परिवर्तन कर देता है । भारतवर्ष में आंग्ल पूँजीवाद ने भारतीय समाज की सामाजिक एवम् आर्थिक संरचना को परिवर्तित कर एक केन्द्रित राज्य की स्थापना की । जिसके परिणामस्वरूप परिवार के शिक्षा, न्याय, औषधी, प्रशासनादि

संबंधी अनेकों उत्तरदायित्व राज्य ने अपने हाथों में ले लिए और जैसे-जैसे नगरीकरण एवम् औधोगीकरण का प्रभाव बढ़ा परिवार के अधिकार एवम् कर्तव्य क्षीण होते चले गये । ''समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज के संयुक्त परिवार में एक परिवर्तन स्थान ग्रहण कर रहा है । ग्रामीण परिवार के सम्बन्घों का आधार सहयोग समझौते में परिवर्तित होता जा रहा है ।''७ रीति-रिवाज के स्थान पर कानून का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । कार्यो की लघुता के साथ-साथ आकार में भी लघुता आ रही है । आज का ग्रामीण परिवार (संयुक्त परिवार जिसमें कई पीढ़ी के सदस्य रहते थे) केवल पति, पत्नी एवम् अविवाहित बच्चों का लघु परिवार बनता जा रहा है ।

विश्व के प्रत्येक समाज की संरचना में नारी का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वैदिककाल में भारतीय ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति आधुनिक पाश्चात् नारी से भी कहीं अधिक सुदृढ़ थी । ''मध्यकाल में भारतीय नारी की सुदृढ़ एवम् स्वतंत्र सामाजिक स्थिति का प्रसाद धराशायी हो गया ।''८ उसके सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक अधिकार शून्य हो गये और उसका कार्य क्षेत्र पुरुषों की सेवा-सायिका रहते हुए घर की चार दीवारी तक सीमित हो गया ।

बीसवी शाताब्दी के प्रारम्भ में पाश्चात् संस्कृति के सम्पर्क, समाज सुधारकों राजा राममोहनराय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री केशवचन्द्र सेन, श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि के सुधारावादी आंदोलनों के प्रभाव एवम् अनेकों महिला मंडलों के प्रयासों के कारण भारतीय नारी की परम्परागत स्थिति में सुधार आया । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय संविधान ने भारतीय नारी को पुरुष के समान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवम् धार्मिक अधिकार प्रदान किये हैं । ''संविधान में स्पष्ट लिखा गया है कि राज्य धर्म, प्रजाति, लिंग, जन्म के स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेद-भाव नहीं करेगा ।''९ कोई भी नागरिक धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म के स्थान अथवा उनमें से किसी एक के आधार पर सार्वजनिक स्थानों पर पहुँचने अथवा सार्वजनिक कुओं, तालाबों आदि के प्रयोग करने से किसी अयोग्यता, ऋण, निरोध अथवा शर्त के लिए विवश नहीं होगा ।

दहेज नारी जाति के समुचित विकास में सर्वाधिक बाधक प्रथा थी । ''दहेजप्रथा, प्रेमविवाह, अवैध संतान, नैतिक सुरक्षा आदि समस्याओं के कारण अंतिम दशक की स्त्री को कुंठाओं का शिकार भी होना पड़ता है ।''[१०] इसके परिणाम स्वरूप अनमेल विवाह एवम् बालविवाह जैसी समस्याएँ जन्म लेती थी । इस कुप्रथा को दूर करने के लिए भारत सरकार ने दहेज निरोधक अधिनियम १९६१ पारित किया । इस विधेयक के अनुसार किसी भी (वर-वधू) पक्ष के माता-पिता द्वारा विवाह के अवसर पर अथवा दूसरे व्यक्ति द्वारा विवाह पर, विवाह से पूर्व अथवा विवाह के पश्चात् वर-वधू के विवाह के शर्त के रूप में सम्पति अथवा मूल्यवान सुरक्षा प्रदान करने के लिए सहमत होना (जो व्यक्ति मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के अंतर्गत आते है उनके दहेज अथवा मेहर पर लागू नहीं होता) अपराध हो गया । दहेज माँगना अथवा देना जेल, जुर्माना अथवा दोनों के साथ दण्डनीय है ।

उपर्युक्त विधेयकों के पारित होने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि भारतीय हिन्दू नारी की (विशेषकर वे जो मुस्लिम नहीं है) अधिकांश वैधानिक अयोग्यताएँ समाप्त कर दी गई है । ''परन्तु सामाजिक प्रगति विधानों के साथ कदम से कदम मिलाकर कहीं चल पायी है और महिलाओं का वर्तमान सामाजिक स्तर कुछ कम अथवा अधिक परम्परागत है ।''[११] यह स्मरणीय है कि विधान एवम् समाज सुधारकों ने हिन्दू समाज के उच्च वर्ग को प्रभावित किया है परन्तु बहुत ही अपर्याप्त । भारतीय नगरों, कस्बों एवम् ग्रामों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अस्पृश्य एवम् आदिवासियों, पुरातन हिन्दूवादी की वंश परम्परा से विभिन्न देश की पूर्ण जनसंख्या के बाइस प्रतिशत का निर्धारण करनेवाली तथा विशेषकर आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई जनजातियों जिनमें से बहुतों ने एक पुलिसमैन अथवा मोटरकार को भी नहीं देखा, विधान एवम् समाज सुधार मुश्किल से पहुँच पाते हैं । निर्धनता एवम् निरन्तर बच्चों का जन्म ग्रामीण महिला की समस्याएँ है । जब कि वर्तमान कल्याणकारी कार्य उनके अस्तित्व को नोच भर पाते हैं ।

३.२ राजनीतिक संदर्भ :

समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज की राजनीतिक परिस्थिति के नियामक तत्त्व है (क) सरकार (ब) राजनीतिक दल एवम् (क) ग्रामीण जनता का राजनीतिक व्यवहार ।

(क) सरकार : ग्रामीण समाज के पुनर्निर्माण करने हेतु भारत सरकार द्वारा संचालित विविध योजनाओं, कार्यक्रमों, गतिविधियों की सफलता एवम् असफलताओं पर विचार करने से पूर्व अंग्रेजी सरकार से विरासत में प्राप्त एवम् सरकारी कार्यो के आधार पर भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना पर दृष्टिपात करना आवश्यक है । इसके प्रभाव से हम भारत सरकार के प्रयासों एवम् ग्रामीण समाज में अवतरित परिवर्तनों के संदर्भो के साथ न्याय नहीं कर पायेंगे । आंग्ल प्रशासनकाल में साम्राज्यवादी आर्थिक व्यवस्था एवम् ग्रामीण जीवन में राज्य के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप ने ग्रामों की परम्परागत सामाजिक संस्थाओं की शक्ति क्षीण कर दी थी । जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण जनता की आर्थिक आय के आधार कृषि का प्रति एकड़ कम उत्पादन, उद्योग-धन्धों का सामुहिक विनाश, अलाभकर खेतों की संख्या की वृद्धि, जनता के ऋणों एवम् ऋणदाताओं का विकास, ग्रामीण निर्धन जनता एवम् जमींदारों, व्यापारियों, भूस्वामियों एवम् साहूकारों के मध्य खाई का बढ़ना, भूमि पर प्रति एकड़ आश्रित व्यक्तियों एवम् बेरोजगारों, अर्ध बेरोजगारों एवम् भूमिहीन श्रमिकों की संख्या में अभिवृद्धि हुई ।

स्वतंत्र भारत की सरकार ने ग्रामीण, सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण करने के लिए अनेकों साधनों का प्रयोग किया । इन्हें मुख्यत: दो भागों में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

प्रथम राजनीतिक जीवन को प्रभावित करनेवाले साधन, द्वितीय आर्थिक जीवन को प्रभावित करनेवाले साधन । सर्वप्रथम स्वतंत्र भारत सरकार ने ग्रामीण जनता को जाति, लिंग अथवा अन्य किसी प्रकार के भेदभाव के बिना वयस्क मताधिकार प्रदान कर सम्पूर्ण ग्रामीण जनता को राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन में लाकर खड़ा कर दिया । ''इसने ग्रामीण समाज में एक नवीन प्रकार के सामाजिक एवम् सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण किया ।''१२ राजनीतिक चर्चाएँ, सभाएँ, जुलूस एवम् प्रदर्शन अभूतपूर्व घटनाएँ थी । चुनाव की प्रक्रिया ने ग्रामीण जनता के आंतरिक जीवन को विस्तारपूर्वक पहली बार आंदोलित किया एवम् उनके मध्य एक नूतन प्रकार की शारीरिक, सामाजिक एवम् भावात्मक गति उत्पन्न की । इसने प्रगतिवादी एवम् प्रतिक्रियावादी सभी प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक एवम् सांस्कृतिक महत्व की संस्थाओं के विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न की है । इसने

एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया है जिसके अंतर्गत एक नूतन विचारधारा, दृष्टिकोण, भावना, उत्कण्ठा एवम् परियोजना का जन्म एवम् परम्परागत परिस्थिति में परिवर्तन तथा संघर्ष का दमन हो सकता है । विगत सैकंडों वर्षो में ग्रामीण समाज ने कभी इतना कोलाहपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं किया एवम् कभी ऐसी अद्‌भूत घटनाएँ अनुभूत नहीं की थी । चुनाव एवम् सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की अनुमति के कारण व्यवहारिक राजनीति के कर्म क्षेत्र में ग्रामीण जनता का प्रवेश अगणित सम्भावनाओं से परिपूर्ण है तथा ग्रामीण समाज के इतिहास में प्रस्थान का एक यथार्थ नूतन बिन्दु है ।

ग्रामीण समाज के विविध वर्गो पर उपर्युक्त उपायों के प्रभाव का विवेचन करते समय हम देखते हैं कि ग्रामीण समाज की बेरोजगारी की प्रमुख समस्या को एक युक्तिसंगत सीमा तक सरल करने के लिए अथवा ग्रामीण जन संख्या के एक तिहाई श्रमिकों के जीवन की परिस्थितियों को ऊँचा उठाने के लिए कोई उपाय नहीं खोजे गये ।

''भूमि पर आधारित संबंधों में सुधार करने के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने के लिए बनाये गये विधानों की त्रुटियों के कारण आज भी भूमि के विशाल अंश पर भूतपूर्व जमींदारों का प्रभुत्व बना हुआ है ।''[१३] नानावती एवम् अनजारिया के शब्दों में वैधानिक सुधारों के पूर्वाभास में कानून की व्यवस्था को पराजित करने की दृष्टि से विशाल स्तर पर निष्कासन एवम् हस्तांतरण हुए । ग्रामों के विकास के लिए उत्तरदायित्वपूर्ण समझी जानेवाली ग्राम पंचायतें अपने विशाल अधिकार के साथ प्रभावहीन रही । उन्हें जब ग्राम के आर्थिक तथा सामाजिक विकास एवम् नागरिक प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र को समाविष्ट करनेवाले उत्तरदायित्वों एवम् कर्तव्यों की एक विशाल सूची सोपी गई तो वे कुछ अधिक नहीं कर पायी । उनकी अक्षमता का कारण ग्रामीणों में कोई प्रंशसनीय निधि संचित कर पाने, हिसाब रखने एवम् कर एकत्रित करने, अनिच्छा, अयोग्यता एवम् आर्थिक स्त्रोतों का अभाव समझा गया ।

निष्कर्षत: समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण करने के लिए सरकारी स्तर पर अनेकों कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये, जिनके परिणाम स्वरूप

ग्रामीण जनता में जागृति की लहर आयी । परन्तु इस जागृति का यथार्थ लाभ ग्रामीण समाज के धन-संपन्न वर्ग को ही मिल पाया है ।

(ब) राजनीतिक दल : समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में सरकारी प्रशासन तंत्र के साथ ही साथ ग्रामीण जनता की राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले राजनीतिक दल अपने लक्ष्य एवम् उद् यों के अनुरूप सामाजिक संरचना का निर्माण करने के लिए चुनाव में अधिक से अधिक मत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं । ''वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था में ग्रामीण नेताओं से सम्बद्ध राजनीतिक दल सर्वोच्च भूमिका सम्पन्न करते हैं ।''[१४] भारत वर्ष में ऐसा कोई राजनीतिक दल नहीं है जो भूमिहीन कृषकों को, जो हमारे समाज का एक अत्यंत महत्वपूर्ण भाग समझा जा चुका है, हितों को प्रोत्साहन एवम् सुरक्षा प्रदान कर सका हों, जो इस देश के करोडों बेरोजगारों, अर्घबेरोजगारों, कुशल एवम् अकु ाल शिक्षितों एवम् अशिक्षितों के हितों को स्पष्ट वाणी प्रदान करने का माध्यम बनना स्वीकार कर सका हो ।

(क) राजनीतिक व्यवहार : समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में कृषक वर्ग के राजनीतिक व्यवहार का प्रतिमान भूस्वामियों एवम् धनवान कृषकों द्वारा प्रशासित, ग्रामीण समाज के उपखंडों से एकत्रित उर्ध्वरित सिद्धांतहीन राजनीतिक दलों एवम् उन पर आर्थिक रूप से आश्रित निर्धन कृषकों एवम् भूमिहीन श्रमिकों पर आधारित रहता है । ''कृषकों के शोषित वर्गो के मध्य वर्ग एकता कुछ या बिल्कुल नहीं होती।''[१५] ये अपने स्वामियों द्वारा संचालित दलों की स्वामी भक्ति के कारण स्वत: विभक्त रहते हैं । इसप्रकार ग्रामीण समाज में राजनीतिक प्रेरणा स्वार्थी दलों के नेताओं के हाथों में निहित रहती है जो भूमि के स्वामी होते हैं एवम् प्रतिष्ठा तथा शक्ति रखते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज को राजनीतिक दिशा प्रदान करनेवाले वहाँ के स्थानीय राजनीतिक दल होते हैं । ये दल बहुधा जाति, सम्बन्ध एवम् पडौस आदि पर निर्भर करते हैं ।

बहुधा ग्रामीण समाज के राजनीतिक व्यवहार में जाति एक निर्णायक भूमिका सम्पन्न करती है । जिस क्षेत्र में जाति के व्यक्तियों की संख्या अधिक अथवा जिस जाति के हाथ में आर्थिक स्त्रोत सर्वाधिक होते हैं वह जाति ही राजनीतिक सत्ता का संचालन करती है । उसी जाति के व्यक्ति ही चुनाव में अधिक मत प्राप्त कर

स्वामी बनते हैं और पुनः अपनी ही जाति को अपेक्षाकृत अधिक लाभ पहुँचाते हैं । इस प्रकार समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में जाति एक राजनीतिक इकाई बन गई है ।

३.३ आर्थिक संदर्भ :

''भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था के आर्थिक परिवेश के नियामक तत्त्व है – ग्रामीण जनता के अर्थोत्पादन के साधन, साधनों पर स्वामित्व रखनेवाले विविध वर्ग, वर्गो के पारस्परिक आर्थिक सम्बन्ध, सभी वर्गो का आर्थिक जीवन स्तर एवम् आर्थिक समस्याएँ ।''[१६] भारतीय ग्रामीण जनता की आय का प्रमुख स्त्रोत है कृषि, जिसका आधार है भूमि । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भूमि का सम्पूर्ण स्वामित्व एवम् उससे कर तथा किराया वसूल करने के समग्र अधिकार आंग्ल प्रशासन एवम् उसके द्वारा मनोनित जमींदारों के हाथों में निहित थे । आंग्ल प्र ाासन द्वारा वंश परम्परा के आधार पर मनोनित जमींदार, रियासतदार एवम् जागीरदार सरकारी अधिकारियों एवम् स्वयं की सुख- सुविधाओं की पूर्ति हेतु ग्रामीण कृषकों को दी गई भूमि के बदलें में उसकी उपज का अधिकांश अर्जित कर लेते थे । परन्तु आंग्ल सरकार ने अधिकारियों एवम् भारतीय जमींदारों ने पाश्चात् जगत् की भाँति कृषि को व्यवसायिक एवम् औधोगिक आधार प्रदान करने का कभी भी प्रयास नहीं किया । परिणाम स्वरूप सरकारी व्यवस्था से सम्बद्ध एवम् भूमि का स्वामित्व रखनेवाला वर्ग तो सम्पन्न, सुविधापूर्ण एवम् ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करता रहा और खेतों में जोतने, बोने एवम् दूसरे प्रकार का शारीरिक श्रमपूर्ण कार्य करनेवाला वर्ग निर्धनतापूर्ण अभावपूर्ण एवम् अकल्याणकारी परिस्थितियों में जीवन-यापन करता रहा ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत राष्ट्रीय सरकार ने प्रजातांत्रिक समाजवादी व्यवस्था के आधार पर ग्रामीण जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया । वस्तुतः यह निर्योजन विकास अधिकाधिक सम्भव गति से आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करने, आर्थिक एवम् सामाजिक जीवन की संस्थाओं का पुनर्निर्माण करने एवम् राष्ट्रीय विकास के कार्यभार को वहन करने हेतु जनता की शक्तियों को संयोजित करने का साधन था । इसका मूलभूत

लक्ष्य जनता के कार्य करने की परिस्थितियों, सुधारोन्मुख जीवन स्तरों एवम् लाभप्रद व्यवसाय के विकासोन्मुख अवसरों के लिए स्वस्थ व्यवस्था प्रदान करना रहा है ।

राष्ट्रीय सरकार ने ग्रामीण कृषकों के जीवन-स्तर को उन्नत करने हेतु भूमि के स्वामित्व का पुनः विभाजन, वितरण एवम् उसकी दशा में सुधार करने के लिए अनेकों कार्यक्रमों का निर्धारण किया । ''जमींदार प्रथा का उन्मूलन इनमें सब से प्रथम एवम् महत्वपूर्ण कार्यक्रम था । इसका लक्ष्य आंग्ल प्रशासनकाल के जमींदारों के विशेषाधिकारों को सीमित कर उनकी भूमि को (जिसे वे स्वयं नहीं जोतते) जोतनेवाले कृषकों को स्वामित्व प्रदान कर अनेकों ग्रामवासियों को उनके आश्रय से स्वतंत्रता प्रदान करना था ।''[१७] परन्तु इन जमींदारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति से दो वर्ष पूर्व वैयक्तिक खेती के लिए अधिक से अधिक भूमि रखने एवम् राज्य की संपदा न बनने देने हेतु 'सीर' एवम् 'खुदकात' के अंतर्गत भूमि बढ़ाने के साधन अपनाये । फलतः कृषकों का अपेक्षित हित सम्पादित नहीं हो सका और बहुत से कृषक जो पहले जमींदारों के खेत लगान पर जोतते थे, भूमिहीन बनकर रह गये । तथापि इस सुधार से जो कृषक भूस्वामी बने उन्हें अवश्य लाभ हुआ । क्योंकि उनके द्वारा सरकार को दिये जानेवाले करों की उपेक्षा जमींदारों के लिए जानेवाले किराये सदैव ही अधिक थे ।

सामाजिक भारतीय ग्रामीण समाज के आर्थिक जगत् में प्रमुख रूप में तीन वर्ग है । सर्वप्रथम सर्वाधिक धन एवम् भूमि के स्वामी बड़े कृषक, द्वितीय मध्यम श्रेणी के कृषक एवम् तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत साझे पर खेती करनेवाले एवम् खेती में श्रम करनेवाले श्रमिक आते हैं । विगत ढाई दशक में इन वर्गो में क्रमशः सर्वोपरि वर्ग ने सर्वाधिक एवम् सबसे निम्नवर्ग ने सबसे कम प्रगति की ।

उपर्युक्त समग्र तथ्यों पर विचार करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज का साधन सम्पन्न एवम् अच्छी विशाल भूमि का स्वामित्व रखनेवाला अल्प संख्यक एवम् आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है एवम् भूमिहीन, निम्न सुविधा प्राप्त जातियों के व्यक्ति एवम् समाप्तप्रायः कृषकों का बहुसंख्यक वर्ग निर्धनता से ग्रसित है । निर्धनता ग्रामीण जनता के केवल स्वास्थ्य एवम् शक्ति को ही बुरी तरह से प्रभावित नहीं करती है बल्कि उनकी पिछड़ी हुई सामाजिक एवम् सांस्कृतिक परिस्थितियों की भी व्याख्या करती है । ग्रामीण जनता

यदि अज्ञानी, अंधविश्वासी एवम् असंस्कृत है तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अब वह अथाह रूप से निर्धन है एवम् शिक्षा के लिए व्यय नहीं कर सकते हैं । ''इसीलिए वे शैक्षणिक एवम् सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त प्राकृतिक एवम् सामाजिक जगत् के वैज्ञानिक ज्ञान से भी उपेक्षित रह जाते हैं ।''१८

''आज अर्थ की प्राप्ति, आर्थिक योजनाएँ एवम् अर्थ चेतना सामाजिक कल्याण के लिए नहीं वरन् स्वार्थपूर्ति के लिए होने लगी ।''१९

३.४ धार्मिक संदर्भ :

भारतीय ग्रामीण समाज में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है । ''वैज्ञानिक आविश्कारों एवम् साधनों के सामीप्य के अभाव एवम् प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहने के कारण धर्म उनके जीवन एवम् ज्ञान की संचालन शक्ति बन जाता है ।''२० बहुदेववाद, भाग्यवाद, आत्मवाद, भूत-प्रेत एवम् जादू-टोना आदि ग्रामीण जीवन को बहुत बड़ी सीमा तक नियंत्रित करते हैं । ग्रामीणों का धर्म उनके पारिवारिक, जातीय, सामान्य सामाजिक आर्थिक जीवन एवम् मनोरंजन के साधनों, कलाओं, लोकगीतों एवम् नैतिक मानदण्डों के कुछ न कुछ अंशों में प्रभावित करता है ।

पूँजीवादी एवम् सामन्तवादी व्यवस्था से पूर्व ग्रामीण समाज में धार्मिक जनता एवम् पुजारियों का प्रभुत्व अपेक्षाकृत अधिक था । उस समय के ग्रामीण मानव का निरपेक्ष वैज्ञानिक ज्ञान-ज्योतिषशास्त्र, गणित, समाजशास्त्र एवम् भूगर्भशास्त्र सभी धर्म से प्रभावित था । ग्रामीण जनता का नेतृत्व धार्मिक संस्थाओं एवम् विचारधाराओं से परिचालित होता था । आंग्ल प्रशासन के आगमन के उपरांत भारतीय ग्रामीण जीवन के सामाजिक, राजनीतिक एवम् आर्थिक जीवन में परिवर्तन आया है । पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था एवम् राज्य केन्द्रित प्रशासन के प्रसार के परिणाम स्वरूप युगों से चली आ रही ग्राम पंचायतों, सजानीयता एवम् धार्मिक पूजारियों की महत्ता का एवम् प्रजतांत्रिक दर्शन का प्रसार हुआ । परन्तु यह ज्ञातव्य है कि आज भी धर्म ग्रामीण जनता के मस्तिष्क पर अपना शक्तिशाली प्रभुत्व रखता है एवम् ग्रामीणों के निरपेक्ष क्षेत्रों में उनके व्यवहार को निर्धारित करता है । समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज धार्मिक कट्टरपन एवम् धर्म निरपेक्ष प्रजातांत्रिक शक्तियों के मध्य संघर्ष का अखाड़ा बना हुआ है ।

ग्रामीण समाज में धर्म के प्रायः तीन स्वरूप मिलते हैं । (१) ग्रामीणों के संसार संबंधी धार्मिक दृष्टिकोण । (२) ग्रामीणों की धर्म संबंधी कार्य प्रणाली । (३) विविध धार्मिक संस्थाएँ एवम् सम्प्रदाय । ''भारतीय ग्रामीण समाज में संसार के दर्शन करने का धार्मिक दृष्टिकोण पाया जाता है ।''[२१] जिसे हम उनकी जादू-टोने, मरणोपरांत पूर्वजों की पूजा, सर्वात्मवाद एवम् भूत-प्रेत आदि संबंधी परिकल्पनाओं में देखते हैं । ग्रामीणों की धार्मिक कार्य प्रणाली का आभास प्रार्थनाओं, बलिदानों एवम् संस्कारों में मिलता है । भारतीय ग्रामीण समाज में हिन्दू धर्म का प्राधान्य है । हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदाय, संगठन एवम् संस्थाएँ, मन्दिरों, मठों एवम् आश्रमों की व्यवस्था करते हैं, जिनमें प्रचारक तथा पुजारी स्थाई रूप से रहकर अपने धार्मिक विचारों का प्रचार करते हैं । इन पुजारियों एवम् प्रचारकों के अतिरिक्त हमारे ग्रामीण समाज में साधु एवम् संत मिलते हैं । जो लोकभाषा में धर्म का प्रचार करते हुए भ्रमण करते हैं, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन पुजारियों एवम् प्रचारकों के समूह के प्रभाव का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है एवम् समाज धर्म निरपेक्ष समाज की ओर उन्मुख है ।

३.५ सांस्कृतिक संदर्भ :

विश्व की इत्तर जनजातियों की भाँति सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय जनजातीय समाज में मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवम् नृत्यकला तथा मौखिक साहित्य का प्रधान्य पाया जाता है । ''भारतीय जनजातीय समाज के लोक-मूल्य एवम् लोक गीतों की समृद्धता भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवम् वैभव प्रदान कर सकती है ।''[२२] सम्भवतः इसीलिए गणतंत्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा आयोजिक समारोह में जनजातीय समाज की प्रत्येक जनजाति में मौखिक साहित्य की प्रत्येक विधा का अत्यंत विकसित, जीवनाभिमुख एवम् परस्पर विरोधपूर्ण स्वरूप मिलता है । उनकी पौराणिक गाथाएँ एवम् लोककथाएँ उनके ज्ञान, अनुभव, अनुराग एवम् विराग की संवाहक है । इसके अतिरिक्त इन जनजातियों में लोरियों, अर्थहीन तुकांत कविताएँ, भक्तिपूर्ण गीत, प्रेमगीत, व्यंग्यात्मक पद्य एवम् महाकाव्यात्मक लोकगान प्रचलित है । इनमें सामयिक गीत, वैवाहिक गीत, नृत्य गीत, शिकार खेलने के गीत, जादू-मंत्र एवम् ावयात्रा संबंधी राग पाये जाते हैं । लोकोक्तियों, कहावतें एवम् पहलियों प्रत्येक जनजातीय भाषा का अंग है ।

जनजातीय समाज की मूर्ति-कला के अंतर्गत लकड़ी-पत्थर से मूर्तियाँ बनाना सम्मिलित किया जा सकता है । इन मूर्तियों पर ये अपने आराध्य देवताओं, पशु-पक्षियों, जानवरों, शिकार के दृश्यों एवम् प्रेम-लीलाओं को चित्रित करते हैं । चित्रकला के अंतर्गत जनजातीय समाज के मकानों की दीवारों, दरवाजों एवम् कक्षों पर विविध परम्परागत शैलियों द्वारा आकर्षक चित्रों का निर्माण करना आ सकता है। ''इसके अतिरिक्त विवाहादि अवसरों पर केशसज्जा, वस्त्राभूषण सज्जा एवम् शरीर सज्जा आदि इनके कलाजगत् के नियामक तत्त्व है ।''[२३]

भारतीय जनजातियाँ विभिन्न भाषाएँ बोलती है जो केवल विजन-जातियों से ही भिन्न नहीं है बल्कि उनमें परस्पर एक दूसरे से भी वैभिन्य है । ग्रियर्सन एवम् चटर्जी के भाषा संबंधी अध्ययनों से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि भारतीय जन-जातियाँ भारतीय प्राथमिक भाषा संबंधी चार प्रदेशों में से कम से कम तीन द्रविडियन, आस्ट्रिक एवम् सिनोतिब्बतन में विभक्त पायी जाती है ।

अंतत: सांस्कृतिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए डॉ. रामदरश मिश्र लिखते है कि - ''आँचलिक उपन्यासकार जनपद-विशेष के जीवन के बीच जिया होता है या कम से कम समीपी दृष्टा होता है ।''[२४]

उपर्युक्त आँचलिकता के नियामक तत्त्वों की विषद चर्चा के बाद अब नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना इस प्रकार है ।

नागार्जुन ने अपने साहित्यिक जीवन के दौरान कुल ११ उपन्यासों की रचना की है । उनमें से कुल पाँच उपन्यासों की पृष्ठभूमि उन्होंने आँचलिक रखी है । जैसे **रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौंध, बाबा बटेसरनाथ** और **वरुण के बेटे** । इन पाँचों उपन्यासों में आँचलिक परिवेश की बखूबी अभिव्यक्ति हुई है ।

उपर्युक्त पाँचों आँचलिक उपन्यासों की आँचलिकता के संदर्भ में कथ्यगत विवेचना करना इस अध्याय का लक्ष्य रहा है । इनमें सबसे पहले 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास की कथ्यगत विवेचना आँचलिकता के प्रमुख नियामक तत्त्वों के आधार पर इस प्रकार से है ।

३.६ रतिनाथ की चाची :

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक विषयक संक्षेप में कहे तो उपन्यास में एक विधवा स्त्री की मनोदशा और उसके सामाजिक स्थान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । रतिनाथ की चाची (गौरी) जो अपने पति की मृत्यु के बाद अपने देवर से गर्भवती बनती है और इस घटना के बाद उस पर अपने समाज के द्वारा ढाये गये असह्य सीतम, दु:ख आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत उपन्यास में की गई है । प्रमुख पुरुष पात्र के रूप में उमानाथ, जयनाथ, वैधनाथ, रतिनाथ, चुम्भन झा, जयकिशोर आदि का चित्रण है, तो स्त्री पात्रों के रूप में दम्मो फूफी, प्रतिभामा, चाची (गौरी) आदि का सजीव चित्रण किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से नागार्जुन का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गँवई समाज अँचल में विधवाओं की स्थिति का मार्मिक चित्रण करना साथ ही मानव-मन के सूक्ष्म आवेगो-संवेदनों की अभिव्यक्ति करना । अत: सब से पहले सामाजिक परिवेश को लेकर प्रस्तुत उपन्यास की विवेचना इस प्रकार से है ।

सामाजिक दृष्टि से विवेचन :

''दिल घड़क रहा था कि कहीं उसीके बाप का नाम चाची के मुँह से निकल आवे ! चार मास से रति का बाप - जयनाथ लापता है ।''[२५] प्रस्तुत गद्यांश में नागार्जुन ने अवैध यानी समाज जिसका स्वीकार नहीं करता उस बात की अभिव्यक्ति की है । रतिनाथ की चाची मोहल्ले की स्त्रियों के साथ बातचीत कर रही है उस समय रतिनाथ को इस बात का डर है कि अपने पिता जो घर से निकल गये हैं वह बात चाची के मुँह से निकल न जाये । इस बात का उसे डर है । दूसरी बात देखे तो नागार्जुनजी ने बाल मनोविज्ञान का भी परिचय करवाया है ।

''दूसरी-तीसरी शादी क्या कभी किसी विधवा या सधवा ब्राह्मणी ने की है।''[२६] यहाँ पर ब्राह्मण समाज के जो रीति-रिवाज है उस पर प्रकाश डाला गया है। सभी स्त्रियाँ अपने समाज के जो रीति-रिवाज है यानी ब्राह्मण की स्त्री एक ही बार शादी कर सकती है, दूसरी बार शादी नहीं कर सकती । इस बात बात को समझाते हुए सामाजिक रीति-रिवाजों की अभिव्यक्ति की गई है ।

''दमयन्ती के बालवैधव्य की रंगीलियों का उसे सारा हाल मालूम था ।''२७ यहाँ पर दमयन्ती (चाची) के बालवैधव्य की बात की गई है । सभी मोहल्ले की स्त्रियों के बीच दमयन्ती के चरित्र को लेकर बात होती है । समाज जिस संबंध को स्वीकार नहीं करता, उस विषय को लेकर सभी स्त्रियाँ बातें कर रही है और इसके माध्यम से दमयन्ती के चरित्र का वास्तविक रूप भी प्रकट हो जाता है ।

''मैं और कुछ नहीं जानती । वह भादों का महीना था । अमावस की रात थी । एक घनी और अँधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ आयी । उसके बाद क्या हुआ इस बात का होश अपने को नहीं रहा ।

फूफी ने इस पर कुछ नहीं कहा । परन्तु रामपुरवाली चाची ने आँगन से निकलते समय हल्की आवाज में कहा था- होश कैसे होता ! मौज मारने की घड़ियों में किसीको भला होश रहेगा ? बला से, अब पेट कोहड़ा हो गया है तो होने दो ।''२८

उपर्युक्त गद्यांश में अवैध संबंध को लेकर सभी मोहल्लेवाली स्त्रियाँ बातें कर रही है । चाची सभी स्त्रियों के सामने कह रही है कि भादों के महीने में उसके साथ क्या घटना घटी थी । अपने आपको निर्दोश साबित करने की कोशिश कर रही हो ऐसा लगता है । लेकिन उस समय सभी स्त्रियाँ एक-दूसरे की ओर देखकर हँसी-मजाक कर देती है । यहाँ तक कि व्यंग्य की वाणी में चाची को फटकारा भी जाता है ।

''रतिनाथ भी जाकर संदूक पर सो रहा । विपत्ति के अथाह समुद्र में गोते खा रही इस चाची के लिए बेचारे ने उस रात कितने आँसू बहाए, यह रहस्य भगवान ही जानते हैं । दिन का भाँत हाँडी में था, पत्थर के बड़े कटोरे में दाल थी। एक दूसरी पथरौही में जरा-सा बैंगन का चौखा रखा हुआ था । पर किसीने हाथ तक नहीं लगाया । रति भूखा जरूर था, लेकिन उसकी भूख-प्यास हवा हो गई । जब कि टोल-पड़ोस की महिलाओं का दल मुस्कुराता और मरकाता हुआ शाम को रति के आँगन से चला गया । चाची बूत बनी वहीं खड़ी रही, उसकी आँखों से चार बड़े-बड़े बूँद ढूलक पड़े थे । समाज व्यक्ति के प्रति नि ठुर, इतना नृशंस हो सकता है, उस अबोध बालक को अपनी छोटी-सी आयु में आज यह सत्य पहलीबार भासित हुआ था ।''२९ यहाँ पर साहित्यकार नागार्जुनजी एक बालक यानी अपने

परिवार में अपनी चाची पर तरह-तरह के दु:ख आ जाते है उस बात को लेकर रतिनाथ चिंतित बनते हैं और उनको भूख लगती है वो भी हवा में पीघल जाती है । वह अपनी चाची को लेकर जो समाज में तरह-तरह की बातें हो रही है उसे सुनकर चिंतित होता है । दूसरी तरफ देखे तो समाज में इस ग्यारह साल के बच्चे की किसीने परवाह भी नहीं की । चाची को रतिनाथ की चिन्ता है किन्तु वह भी अपने दु:ख में उसका दु:ख भूल जाती है । यहाँ पर नागार्जुनजी ने समाज के रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

''लहेरिया सरय के सरकारी अस्पताल की डाक्टरनी गर्भ गिराने में बहुत कुशल है... मगर वहाँ तक मैं पहुँचुगी कैसे ?''[३०] यहाँ पर रतिनाथ की चाची को यह मालूम है कि उसकी गोद में जो बच्चा पल रहा है वह एक अनैतिक संबंध से हुआ बच्चा है । उसको यह भी मालूम है कि सरकारी अस्पताल की एक डाक्टरनी गर्भ गिराने में बहुत कुशल है । लेकिन चाची उसके पास अकेली नहीं जा सकती । उसको समाज का डर भी है ।

''अब इस आँगन में न धोबीन आएगी, न नाईन, न डोमीन, न चमाईन । ब्राह्मणी की तो भला बात ही कौन कहे ।''[३१] इन वाक्यों में नागार्जुनजी ने समाज के उच्च वर्ग की बात की है । यहाँ पर समाज के विविध वर्गो के अपने- अपने रीति-रिवाजों, नियमों की बात की गई है । समाज का कोई भी व्यक्ति इन नियमों के दायरे से बाहर नहीं जा सकता, अगर वह कोशिश भी करे या इस बन्धन का उल्लंघन करने का प्रयास करे तो समाज उसके साथ सारे संबंधों पर पूर्णविराम लगा देता है । उसे धिक्कारने लगता है । यहाँ पर भी इसी समाज के बंधन व नियमों का परिचय मिलता है । रतिनाथ की चाची ने समाज के बंधनों, नीति-नियमों का उल्लंघन किया है । इसलिए उसके घर समाज के किसी भी वर्ग का व्यक्ति जाने के लिए तैयार नहीं है । ऐसी स्थिति में ब्राह्मणी भला उसके घर कैसे जाए !

''सुदूर दक्षिण (भागलपुर) में लड़की का बेचा जाना....उमानाथ की उम्र पन्द्रह साल की थी । वह जिद्दी, गुस्सैल और पढ़ने में मन्द था । प्रतिभामा सत्रह साल की थी, उसे ससुराल गये तीन-चार साल होने को आ रहे थे । कुलिनता की दृष्टि से बहुत ही नीच, मुर्ख और चालीस साल के एक अधेड़ ब्राह्मण ने सात सौ नकद गिनकर उससे शादी की । वह छ: महीने के बाद ही गौना कराके ले गया और तब से प्रतिभामा फिर शुभंकरपुर की इस धरती पर पैर नहीं रख पाई ।''[३२]

उपर्युक्त वाक्यों में इस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण किया गया है कि पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं । ऐसे समाज में लड़की चौदह-पंद्रह साल की होते ही उसकी शादी कर दी जाती है और शादी भी ऐसे पुरुष के साथ जिसकी उम्र साठ साल के करीब है । बालविवाह और अनमेल विवाह का जीता-जागता रूप यहाँ पर दृष्टिगत होता है । सामाजिकता की दृष्टि से देखे तो जिसप्रकार प्रेमचंद ने अपने निर्मला उपन्यास में जिस स्थिति या समाज का चित्रण किया है वैसा ही रूप यहाँ भी चित्रित हुआ है । दूसरी बात यह भी है कि जब लड़की एकबार शादी हो जाने के बाद अपने ससुराल जाती है, दुबारा वापस अपने घर आने का विचार भी नहीं कर सकती ! अपनी ससुराल में कैसी भी परिस्थिति में वह अपनी जिन्दगी गुजार देती है । वाह रे ! समाज यह भी कैसा रिवाज और कैसे संस्कार !

''आहट बिलकुल करीब आ गई । चाची ने अपने को और कड़ा कर लिया। कोई भी हो, धबड़ाना नहीं चाहिए । बदनामी तो फेल ही गई । अब और इससे अधिक क्या होगा ? दारोगा फाँसी तो देगा नहीं, हाँ पहरा जरूर बैठा दे सकता है । सरकार के कानून में गर्भ गिराना नाजायज है, तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादूर ने यह कानून बनवाया होगा कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती ।''[३३] प्रस्तुत गद्यांश में नागार्जुनजी ने अंग्रेज शासन पर भी करारा व्यंग्य कसा है । तत्कालीन समाज के रीति-रिवाजों में असांमजस्यता को एक गँवई व्यक्ति भी समझ सकता है और उस पर अपनी राय भी प्रकट कर सकता है । वाकई यहाँ पर चाची के शब्दों में एक क्रान्ति की लहर भी दौड़ाई गई है । जिसका सम्पूर्ण श्रेय नागार्जुनजी को जाता हैं । गर्भपात करवाना समाज के और कानून के नियम में भी अपराध माना गया है । फिर भी अगर कोई व्यक्ति गर्भपात या भ्रूणहत्या करवाता है तो उसे दण्ड मिलता है ।

''स्त्रियाँ अपने दामाद से हल्का-सा परदा करती है और जयनाथ ठहरे यहाँ...।''[३४] यहाँ पर हम देख सकते हैं बवह समाज में दामाद अपने ससुराल जाते हैं तो ससुराल की सभी स्त्रियाँ दामाद से परदा करती है । यहाँ तक कि उसकी सास भी उससे परदा करती है ।

''बिना किसी संकोच के जयनाथ ने ताराबाबा को उमानाथ की माँ के सम्बन्ध में आज सब कुछ बता दिया । सुनकर बाबा की आँखे चमकी । वे बोल उठे नाहक ही उस बेचारी को तुम तरकुलवा में छोड़ आये हो । मुझसे क्यों नहीं कहा ? सब ठीक हो जाता । खैर, फिर भी मैं एक यंत्र बनाकर दूँगा, भिजवा देना।''[३५] यहाँ पर उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में अंधश्रद्धा की बात कही है । आम तौर पर देखा जाये तो अंधश्रद्धा मानवी को किसी न किसी प्रकार के वहम में डालती है और जो बात दवाई से होती हो, वह दुवा से नहीं होती ।

''माफ करना, बड़ी जातवालों की तुम्हारी यह बिराबरी बड़ी मलिच्छ, बड़ी निष्ठुर होती है । मलिकाईन ! हमारी भी बहू-बेटियाँ राँड हो जाती है, पर हमारी बिरादरी में किसीके पेट से आठ-आठ, नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है । ओह कैसा कलेजा है तुम लोगों का ! मइया री मइया !''[३६] यहाँ पर नागार्जुन रतिनाथ की चाची उपन्यास में एक सामाजिक रीत-रिवाज की बात दो समाजों को साथ में लेकर करते हैं । अगर उच्च समाज के लोग इस प्रकार के कार्य करते हैं तो समाज के अन्य लोग उन्हें माफ कर देते हैं, अगर यही पाप अगर छोटी जाति का कोई व्यक्ति कर बैठे तो उसे दण्ड मिलता है, समाज के धिक्कार और तिरस्कार का पात्र बनना पड़ता है । समाज के इसी भेदभाव को उजागर करने का प्रयास नागार्जुन ने किया है ।

''रिश्ते की भाभी होने के कारण वह जयनाथ के सामने आती थी ।''[३७] चाची (गौरी) जयनाथ के भाई की पत्नी थी । उस समाज में घर की स्त्रियों के लिए बनाये गये कानून के अंतर्गत वे किसी अन्य बाहरी पुरुष के सामने नहीं आ सकती थी । लेकिन वे केवल उनके देवर के सामने खुल्ले मुँह आ सकती थी । अतः चाची जयनाथ के सामने आती थी ।

''जनेऊ का मंत्र वह जानता था और कहते संकोच होता है, गायत्री भी उसे आती थी । संकोच इसलिए कि जिस गायत्री के लिए ब्राह्मण बहुकों का उपनयन संस्कार होता है, जो सिर्फ द्विजों की चीज है, उस महान प्रणव को एक शूद्र जान जाये, यह असह्य हो जाने कैसे उसने सीख ली थी । जयनाथ से इस बात की किसीने शिकायत की, वह फुफकार उठे - साले की चमड़ी उधेड़ लूँगा । शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे ।''[३८]

उक्त गद्यांश में नागार्जुनजी ने ब्राह्मण समाज में जो उपनयन संस्कार होता है उसकी बात यहाँ पर की गई है । यहाँ पर शूद्र जाति के कुल्ली राउत ब्राह्मणों के साथ रहकर उस समाज के सभी नीति-नियम जानते थे । एक बार जयनाथ के साथ यह लड़का सभी बातें करते थे उस समय जयनाथ को एहसास हुआ कि उनको संस्कृत के श्लोक, गायत्रीमंत्र सभी आते हैं, इस बात का जयनाथ को पता चला और उसे धमकी देने लगा और कहने लगा कि आप एक शूद्र है और शूद्र की भाँति रहना । यहाँ पर एक उच्च जातिवालों के द्वारा निम्न जातिवालों का हो रहा शोषण चित्रित हुआ है ।

''अगर यह भी ब्राह्मण के घर पैदा हुआ होता तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे-पुराने कपड़े न होतें । हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे पलते हैं । उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता । क्या मर्द क्या औरत इन लोगों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है।''[३९] इस गद्यांश में समाज में पल रहे ऊँच-नीच के बारे में बताया गया है । निम्न जाति के लोग के बच्चों को एक वक्त का खाना भी नहीं मिलता, ऐसे लोग अपने बच्चों को पढ़ाने की बात कैसे सोच सकते हैं ! अंग ढँकने के लिए वस्त्र नहीं, ऐसी स्थिति में नया वस्त्र लेने की कैसे सोच सकते हैं ! जातिभेद का दूषण समाज को चारो ओर से निगल रहा है ।

''जाति-बिरादरी का दण्ड ही इस प्रकार के अपराधों को फिर से न दुहराने की दवा का काम करता है ।''[४०] यहाँ पर सामाजिक डर के कारण व्यक्ति पाप व अत्याचार करने से धबराता है । सुदूर अँचलों में जहाँ न्याय के लिए कोई पुलिस स्टेशन या कोर्ट नहीं होती वहाँ गाँव के अपने रीति-रिवाज और कानून होते है जो व्यक्ति को पाप के बदले सजा सुनाता है । अगर कोई व्यक्ति घोर अपराध करता है तो उसकी जाति उसे अपने समाज से बेदखल कर देती है और अपने समाज से बेदखल हुआ व्यक्ति किसी भी अन्य समाज में प्रवेश नहीं कर पाता । अत: पाप करने से पूर्व हर व्यक्ति एक बार सोचेगा जरूर अब वह पाप की सजा जाति-बिरादरी से बेदखल होकर भी गुजारनी पड़ सकती है । अत: यह डर अपराधों को फिर से न दुहराने का काम अवश्य करता है ।

''पुरोहित की आठ साल की एक लड़की थी । चार सौ पर पिछले साल ही जयनाथ सौदा पटा चुके थे । उन्होंने चाची के सामने एक दिन यह चर्चा छेड़ दी - रति का ब्याह बडहडवा में कराने का निश्चय कर चुका हूँ । कन्या क्या है साक्षात् गंधर्विणी है । आठ वर्ष की लड़की यों भी 'गौरी' कहलाती है । चार सौ रुपये मिलेंगे । पढ़ने का खर्च देगा । जब चाहोगी गौना कराकर बहू ला देंगे ।''[४१] यहाँ पर नागार्जुनजी ने उस समाज में फेले बालविवाह की कुप्रथा पर प्रकाश डाला है । प्रेमचंद ने जिस प्रकार अपने उपन्यासों में बालविवाह का चित्रण कर एक संवेदन को जगाया था, उसी प्रकार नागार्जुनजी भी बालविवाह के विरोधी साहित्यकार है ।

''वह विधवा होने के कारण चाची के लिए मछली-माँस अखाद्य था और इसीलिए जयनाथ और रतिनाथ ही थे कि पानी-फल (मछली) का भोग लगाते, हाँ, चाची यत्नपूर्वक मछलियाँ तलतीं अव य कि रतिनाथ और जयनाथ मन से खाएँगे।''[४२] नागार्जुन बताते हैं कि विधवा होने पर एक स्त्री की दशा कितनी हद तक दयनीय हो सकती है ! वह अपना मनपसंद भोजन तक नहीं खा सकती थी । इस बात से पता चलता है कि उस समाज में विधवाओं की स्थिति कितनी हद तक दयनीय होगी । लेकिन फिर भी एसी स्त्रियाँ अपने परिवारवालों के लिए उनका मनपसंद खाना बनाने के लिए सदा प्रवृत्त रहती है । चाची द्वारा रति और जयनाथ के लिए मछली बनाना इसी बात को व्यक्त करता है ।

''वह बाल विधवा बड़ी हँसोड तबीयत की थी और जयनाथ के लिए जान देती थी । कहने के लिए एक-दूसरे के लिए भाई-बहन थे, परन्तु उनका आपस के संपर्क का क्षण दो संतप्त प्राणियों के चिर वांछित मिलन का मधुपर्व ही था ।''[४३] इस गद्यांश में नागार्जुन ने अनैतिक संबंध के बारे में बताया है । समाज के सामने भाई-बहन का संबंध रखकर पीछे से इस प्रकार की अनैतिक हरकतें समाज को खोखला कर रही है । यहाँ पर इस घटना के द्वारा लेखक ने मानवीय संबंधों की गरिमा पर प्रश्नार्थ चिह्न लगा दिया है ।

समग्रत: नागार्जुन रचित प्रस्तुत उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में अँचलीय सामाजिक परिवेश का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है । उस समाज में फेले विविध दूषणों जैसे कि बाल-बेमेल-विधवा विवाह, ऊँच-नीच, जातिप्रथा, अँध विश्वासों,

रीति-रिवाजों, मान्यताओं आदि का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है। जिससे एक विशिष्ट प्रकार के आँचलिक वातावरण की सृष्टि होती है और उपन्यास को सफल बनाती है । डॉ. आनंदमोहन उपाध्याय के शब्दों में कहे तो - ''सामाजिक वातावरण कथानक को उभारता है और प्राकृतिक वातावरण उसको सजीवता प्रदान करता है ।''[४४]

राजनीतिक दृष्टि से विवेचन :

राजनीति का मनुष्य जीवन के साथ अनादिकाल से संबंध रहा है । दूर-सुदूर गँवई अँचल में भी राजनीति अपना अलग विशिष्ट स्थान रखती है । हाँ, पहले की अपेक्षा इसमें परिवर्तन भी जरूर आया है । मानवजीवन व्यवहार पद्धतियों के विकास के साथ राजनीति ने भी अपना स्वरूप परिवर्तन जरूर किया है । आज राजनीतिरूपी विशाल साँप ने अपना फन इतना विशद रूप से फेला रखा है कि इसकी चपेट में आये बिना कोई भी नहीं बच सकता । ''राजनीति का समाज के निर्माण एवम् विकास में तथा व्यक्ति की उन्नति एवम् अवनति में विशिष्ट योगदान रहता है ।''[४५] कुछ ऐसी ही राजनीति का नागार्जुनजी ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में बखूबी चित्रण किया है । जिसे अब देखे ।

''आहट बिलकुल करीब आ गई । चाची ने अपने को और कड़ा कर लिया, कोई भी हो धबड़ाना नहीं चाहिए । बदनामी तो फेल ही गई । अब और इससे अधिक क्या होगा दारोगा फाँसी तो देगा नहीं हाँ पहरा जरूर बैठा दे सकता है । सरकार ने कानून में गर्भ गिराना नाजायज है तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादूर ने यह कानून बनाया होगा, कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती ।''[४६] यहाँ पर नागार्जुनजी यह बताना चाहते है कि समाज में जो व्यक्ति अपराध करता है, उसे दण्ड तो अवश्य ही मिलता है । चाची (गौरी) ने जो भूल की थी उनकी सजा तो मिलेगी लेकिन वह सरकार की दोहरी नीति पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि अगर सरकार किसी पाप के लिए कानून बनाती है तो उस पाप को ही मिटाने का प्रयास न करके उस पापी को ही क्युं सजा देती है । इस प्रकार यहाँ राजनीति का एक विशिष्ट रूप में चित्रण हुआ है ।

''मिनिस्टरी कुबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ़ गया । चुनाव के समय उन्होंने जनता से बड़े-बड़े वादे किए थे ।

जमींदार चुनाव में हारकर अपने अँधकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कछुए की भाँति दुबके पड़े थे । अन्दर ही अन्दर कुछ सोचकर अपने पैतरे बदल डालने का उन्होंने निश्चय किया । परम्परा की दुहाई देकर कांग्रेसी मन्त्रियों को उन्होंने धमकी दी - आपका, खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तरबतर कर देंगे उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजिएगा ।''[४७] राजनीति के खोखलेपन का कच्चाचिट्ठा यहाँ पर खोला गया है । चुनाव के समय सभी पार्टियाँ अलग-अलग वादे करती है, भोलीभाली जनता को गुमराह करती है और जब अपनी पार्टी जीत जाती है तथा सरकार बन जाती है, बाद में प्रजा पर अपना अधिकार जमाते हैं । जमींदारों के तरह-तरह के जुल्म और जोहुकमी को भी यहाँ पर चित्रित किया गया है । जमींदारों ने जहाँ अपना पसीना बहाकर जमीनें प्राप्त की है वहाँ ये भ्रष्ट राजनीतिज्ञ अपना स्वार्थ साधने हेतु उनकी जमीन भी हड़प लेना चाहते है, ऐसा उन जमींदारों का मानना है ।

''किसान संगठित होने लगे । उनका नारा था - 'कमानेवाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो' । संगठन की यह हवा राजाबहादुर की भी जमींदारी में पहुँची । उनकी सूदखोरी और जमींदारशाही से सारा इलाका तंग आ गया था ।''[४८] यहाँ पर सभी किसान संगठित हो गये हैं । यह उनके व्यवहार और वैचारिकता में आ रहे परिवर्तन का भी परिचायक है । 'जो काम करेगा वही खायेगा' इस नारे के द्वारा आम प्रजा में जागृति का संचार होता दिखाई दे रहा है । जमींदारों के द्वारा हो रहे शोषण के प्रति भी अब उनके जहन में विद्रोह की भावना जागी दिखाई देती है ।

''किसानों के संघर्ष को अवसरवादी नेता चौपट कर चुके थे । मुकदमा लड़ते-लड़ते उन बेचारों का बुरा हाल था । ऐसी स्थिति में पंडित कालीचरण के नौजवान लड़के ताराचरण ने बीच-बचाव करके नये जमींदार से यह मनवा लिया कि खेत किसानों की मालिकी में रहेंगे ।''[४९] यहाँ पर नागार्जुन ने किसानों की कफोड़ी परिस्थिति को चित्रित किया है । किसान जो नकसलवादी लोगों के सामने लड़कर अपनी सारी संपति न्योछावर कर देते है और अपने बच्चों को मजदूरी करने का समय आ जाये तब तक उनके सामने लड़ते हैं । लेकिन आखरी विजय तो नकसलवादियों की ही होती है । साथ ही अवसरवादी नेता इस परिस्थिति का लाभ

उठाते हैं, इस बात का चित्रण कर लेखक ने पाठक को सोचने पर मजबूर कर दिया है ।

''किसानों के उस संघर्ष का जब इस प्रकार उपसंहार हो रहा था तब दो साल पूरे हो चुके थे और युरोप हिटलर की चँगुल में था । कांग्रेसी मंत्रीमण्डल इस्तीफा देकर विश्राम कर रहा था । विश्राम तो क्या कर रहा था, आगामी महासंघर्ष की चर्चा में जोर से लग गया था ।''५० यहाँ पर कांग्रेसी नेताओं पर धारदार व्यंग्य कसा गया है । एक ओर पूरा देश विश्वयुद्ध के प्रभाव से प्रभावित था, उस समय ये नेता लोग केवल अपना ही स्वार्थ साधने की कोशिश कर रहे थे । वाकई राजकीय नेताओं की नृशंसता का नागार्जुनजी ने खूब चोटदार शैली में वर्णन किया है । जो उनकी औपन्यासिक कला का बेजोड़ नमूना भी है ।

''किसानों ने सत्याग्रह प्रारम्भ किया । मालिक को लठैत और पुलिसवाले मिल गए । ऊपर कांग्रेसी मंत्रीमण्डल था, नीचे धरती माता थी । सत्याग्रही पृथ्वी पुत्र पिटने लगे तो खून से तिरंगा लाल हो उठा । इस छोटे से महाभारत में दो कुमियों और एक ब्राह्मण की जान गई । किसानों को कुछ हद तक सफलता अवश्य मिली...परन्तु मालिक को ब्रह्महत्या का पाप लग गया ।''५१ यहाँ पर लेखक कहना चाहते हैं कि जब किसानों पर अत्याचार बढ़ जाते हैं, तब वे गांधीजी के सिद्धांतों से सत्याग्रह का मार्ग अपनाते हैं और उसमें किसानों को सफलता अवश्य मिलती है किन्तु उसमें अनेक प्रकार की समस्या का सामना भी करना पड़ता है । जैसे कि मृत्यु, दण्ड, अत्याचार आदि ।

इस प्रकार नागार्जुनजी ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में राजनीतिक परिस्थिति का खुलकर चित्रण किया है । राजनीति के क्षेत्र में नेताओं में आये हुए पाखण्ड के फल स्वरूप इन अँचलों में नई-नई समस्याओं ने जन्म लिया है । जिसका वास्तविक चित्रण नागार्जुन ने दिया है ।

आर्थिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक परिवेश के नियामक तत्त्वों में सबसे अधिक प्रभावित आर्थिक परिवेश करता है । ''आज की अर्थ प्राप्ति, आर्थिक योजनाएँ एवम् अर्थ चेतना

सामाजिक कल्याण के लिए नहीं वरन् स्वार्थपूर्ति के लिए होने लगी है ।''५२ वैसे गँवई लोगों की आय का प्रमुख साधन कृषि ही है और कृषि के व्यवसाय के लिए उन्हें संपूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है । ''अँचलों की अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि है ।''५३ किसानों की आर्थिक स्थिति का मूलाधार उनके भूमि के स्वामीत्व पर भी निर्भर करता है । प्रस्तुत उपन्यास में गँवई लोगों की आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि ये लोग बहुत ही विकट परिस्थिति से गुजर रहे हैं । जैसे -

''तूफान आया तो आम की फसल चौपट हो जायेगी ।''५४ किसानों का जीवन कुदरत आधारित होता है । आकस्मिक आँधी आते ही जमीन की सारी फसल नष्ट हो जाती है । अचानक आये तूफान से अगर आम की फसल नष्ट हो जाये तो उन गरीब किसानों की हालत क्या होगी यह तो खुद वह ही बता सकते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही भयावह हो सकती है ।

''गौरी की माँ ने सारी बात समझा-बुझाकर चमाइन के हाथ पर पाँच- पाँच रुपये के दो नोट धर दिये, लेकिन वह सिर हिलाने लगी - नहीं मलिकाइन, इतने में काम नहीं चलेगा । यह तो दवा का दाम भी नहीं होगा । मेरी मजदूरी आप क्या देंगी, बस इतना ही ?''५५ यहाँ पर नागार्जुनजी ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि समाज में कोई भी व्यक्ति कैसा भी अनैतिक काम कर बैठे तो उसमें से बाहर आने के लिए वह कुछ भी कर सकता है । उसी प्रकार गौरी की माँ चमाइन को पाँच रुपये देकर बपनी बेटी के पाप को दूर कर देना चाहती है । दूसरी बात यह कि गँवई अँचलों में ऐसे भी लोग है जो पैसों के लिए कैसा भी काम करने को तैयार हो जाते हैं, यहाँ तक कि चमाइन ने तो गर्भ में से बच्चे को गिराना अपना व्यवसाय ही बना लिया है ।

''उसने सात रुपये में अपने को रतिनाथ के परदादा के हाथ बेच दिया था।''५६ यहाँ देख सकते हैं कि पैसों के लिए मनुष्य खुद बीक जाता है । इससे उन लोगों की आर्थिक स्थिति का अंदाजा पाठक लगा सकता है ।

''यह पंडितजी बड़े ही चतुर थे । बारह रुपया महीना डिस्ट्रिक्ट बॉर्ड से भी लेते थे और पाँच रुपया राजा बहादूर से भी । पतिया-प्रासचित से भी कुछ निकल

आता था ।''५७ ब्राह्मण समाज के एक व्यक्ति के द्वारा लेखक ने पैसों प्रति मनुष्य की अँधी दौड़ को चित्रित किया है । पैसों के खातिर व्यक्ति कोई भी हद तक जा सकता है । बड़े से बड़ा पाप या अन्याय भी कर सकता है । यह बात उपरोक्त गद्यांश से भलीभाँति समझ सकते हैं ।

''दिन-रात चर्खा चलाकर अपने लायक पैसा कमा लेती हूँ । तीस दिन में दस दिन तो तुम्हारे उपवास में चले जाते हैं ।''५८ यहाँ पर आर्थिक कमझोरी की चरमसीमा आ गई है । घर की स्त्री दिन-रात चर्खा चलाकर अपना पेट भरती है और इतने से भी पूरा न होने पर महीने के दस दिन तो उपवास करके गुजार देती है।

इस प्रकार देख सकते हैं कि 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से आर्थिक परिस्थिति का चित्रण किया है । किसानों की भायावह गरीबी अंत में उसके प्राण लेकर ही छोड़ती है । पूरा दिन खेतों में मजदूरी करने पर भी किसान की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी कमाई पर एक ओर तो जमींदारों की नजर गड़ी रहती है तो दूसरी ओर समय- समय पर आती कुदरती आफतें उनकी रही-सही आशाओं पर पानी फेर देती है । समग्रत: किसानों का आर्थिक जीवन अत्यंत ही निम्न स्तर का रहता है । जिसका नागार्जुनजी ने बहुत ही सचोट वर्णन इस उपन्यास में किया है ।

धार्मिक दृष्टि से विवेचन :

धार्मिक पूजा-अर्चना, विधि-विधान, व्रत-उपवास, अनुष्ठान, विभिन्न देवी-देवता, बहुदेववाद आदि सभी बातें धार्मिक परिवेश का निर्माण करती है । ग्रामीण लोगों के जीवन के हरेक पहलू के साथ धर्म अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ रहता है । वैसे भी जिन व्यक्तियों का जीवन ज्यादात्तर प्रकृति पर निर्भर रहता हो, उनका विधाता की परम शक्ति, सत्ता में उतना ही विश्वास रहना स्वाभाविक है । अत: आँचलिक लोगों का अधिक धार्मिक होना स्वाभाविक लगता है । ''हाँलाकि वैज्ञानिक आविष्कारों ने आज धर्म के प्राचीन रूप को बहुत हद तक बदल दिया है।''५९ जिसे अब 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में विस्तृत रूप से देखे -

''आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन लगा नहीं । सराइयाँ तीन थी, देवता दो ही थे । शालिग्राम और नर्मदे वर । ताँबे की सराई शालिग्राम के लिए, पीत्तलवाली नर्मदे वर के लिए । तीसरी भी पीत्तल की ही थी । वह पंच देवता के उद्देश्य से थी । चन्दन रगड़कर उसने अच्छत भिगोये । 'ॐ सहस्त्रशीर्षा. . .' आदि मंत्र पढ़कर शंख से शालिग्राम पर जल धारा, फिर नर्मदे वर पर । फिर अनमने भाव से चन्दन, अच्छत, फूल वगैरह चढ़ाकर रति ने पूजा खतम की । उधर थाली में भात-दाल परोसा जा चुका था ।''[६०] यहाँ पर गँवई व्यक्ति की धार्मिक मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है । जब व्यक्ति किसी प्रकार की चिन्ता या असंजसता में फँसा हो तो उसका मन किसी भी जगह नहीं लगता । प्रस्तुत उपन्यास में रतिनाथ को अपनी चाची (गौरी) की चिन्ता है, इसलिए आज उसका मन शालिग्राम की पूजा में नहीं लग रहा है । लेकिन इसके माध्यम से हम उनकी धार्मिकता विषयक सोच को, समर्पण को भलीभाँति समझ सकते हैं ।

''पूजा भगवान की जयनाथ आज स्वयं करने बैठे । वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी एक कुलीन ब्राह्मण के साधारण दैनिक जीवन में जितनी उपासना और कर्मकाण्ड की आवश्यकता होती है, उतना तो जानते ही थे । प्रातः स्मरण, संध्या-तर्पण, पंचदेवता पूजन (शिव, विष्णु, दुर्गा का विशेष रूप से) चंडी (सप्तशती) पाठ. . .इतना बिना किए उन्हें चैन नहीं पड़ता । इसके अतिरिक्त विद्यापति की महेशबानी भी जयनाथ बड़ी तन्मयता से गाया करते थे । सिद्धांत कौमुदी और तर्कसंग्रह ये पूरी-पूरी नहीं पढ़ पाये । अपनी अल्पज्ञानता पर उन्हें जीवनभर पश्चाताप होता रहा ।''[६१] यहाँ पर लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से ब्राह्मण जाति के एक व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण किया है । ब्राह्मण भले ही अनपढ़ हो किन्तु उसे पूजा हर दिन करनी पड़ती है । प्रस्तुत उपन्यास में जयनाथ कम पढ़ा हुआ पात्र है, लेकिन संध्या तर्पण, पंचदेवता पूजन आदि किए बिना उसे चैन नहीं पड़ता । कौमुदी और तर्कसंग्रह वे पूरी-पूरी नहीं पढ़ पाए, उनको अपनी अल्पज्ञता पर उन्हें जीवनभर पश्चाताप भी रहता है । कहने का तात्पर्य इतना है कि धर्म का प्रभाव इन लोगों के मानस पर इतनी हद तक छाया है कि ये कैसे भी करके इसका पालन श्रद्धापूर्वक करेंगे । फिर भले ही इसमें स्वार्थपूर्ति का उद्देश्य ही क्यों न हो !

''ऊपर देखने पर एक तारा नजर आया । गौरी की माँ ने चारों ओर घूम-फिरकर आसमान में दूर-दूर तक आँखे दौड़ाई परन्तु दूसरा तारा न दिखाई पड़ा। हाथ जोड़कर उसने पहले तारे को प्रणाम किया और साथ ही लोक पढ़ा ।

एकातारा मया दृष्टा द्वितीया नैव दुश्यते ।
तद्वोश परिहाराय नारदाय नमोऽस्तुते ।।'' ६२

यहाँ पर नागार्जुनजी ने धर्मानुश्रायी अँधश्रद्धा का चित्रण किया है । एक स्त्री आसमान में टूटते हुए तारे को देख लेती है तो कुछ अपशुकन की भीती से हाथ जोड़कर उस तारे को प्रणाम करने लगती है । उस टूटते हुए तारे को देखकर लोक का गान करती हुई वह अपने दोशों का निवारण करने का प्रयास करती है । वाकई धार्मिकता का वास्तविक रूप नागार्जुन चित्रित कर पाये हैं ।

''श्रेष्ठ मतलब यह कि बृहस्पतिवार को विद्या का आरम्भ करना अच्छा है। आज कौन-सा दिन है ?''६३ यहाँ पर ब्रह्मसमाज में विद्याग्रहण का सर्वश्रेष्ठ दिन बृहस्पतिवार (गुरुवार) को माना जाता है । हाँलाकि विद्या प्रारम्भ करने के लिए कोई दिन अच्छा या बुरा नहीं होता, लेकिन गँवई लोगों के संस्कारों में ही ऐसे बीज बोए हुए होते हैं कि किसी भी बात को धर्म के साथ जोड़ देते हैं ।

''कितने गरीबों की बाबा ने चुपचाप सहायता की...कितने रोते चेहरों के आँसू पोंछे होंगे । पीठ थपथपाकर कितने ही लड़खड़ाते पैरों को आगे बढ़ाया होगा...बाबा बाहर चारपाई पर सोए पड़े थे ।... मरी गाय को बाबा ने जिला दिया ।''६४ यहाँ पर समाज में फेली हुई अँधश्रद्धा पर प्रकाश डाला गया है । दूसरी बात यह कि व्यक्ति बिमार होने पर बाबा के पास ले जाते हैं और बाबा की दवा से सब ठीक भी हो जाते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि लोग अँधश्रद्धा और धार्मिकता में इतने डुब गये हैं कि डॉक्टर के पास भी नहीं जाते ।

''अरे सूँघ मत लेना, भगवान को भोग लगाना है ।''६५ यहाँ पर नागार्जुन ने एक किसान की बात की है । किसान जब खेत की पहली फसल आती है तब पहले भगवान को अर्पण करता है, बाद में अपने घर में उपयोग में लेता है । यहाँ पर आम की फसल तैयार हो जाने पर रति को पहली बार आम मिलता है, वह खुश होकर अपने पिता को दिखाने जाता है तब उसे आम सूँघने के लिए मना किया जाता है क्योंकि पहले भगवान भोग लगाना चाहिए ।

''समाज उन्हीं को दबाता है जो गरीब होते हैं । शास्त्रकारों को बलि के लिए बहरे ही नजर आए । बाघ या भालू का बलिदान किसीको नहीं सूझा । बड़े-बड़े दाँत और खूनी पंजे पंडितों के सामने थे, इसलिए उधर से नजर फेरकर उन्होंने बेचारे बकरों की बलि का फतवा दे डाला ।''[६६] यहाँ पर नागार्जुनजी ने समाज में फेली हुई अँधश्रद्धा पर करारा व्यंग्य कसा है । जो व्यक्ति मूक पशु की बलि चढ़ाता है उसे फटकारा गया है । लेखक के कहने का तात्पर्य यह है कि भोले और निर्दोश सजीव ही हमेंशा क्रूरता के शिकार होते हैं और बड़े लोगों का कोई नाम भी नहीं लेता । अगर बाघ और भालू की बलि चढ़ाने जाये तो वे खुद ही उसे मारकर खा जायेंगे ।

''स्वच्छ सफेद शान्तिपुरी धोती पहिने गौरी सामने आई । तब संकल्प हुआ - ॐ अध ज्येष्ठे मासे शुक्ले पक्षे दयोद या तिथौ निकृतरोगाया अस्थाः श्री गौरी देव्या सर्वाऽपति प्रशमनार्थ सागसायुध सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजनमहं करि यामि....''[६७] यहाँ पर रतिनाथ की चाची ने समाज के नीति-नियमों का भंग किया है उस पाप का प्रायश्चित करने के लिए वह भगवान सत्यनारायण की पूजा अर्चना करते हैं और अपने परिवार को स्वच्छ बनाने के लिए प्रार्थना करते हैं ।

''बाबा ने सुरती फाँक रखी थी । थूँककर कहा, बच्चा अब कोई इन बातों का विचार नहीं करता । बैल ठहरे शिवजी के वाहन, इनके चारों पैर धर्म के ही चार चरण है । इसीलिए ब्राह्मण न हल जोतते हैं न गाड़ी चलाते हैं । चढ़ना भी मना है।''[६८] उपन्यास में लेखक ने ब्राह्मण जाति पर जगह-जगह व्यंग्य कसा है । भारतीय संस्कृति के मुताबिक बैल शिवजी के वाहन है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि बैल को पूजा की वस्तु बना दिया जाये । ब्राह्मण जाति के लोग अपने आपको बड़े धर्मानुयायी बताकर काम न करने के बहाने रूप बैल और गाड़ी को शिव के वाहन बताकर काम से जी चुराते हैं । धर्म के नाम पर कामचोरी !

''कमर्च डालने दो बादाम-चूटकी भर सौंठ । चीनी और गुड़ डालकर भाँग पीना उन्हें पसन्द नहीं था । वह कहते - यह साधकों की चीज नहीं है । पर्व-त्योंहार को नशाखोरी की नीयत से भाँग पीनेवाले ऐसा भले कर ले परन्तु विजयादेवी के जो नित्य सेवक है, उन्हें कड़वी भाँग ही प्रिय लगती है ।''[६९] ऐसे समाज में जब-जब पर्व-त्योंहार आते हैं तब लोग पूरी श्रद्धा से मनाते हैं, पर कुछ

लोग विजयादेवी के त्योंहार के दिन भाँग पीकर नशा करते हैं और त्योंहार को इस प्रकार मनाते हैं ।

''ठीक दिपावली के दिन वैधनाथ की वर्षी पड़ती थी । इस अवसर पर उमानाथ घर आता । कम से कम पाँच ब्राह्मण जिवाये जाते । किसी-किसी वर्ष यह संख्या सात और नौं तक पहुँच जाती । प्रथा यह है कि पाँच वर्ष तक कम से कम ग्यारह व्यक्तियों को निमंत्रण दिया जाये । उसके बाद आप स्वतंत्र है ।''७० यहाँ पर अपने समाज के रिवाजों के मुताबिक परिवार किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के पीछे कुछ धार्मिक क्रियाकाण्ड करता है । उसमें कुछ ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ता है और उसके अलावा कुछ दान भी देना पड़ता है । उस समय बहन को भी ससुराल में निमंत्रण दिया जाता है और उसे भी कुछ दान देना पड़ता है । यह विधि पाँच वर्ष तक करनी पड़ती है और पाँच वर्ष बाद ही यह वर्षी खतम होती है ।

''पर्व-त्योंहार साल में दसों पड़ते हैं, उन दिनों कुछ न करो तो देवता नाराज हो जाते हैं और लक्ष्मी चिढ़ जाती है ।''७१ यहाँ पर नागार्जुनजी ने भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डाला है । उपन्यास में धार्मिक जितने भी त्योंहार आते हैं उसको अच्छी तरह से मनाया जाता है । इसके अलावा उन लोगों की ऐसी मान्यता भी है कि जो पर्व-त्योंहारों को नहीं मनाते तो देवता नाराज होते हैं और लक्ष्मी चिढ़ जाती है । इसलिए गाँव के सभी लोग त्योंहारों का मजा एक साथ उठाते हैं ।

इस प्रकार 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में नागार्जुन ने धार्मिक परिस्थिति का बड़ी ही कुशलता से चित्रण किया है । यह धर्म गँवई मनुष्य के पूरे जीवन का संचालन करता है । लेकिन धर्म के वास्तविक रूप के बदले ज्यादात्तर लोग अपना स्वार्थ ही साधते हैं । धर्म के आश्रय तले वे लोग कितनी भी मुश्किल परिस्थितियों का सामना करने को तैयार हो जाते हैं और सह भी लेते हैं । समगत: नागार्जुन ने इस उपन्यास में धर्म के एक वास्तविक रूप से पाठकों को अवगत कराया है ।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश के नियामक तत्त्वों के रूप में खेल-कूद, लग्नप्रसंग, लग्नगीत, उत्सवगीत, खेतीगीत, पर्वगीत, विविध पर्वो-त्योंहारों, वेश-भूषा, खान-पान आदि का समावेश होता है । प्रस्तुत उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में इन सांस्कृतिक परिवेश के तत्त्वों का कुछ खास प्रयोग देखने को नहीं मिलता ।

कहीं-कहीं पर खान-पान का निरूपण पाया जाता है । लेकिन वह केवल घटना विकास या पात्र विकास के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । नागार्जुन ने इस उपन्यास में अपनी दृष्टि केवल सामाजिक व धार्मिक परिवेश को ही उजागर करने पर रखी है । अत: सांस्कृतिक परिवेश कुछ कमझोर-सा मालूम पड़ता है । लेकिन इसके बावजूद भी उपन्यास में आँचलिक परिवेश चित्रण में कहीं भी बाधा या अवरोध नहीं आया है और यही नागार्जुन की औपन्यासिक कला की विशेषता है । समग्रत: 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में आँचलिकता के अधिकांश तत्त्वों का निरूपण लेखक ने किया है । जो काफी हद तक सफल ढंग से पाठकों को उपन्यास पढ़ने के लिए आकर्षित करते हैं ।

३.७ बलचनमा :

प्रस्तुत उपन्यास 'बलचनमा' का प्रकाशन सन् १९५२ में हुआ । उपन्यास में नागार्जुन ने बिहार राज्य के दरभंगा जिले के एक छोटे-से प्रांत को अपना कथाक्षेत्र बनाया है । स्वतंत्रताकालीन भारत के एक छोटे-से अँचल को अपना कथाक्षेत्र बनाकर उस अँचल की वास्तविक परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है । पूर्वदीप्ति शैली में लिखे गये प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन की औपन्यासिकता के सुन्दर उदाहरण पाये जाते हैं ।

उपन्यास का प्रमुख पात्र सत्रह-अठारह साल का एक नवयुवक है । जिसका नाम बलचनमा है । उपन्यास की सारी घटनाओं का कर्ता-हर्ता वही पात्र है । स्वतंत्रताकालीन भारत के अँचलीय क्षेत्र का पूरा परिवेश, यथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का बखूबी चित्रण इसमें किया

गया है । प्रारंभ में जमींदारों द्वारा किसानों पर किये जानेवाले अत्याचार व शोषण का वर्णन है । बलचनमा जो कि एक जिम्मेदार पुरुष के रूप में चित्रित हुआ है, अपने पिताजी की मृत्यु के बाद घर व परिवार की सारी जिम्मेदारी उसके ही कंधों पर आ जाती है । लेकिन तत्कालीन जमींदारों के शोषण से वह भी ग्रसित है । प्रत्युत उसकी शोषण के प्रति यह खामौशी उपन्यास के अंत में टूट जाती है और वह क्रान्ति के स्वर में जमींदारों के अत्याचारों का मुकाबला करता है । बलचनमा के माध्यम से लेखक ने अपने क्रान्तिकारी स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत कर दी है ।

संक्षेप में उपन्यास का कथानक सुगठित व श्रृंखलाबद्ध रहा है । विषयवस्तु और घटनाक्रम की दृष्टि से परखने पर नागार्जुन की औपन्यासिकता का सुन्दर स्वरूप दृष्टिगोचर होता है । पूरे उपन्यास में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसानों की सामाजिक व राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जागरुकता को दिखाना ही रहा है और उपन्यास के अंत में लेखक अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल भी रहे हैं ।

अब आँचलिकता के विभिन्न तत्त्वों की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास की विवेचना इस प्रकार से है ।

सामाजिक दृष्टि से विवेचन :

''एक जवान दुसाध को इस काम के लिए रखा । उसकी एक ग्वालिन से साँठ-गाँठ हो गई तो मझले मालिक को इस बात का पता चल गया । पकड़े जाने पर उन्होंने उसे जूतों से इतना पीटा की आधा पदर तक बेचारा आह-ऊह भी न कर सका भाग तो गया ही...''[७२] यहाँ पर नागार्जुनजी ने एक मजबूर पर हो रहे अत्याचार पर प्रकाश डाला है । जो व्यक्ति काम करता है उसे मजदूरी नहीं मिलती और जो अमीर है वह दिन-ब-दिन अमीर होता जा रहा है । जमींदार लोग की सोच है बवह खुद को पूरे गाँव का मालिक ही समझ बैठता है । लेखक ने इस बात को प्रस्तुत करके ऐसे जमींदारों पर व्यंग्य कसा है ।

''मर क्यों न गया ? बड़े नवाब के नाती हुए हैं । कहीं बैठकर अब वह साथ कोड़ी खेल रहा होगा और देर हो गई तो घास नहीं मिलती है, खुरपी भोपी है, बैंट ढीला पड़ गया था... ।''[७३] निम्नवर्ग के बच्चों पर हो रहे अत्याचार का

निरूपण किया गया है । बलचनमा जो कि एक तेरह साल का बच्चा है, जहाँ पर वह काम करता है वहाँ लोग तरह-तरह के जुल्म गुजारते हैं और इन जुल्मों को सहन अब वह काम करता जाता है । तत्कालीन सामाजिक स्थिति का यहाँ पर सजीव चित्रण हुआ है ।

''हम बिरादरी के नहीं थे, वह थे धानुक मैं ठहरा ग्वाला । वह थे सबरी मंडल मैं था बालचंद राउत, फिर भी दादा-परदादा की तरह वह मुझे प्यार करते।''७४ ग्रामीण अँचलों में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो सब को समान समझते हैं और किसी भी प्रकार के भेदभाव बिना आम आदमी को मदद करते हैं । उस युग के समाज की यह भी एक विशेषता है । जिसका चित्रण नागार्जुनजी ने बखूबी चित्रित किया है । नागार्जुन की विश्व बंधुत्व भावना का यह एक अच्छा उदाहरण है ।

''माँ मेरे बाप की ब्याही औरत नहीं थी । पहले ब्याह की औरत जब मर गई तो बाप कुछ रोज कलकत्ता रह आया था । बाद में जिस विधवा से संबंध हुआ वही थी मेरी माँ । दादी को भैस चराने का मेरा यह काम पसंद नहीं था ।''७५ यहाँ पर नागार्जुन ने सौतेली माँ के बारे में बात की है । उसके पिता की ब्याही औरत नहीं थी । पहले ब्याही औरत मर गई थी, अब अपनी सौतेली माँ के साथ रहकर काम करते थे वो अपनी दादी को पसंद नहीं था ।

''भराई आवाज में कहने लगी - नहीं सरकार, ललुआ की कमाई का निशान है, वह खेत । उसे न छीने । क्या कमी है आपको... ।''७६ यहाँ पर उस समाज में हो रहे अत्याचार और लाचारी का पर्दाफाश किया है । बलचनमा की दादी भराई आवाज में अपने जमींदार से कहती है वो जमीन हमारे ललुआ की कमाई की निशानी है वो हमारे पास रहने दो आपके पास जमीन की क्या कमी है ।

''हमारे तरफ छोटी जातवाले बड़ी जातवालों का जूठन खुलकर खाते थे । अब पंचायत ने इस पर रोक लगा दिया है ।''७७ उस समाज में पंचायतें किसी भी झगड़े-फसाद का निर्णय करती थी और उसका निर्णय आखरी माना जाता था । किन्तु यहाँ पर बड़े लोगों का जूठन छोटी जातवाले खाते थे वह भी पंचायत ने बंद करवा दिया ।

''मलिकाइन उससे पर्दा करती थी । बड़े मालिक की लड़की का नाम था जयमंगला । वह बाल विधवा थी । देखने में खूब सुन्दर । साँवली बड़ी-बड़ी आँखोंवाली । उसे ऐसे समय बुला लिया जाता । वह बिचवई का काम करती । चूहे के बिल की मिल की मिट्टी, पुराने बिलौने, तोड़े हुए कुशतिके चार बूँद गंगाजल पीपल के सूखे पत्ते... इतनी चीज मिलाकर दामो ठाकुर भूत झाड़ना शुरू करते ।''७८ यहाँ पर गँवई जीवन में पनप रही अँधश्रद्धा की बात कही गई है । जो विधवा होती है वह कुछ चीजों को मिलाकर भूत-प्रेत निकालने का काम करती थी उसके अलावा दूसरा कोई व्यक्ति यह काम नहीं कर सकता था । यही अँधविश्वास व अँधश्रद्धा ही गँवई लोगों के जीवनाधार होते हैं ।

''मगर घी-बेटी के लिए उस ओर निगाह उठाना भी गुनाह समझा जाता है । पढ़ाई-लिझाई इलिम-विधा सब कुछ लड़कों के भाग्य में । लड़की जब तक बिन ब्याही रही, खायेगी-पियेगी, थोड़ा बहुत शौक-सिंगार करेगी बस और यही बात हमारी छोटी जातवालों ने भी जस की तस अपने में उतार ली है ।''७९ यहाँ पर नागार्जुन ने स्त्री समस्या की ओर प्रकाश डाला है । जब लड़की का जन्म होता है तो किसी भी प्रकार की खुशी नहीं मनाई जाती पर जब लड़के का जन्म होता है तो तरह-तरह की खुशियाँ मनाई जाती है । जब कि लड़की अपने पिता के यहाँ कुछ समय खुश रहेंगी और शादी के बाद ससुराल चलर जायेगी । यहाँ तक कि पढ़ने-लिखने का अधिकार भी केवल लड़कों के लिए ही था । अतः उस समाज में लिंगभेद की यह कुप्रवृत्ति समाज को नर्क की खाई में ले जा रही थी ।

''फूलबाबू के दादा भी लगानी-भिड़ानी करते थे । परदादा थे अब वह राज में तहसीलदार । चार-चार, छै-छै, आठ-आठ, दस-दस रुपैया देकर वह ऐसी नाथन नाथते थे लोगों को मरने पर भी बेचारों का छुटकारा नहीं था । छोटी जातवाले जन बनिहारों के पास होता ही क्या ? बहुत हुआ तो...।''८० यहाँ वही ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की बात कही गई है । लेकिन बड़े लोगों में सब एक जैसे नहीं होते हैं, यहाँ पर फूलबाबू के परदादा ने अपने पूरे जीवन दरमियान किसी भी गरीब या मजदूर किसान का शोषण नहीं किया था ।

नागार्जुनजी ने गौना कराके आई स्त्री के साथ हो रहे अत्याचार का वर्णन भी बखूबी ढंग से किया है । जैसे - ''गौना होकर कोई नवेली किसीके घर आती तो इन लुच्चों की आँख उसके घूँघट के इर्द-गिर्द मँडराया करती । जब तक आधी-पौनी निगाह से उसे देख न लेते तब तक नींद न आती बदमाशों को । कई बार ऐसा होता कि जिसे देखने को बाप बैताब हो उठता उसी पर बेटा भी फिदा ! उन दिनों मालिक लोगों का ही राज था । उनके खिलाफ तुम अपनी कानी ऊँगली तक न हिला सकते थे । किसीकी इज्जत-आबरू को बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था ।''८१ मध्यमवर्गीय जीवन परिवार के वातावरण का कच्चा चिट्ठा खोला दिया है । आम लोगों के घर और परिवार की स्त्रियों के लिए घर से बाहर निकलना सिर का दर्द बन गया था । जमींदार वर्ग उन गरीबों और मजदूरों की स्त्रियों को, उनकी नव विवाहित बहुओं पर अपना अधिकार समझते थे और इसका विरोध करने की ताकत किसीमें नहीं थी ।

जमींदारों की हेवानियत का एक और उदाहरण देखिए - ''तो भैया मालिक ने यही मौका देखा और चट से रेबनी की कलाई पकड़ ली । हाथ झटककर फुरती से रेबनी दो कदम दूर हो गई मानो किसीने सिर पर सूप भर आग डाल दी है । पंखी हाथ से छूट गया था, चीख के बदले हल्की हाय सुनकर मालिक ने इसे नाटक समझा और पलंग से उठकर आगे बढ़े ।''८२ इस गद्यांश में नागार्जुन ने गरीब मजदूरों की बहू-बेटियों पर हो रहे अत्याचार की बात की है । वे लोग मालिक को भगवान समझते थे । किन्तु मालिक लोग उनकी माँ-बेटियों और बहुओं को तक नहीं छोड़ते थे और जब यह बात बाहर आ जाती तो अपनी इज्जत बचाने के लिए बात को नाटक का स्वरूप दे देते ।

''इस ननद ने कहा था - ऐसा! मैं भाईजी को मना कर दूँगी । नौकर-चाकर जितना नासमझ रहे उतना अच्छा भाभी । हमारे अजिया ससुर का कहना था कि छोटी जातवालों को जो एक आखर भी ज्ञान देता है । उसका अपना ही तेज चरता है और जो कोई शूद्र को समूची पोथी पढ़ा दे उसके पित्तर स्वर्ग छोड़कर नरक में रहने को मजबूर होते हैं ।''८३ इस गद्यांश में नागार्जुनजी ने बड़े ही मार्मिक ढंग से एक आम आदमी की तरफदारी की है । अगर अमीर लोग नौकर को पढ़ाकर होशियार बना दे तो वह नौकरी छोड़कर चले जाते हैं, ऐसी मानसिकता यहाँ पर

मलिकाइन के दिमाग में है और वह गुलाबबाबू को बोलनेवाली है कि वह बलचनमा को पढ़ाना-लिखाना छोड़ दे ।

''मामा ने डपटकर कहा - खच्चर कहीं के! छोटी जातवालों की अकिल भी छोटी ही होती है । चल जितनी तेजी से चलना हो...छोड़ दे बलचंद दौड़े ससुर।''८४ बलचनमा के मामा उसके समाज की बात कर रहे हैं । यहाँ पर अक्ल का कम होने का कारण भी उसकी निम्न जात को समझा जा रहा है । इस बात को आगे भी दोहराते हुए कहते हैं - ''छोटी जातवालों की तकदीर में उनका (जमींदार) जूठन या बचा हुआ या बासी ही पड़ता है । यहाँ भी वही हुआ भैया ।''८५

''कमीज को साबून लगाकर कचार दिया । बाहर कपड़े फेलाते ही उधर खाना हाजिर । बरहमपुरा आसरम में कई महीने रह चुका था, मुसलमानों का छूआ खाना खाने में परहेज-उरहेज नहीं था लेकिन इतना डर जरूर लग रहा था कि बिरादरी का कोई देख लेगा तो यह खबर गाँव-घर पहुँच जायेगी । नाहक बखेड़ा खड़ा होगा ।''८६ बलचनमा शहर में अपने मालिक के साथ रह रहा था, तब कुछ क्रान्तिकारी बात को लेकर मालिक जेल में गये थे और बलचनमा उनके मालिक के जान-पहचान के एक दोस्त और गांधीवादी आश्रम में आश्रय लेकर वहाँ सब जाति के लोगों के साथ मिल जाते । उसके मन में अपनी बिरादरी का डर है । क्योंकि मुसलमानों के साथ खाने से उसे अपनी बिरादरी से बाहर भी हो जाना पड़ सकता था । यह है उस समाज का असली चेहरा ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास 'बलचनमा' में आँचलिक परिवेश के प्रमुख तत्त्व सामाजिक परिवेश का खुलकर चित्रण हुआ है । सामाजिक परिवेश के उन तमाम लक्षणों का निर्वाह नागार्जुन ने अपने इस उपन्यास में किया है । जैसे जमींदार वर्ग का शोषण, किसानों-मजदुरों की मार्मिक स्थिति, ऊँच-नीच, जाति- भेद, स्त्री समस्याएँ, विधवाविवाह, बालविवाह, दहेज प्रथा आदि सभी बातें बड़ी ही स्वाभाविकता से उपन्यास में चित्रित हुई हैं । समग्रतः सामाजिक परिवेश के चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास सफल रहा है और इसका सम्पूर्ण श्रेय नागार्जुनजी की औपन्यासिक कला को जाता है ।

राजनीतिक दृष्टि से विवेचन :

राजनीतिक परिवेश का नागार्जुनजी ने बहुत ही सटिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है । इसके अंतर्गत विविध राजनीतिक पार्टियाँ, राजनीतिक दल, उनके बीच पनपते संघर्ष, वाद-विवाद, राजनीतिक भ्रष्टाचार, पुलिसतंत्र की भ्रष्टनीति, अत्याचार आदि सभी का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया गया है । जिसे अब विस्तृत रूप से देखे ।

''दो-चार घुर की ठीह, दो-एक भडैया, एकाध बकरी-बाछी । मगर भैया इन कसाइयों के चलते बेचारों के पास यह सब भी नहीं रह पाता । नीलाम करा लेते हैं । कुर्क हो जाती है । अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना दरोगा उनका, पुलिस उनकी । गरीबों के लिए सिवाय लात-जूता के और है ही क्या ? अब तो थोड़ा कुछ जमाना बदला भी है । बाकी दस-पंद्रह साल पहले देहातों में धुप अँधेरा था । जिसकी लाठी उसकी भैंस, यही चलता था । आज-कल तो दरोगा-पुलिस लोगों से दबने भी । बात-बात में अपनी गोटी वही लाल करते हैं ।''[८७] यहाँ पर नागार्जुनजी बताना चाहते हैं कि जो लोग निम्न जाति के हैं उसका कोई सुननेवाला नहीं है क्योंकि उसकी दारोगा भी नहीं सुनते, जिसके पास रुपया है वो लोग उसको खरीदकर अपनी मनमानी कर लेते है । इसके लिए नागार्जुन ने यहाँ पर एक मुहावरे का प्रयोग भी किया है - जिसकी लाठी उसकी भैंस ।

''बाबू सदाकत आसरम के नजदीक नमक बनाते बखत पकड़े गये है, तो बेचारे ने मेरे पास दौड़े आये । अपने साथी के दुखिया नौकर की खोज-पुछारी करने और उस रात नींद भी तो मुझे अच्छी तरह नहीं आई थी ।''[८८] जब बलचनमा बड़ा होकर अपने मालिक के साथ शहर गया था, वहाँ पर अपने मालिक का क्रान्तिकारियों के लिए एक आसरम के साथ झगड़ा हुआ था । वहाँ पर बलचनमा भी गया था और गांधीजी की वह नमक सत्याग्रह की बात करते हैं, उसमें गांधीजी और उसके साथी मित्रों की अंग्रेज सरकार ने धरपकड़ की थी उसकी बात करते हैं ।

''अम्मा ने पहले सिर से लेकर पैर तक देखा, तब जाकर बोली - फूलबाबू को यह क्या सनक सवार हुई । गांधी ने भले घर के लड़कों को बिगाड़ने का ठेका ले लिया है ? क्या पढ़ाई-लिखाई छोड़कर कालेज के लड़के क्या नमक ही बनाया

करेंगे ?''८९ यहाँ पर नागार्जुन ने गांधीवाद का चित्रण किया है । बलचनमा के मालिक फूलबाबू क्रान्तिकारी थे, वे एक कालेज में पढ़ाई करते थे । वे अपने अन्य क्रान्तिकारी मित्रों के साथ नमक सत्याग्रह में शामिल होने जाते है तब अपने मित्र को दादीमाँ यह बात बताती है कि कालेज के सभी लड़ बवह बनायेंगे क्या ? यहाँ पर देख सकते हैं कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का सामान्य मनुष्य के विचारों तक कितना असर था । लोग अपने देश के लिए अपने घर को तक छोड़ने को तैयार हो गये थे ।

''उन दिनों गांधीजी का बड़ा जोर था । पकड़-धकड़ जारी थी । सरकार बहादुर की ओर से कानून है कि नमक सब नहीं बना सकते । गांधी महात्मा सरकार को झुकाना चाहते थे कि दो-चार बातें उनकी मान ले सरकार ।''९० यहाँ पर अंग्रेज सरकार के शासन की बात की गई है । उस समय देशवासियों ने गांधीजी के नक्शे कदम पर चलकर आझादी के लिए कई प्रयास किये थे । सत्याग्रह किये थे । उनमें नमक सत्याग्रह कई दिनों तक चला था । उसकी बात यहाँ पर की गई है ।

''छोटे मालिक ने थाना में रिपोर्ट करवाई है, मुझ पर चोरी का इल्जाम लगाया है । दरोगा तो नहीं मानेगा । या तो घूस लेगा या फिर बात को आगे बढ़ा देगा । इससे मेरा निस्तार कैसे होगा ?''९१ प्रस्तुत अवतरण में नागार्जुनजी का गांधीवाद स्पष्ट झलकता है । फूलबाबू को आसाम से गिरफ्तार करने के बाद बलचनमा अकेला पड़ जाता है । वह भी फूलबाबू के मित्र के साथ रहकर क्रान्तिकारी बन जाते हैं । फूलबाबू के भाई ने बलचनमा पर झूठी रिपोर्ट लिखवाई और उस पर चोरी का इल्जाम लगवा दिया । यहाँ पर भ्रष्ट पुलिस तंत्र पोल खोलने का प्रयास किया गया है ।

''समझा भैया, बीस आदमियों के नाम सवा पाँच सौ रुपये की खैरात लिखी गई लेकिन इन लोगों को मिले सिर्फ दो सौ छः रुपये! कुएँ सुधारने के नाम पर एक हजार रुपया मिला । एक-एक को अलग-अलग बुलाकर बदलीबाबू और दासजी ने रुपये बाँटे । लोगों ने अकासी आमदनी समझकर दस्तखत कर दिया, अँगूठे की छाप दे दी । जिसका जैसा मुँह, जिसकी जैसी आवाज, उसको उतनी ही रकम मिली । हमारे मनियारचाचा ने चुपचाप ली थी, चुन्नी खैराती रकम लेने के खिलाफ अपनी राय पर गहकर चुका था । मालिक मेरी माँ को भी पाँच रुपया देना चाहते थे, पूछने

आई तो मैंने उसे डाँट दिया ।''९२ यहाँ पर नागार्जुनजी कहना चाहते हैं कि मध्यमवर्ग के लिए सरकार की ओर से कुछ सहाय मिलती है । उसमें गाँव के और अधिकारी अपना हिस्सा बाँट लेते, वो लोग गाँव में भी जो लोग बोलेगा उसको इस प्रकार की सहायता मिलेगी । यहाँ भ्रष्टाचार की सटिक अभिव्यक्ति हुई है । इन सब के बावजूद नागार्जुन का एक ही मात्र उद्देश्य जनता की जागृति ही रहा है ।

इस प्रकार राजनीतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है । विविध राजनीतिक षड़यंत्रों के चित्रण से पूरा आँचलिक परिवेश सजीव हो उठा है । आज राजनीति के विविध दाँव-पेंच दूर-सुदूर अँचलों तक पहुँच गये हैं, इस बात का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास है । नागार्जुन की औपन्यासिक कला का उत्तम नमूना यहाँ पर प्रस्तुत हुआ है ।

आर्थिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक जनता की आय का मुख्य साधन कृषि है । कृषि पर आधारित होने के कारण उन्हें ज्यादातर प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है । कभी अतिवृष्टि तो कभी अकाल के कारण उनका आर्थिक जीवन बहुत ही कष्टमय रहता है और उस पर जमींदारों की जोहुकमी ! इन सब कारणों की वजह से आँचलिक जनता का खास करके सामान्य मनुष्य का जीवन गरीबी में ही जन्म लेकर गरीबी में ही पूरा हो जाता है । यहाँ हम कुछ उदाहरणों से इस बात की पुष्टि करेंगे ।

''कुछ ही दिन बाद छोटे मालिक के यहाँ भैंस चराने का काम मिला है । भगवान! कितनी कठिनाई से और कितना गिड़गिड़ाने पर छोटी मलिकाइन मुझे रखने को राजी हुई है ! उनके... ।''९३ जहाँ मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों का इतना शोषण होता हो वहाँ कम उम्र में अपने बच्चों को काम पर लगाना पड़ता है । वे बच्चे कुछ-न-कुछ करके अपने परिवार को आर्थिक सहाय कर सकते हैं । इसलिए बलचनमा अपने मालिक के यहाँ भैंस चराने का काम करता है । ता कि अपनी माँ को खुश देख सके ।

''क्या कमी है मलिकाइन, आप लोगों के यहाँ ? आप ही का तो आसरा है, वरना हम गरीब जनमते ही बच्चों को नमक न चटा दे! अरे अपना जूठन खिलाकर

अपना फौरन-फारन पहनाकर ही तो हमारा पर्तपाल करती है...।''९४ यहाँ देख सकते हैं कि एक माँ गरीबी की चरमसीमा का इजहार कर रही है । अपने बच्चे को बड़ा करने और अपना परिवार चलाने के लिए उन लोगों को पैसेवालों की जूठन खानी पड़ती है और इसके लिए इन्हें क्या-क्या नहीं सहना पड़ता! ठस जूठन खाने की बात करता हुआ बलचनमा कहता है - ''हम अभागों का भाग्य चमक उठता । कायदे के अनुसार मेहमानों के आगे खाने-पीने की चीजे अधिक ही रक्खी जाती थी। वह आधी या चौथाई ही खा पाते थे ।''९५

''अढ़ाई रुपया उनकी फीस थी, एक रुपैया एक्के का भाड़ा । दवा का दाम अपना ऊपर से दो । बाप रे गरीबों के पास पथ-पानी के लिए भी घेला पैसा नहीं रहता, डॉक्टर की फीस और दवा के दाम का क्या ठिकाना ।''९६ नागार्जुन ने यहाँ पर गरीबी का नंगा चित्रण प्रस्तुत किया है । जिन लोगों के पास दो वक्त की रोटी का भी पैसा नहीं होता, उसको बिमारी में दवा के बिना अपना दम तोड़ना पड़ता है। जब बलचनमा की दादी बिमार हुई तब दवा के बिना उसकी मृत्यु हुई थी ।

''सावन-भादों में आकर सभी अनाज महँगे हो जाते थे । जिन घरों में कमाने लायक मजबूत काठी के आदमी थे, मैं उनकी बात नहीं कहता । उनके यहाँ तो धान रोपने की मजदूरी में थोड़ा-बहुत धान आ जाता था । पर मेरे यहाँ कौन था? ले-देकर समूचा मैं था । सो मुझे छोटी मलिकाइन और उनकी दुलरुआ लौंडी रात-दिन हुक्मों में नाथे रहती थी ।''९७ कुछ लोग अपने मालिकों के यहाँ काम करके धान प्राप्त कर लेते थे, लेकिन बलचनमा तो अकेला ही था । अतः वह अपने मालिक के घर ही काम-धाम करके वही खाना खा लेता है ।

इस प्रकार देख सकते है कि आँचलिक लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत ही भयावह होती है । खासकर कृषि पर आधारित होने के कारण उनका जीवन नसीबवाद पर चलता है और इसमें उनकी धार्मिकता बहुत गहरा असर छोड़ती है । गरीब आँचलिक लोग पूरा दिन खेतों में काम करते हैं लेकिन फिर भी उनको दो वक्त की रोटी नसीब नहीं होती । यही है आँचलिक लोगों की आर्थिक स्थिति ! ''आज अर्थ की प्राप्ति आर्थिक योजनाएँ एवम् अर्थ चेतना सामाजिक कल्याण के लिए नहीं वरन् स्वार्थपूर्ति के लिए होने लगी ।''९८

धार्मिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक जनता की आय का मुख्य साधन कृषि होने से उनको प्रकृति पर ज्यादा आधारित रहना पड़ता है और प्रकृति पर आधारित लोगों के जीवन से धर्म का अटूट संबंध जुड़ा हुआ होता है । विभिन्न देववाद, ईश्वरवाद, नसीबवाद, मंत्र-तंत्र, पूजा-अर्चन आदि बातों का उनके जीवन पर गहरा असर देखने को मिलता है । ''ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए ये लोग बहुत से देवी-देवताओं की उपासना करते हैं ।''९९ नागार्जुन के प्रस्तुत उपन्यास बलचनमा में धार्मिकता का चित्रण देखे तो -

''मलिकाइन चीखकर दोनों हाथ जोड़ लेती; दुहाई भगवती की सुखिया का भूत भगा ले जाइये दो कुँआरी लड़कियों को आपकी खातिर खीर-पुड़ी खिलाऊँगी। फिर मेरी ओर मुँह करके कहती - बलचनमा, दामो ठाकुर को बुला ला ।''१०० यहाँ पर भूत-प्रेत की बातों को लेकर समाज में फेले हुए अँधश्रद्धा व अंधविश्वासों पर प्रकाश डाला गया है । बलचनमा की मालकीन हाथ जोड़कर अपनी कुलदेवी को याद करके अपना भूत भगाने की बात कह रही है और इसके लिए दो कुँआरी लड़कियों को खाना खिलाने की बात भी कर रही है ।

''चीजों से जाड़ना शुरू करते - ओम् काली-काली महाकाली इन्द्र की बेटी ब्रह्मा की साली फू....इतना कहकर कुछ देर तक होठ पटपटाते और फिर आँखों का इशारा पाकर दूसरे लोग घर से निकल जाते, किवाड़ भिड़का दिया जाता ।''१०१ मालकीन अपने घर में से भूत-प्रेत के साये को दूर करने के लिए पंड़ित को बुलाती है । घर के सारे सदस्यों को बुलवाकर पंड़ित मंत्रोच्चार करता है । इन मंत्रों के पठन के बाद घर में भूत-प्रेत का साया हट जाता है, ऐसा पंड़ित सबको समझा देता है । ऐसी बातों में आकर जो ठग लोग है वह समाज को ठगते हैं । समाज ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करता है ।

इस प्रकार नागार्जुन ने बलचनमा उपन्यास में धार्मिकता के विविध रूप चित्रित किये हैं और इन धार्मिकता के फँदे में फँसे आँचलिक लोगों को जगाने का कार्य भी किया है । संक्षेप में कहे तो विज्ञान के प्रचार-प्रसार और शिक्षा के सामान्यीकरण के द्वारा आँचलिक जनता की धार्मिक सोच में थोड़ा-बहुत परिवर्तन

जरूर आया है । जिसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हम देख सकते हैं । ''धर्म संबंधी पुरातन मान्यताएँ उन्मूलित हो रही है तथा नवीन धारणाएँ एवम् मान्यताएँ उनका स्थान ग्रहण कर रही है ।''१०२

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन :

विविध पर्व-त्योंहार, मेले-थेले, लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथाएँ, खेल-कूद, खान-पान, पहनावा, रीति-रिवाज आदि सभी बातों का समावेश सांस्कृतिकता के तहत होता है । जिसका चित्रण बलचनमा उपन्यास में बखूबी ढंग से हुआ पाया जाता है । जैसे -

''सखि हे मजरल आमक बाग ?
कुहू-कुहू चिकरए कोइलिया
झींगुर गावए फाग ।
कन्त हमार परदीस वसइ छथि,
बिसरि राज-अनुराग!
विधि भूल बाम, सील भूल बैरी
फूटी भूल ई भाग!
सखि है मजरल आमक बाग....।''१०३

यहाँ पर देख सकते हैं कि जब किसान अपने खेत में काम करने के लिए जाता है तब अपने हरे-भरे खेतों को देखकर वह पुकार उठता है । आनंद में आकर अपनी खुशी व्यक्त करता है । लोकगीत के द्वारा वह अपने हृदयोंद्‌गारों को अभिव्यक्त करता है ।

''भैंस चराना मुझे खूब पसंद था । गाँव के बाहर मेरी ही उमर के जब और-और चरवाहे इकट्‌ठे होते तो हम अपना-अपना दु:ख भूलकर खेलते । कभी कौड़ी उछालते, कभी बकरी की सूखी मींगणियों से सतधरा खेलते, कभी कंकड़ों से लौबाठुट्‌ठी, मोगल-पठान या बाघ-गोरी का भी खेल चलता । हमारी दूब भरे मैदान या चरागाह में चरती होती और हम अपने-अपने मालिकों की बुरी-भली कहते-सुनते और खेला करते ।''१०४ यहाँ पर नागार्जुन ने भारतीय संस्कृति का

दर्शन करवाया है । बलचनमा भैसे चराते समय अपने मित्रों के साथ मस्ती में गाना गाता है और विविध खेल खेलता है । साथ ही साथ अपने मालिकों की बुराई भी करते जाते हैं । इस चित्रण से एक पूरा आँचलिक परिवेश खड़ा हो गया है ।

''पाँच रुपया अंटी से निकालकर उसके हाथ पर मैंने धर दिये । जो रस्म नइहर में नहीं पूरी हुई, वह आखिर यहाँ पूरी हुई । उस रात बाबा जोगादास ने भंग पिलाकर मति-गति मेरी हर ली थी । इसलिए यह रुपया माँ ने मुझे दिया था।''१०५ शिवरात्री के हदन भांग पीते है और पूरे दिन घूमते-फिरते शिवरात्री के त्योंहार का आनंद उठाते हैं । उस दिन कुछ पैसे भी खर्च करते हैं ।

''दुर्दिनमा केलक हरान
रे फिकिरिया मारलक जान!
करजा करिये खेती केलूँ मरि गलिइ सब
धान रे फिलि
बैल बेचि रजवा के देलूँ छोडए नहि बइमान
जमींदार के जुलूस रोकड चेतड भाई किसान
रे फिकि ।''१०६

उपन्यास के प्रारम्भ में उपन्यासकार ने इस प्रकार से पूरे आँचलिक परिवेश का चित्रण किया है । गाँव के बंधनमुक्त वातावरण का निरूपण करके लेखक ने एक प्रकार का आकर्षण उपस्थिति किया है । बंधनमुक्ति के कारण सभी लोग खुशी से झूम उठते हैं और गाना गाने लगते हैं ।

संक्षेप में कहे तो सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में सजीव रूप से हुआ है । लोकसंस्कृति के प्रस्तुतिकरण के लिए लोकभाषा का प्रयोग भी प्रभावक रूप से किया गया है । ''ग्रामीण लोकगीतों, लोकविश्वासों और लोककथाओं में हमारी परम्पराएँ निहित होती है ।''१०७ समग्रत: आँचलिकता के सभी तत्त्वों का निर्वाह प्रस्तुत उपन्यास में भलीभाँति रूप से किया गया है ।

३.८ नई पौंध :

नागार्जुन कृत आँचलिक उपन्यास लेखन में प्रस्तुत उपन्यास 'नई पौंध' का प्रकाशन सन् १९५३ में हुआ । प्रस्तुत उपन्यास में भी आँचलिकता के सभी लक्षणों का निर्वाह बखूबी ढंग से हुआ है । जिसे अब विस्तृत रूप से देखे -

सामाजिक दृष्टि से विवेचन :

''पंडित खोखाई झा की नतनी काफी खूबसूरत थी । चौदहवाँ टपकर पन्द्रहवें में अभी उसने पैर रखे ही थे कि यह जेठ का महीना आ धमका । अब उसकी शादी होनेवाली थी ।''[१०८] यहाँ पर आँचलिक समाज के सबसे कमझोर पहलू बालविवाह की बात बताई गई है । पंडित की नतनी की अभी पन्द्रहवें वर्ष में बैठी ही थी कि उसकी शादी करने की सोच रहे हैं । ऐसे बालविवाह के कारण बाद में उसे कई सारी मुसिबतों का सामना करना पड़ता है ।

''अपने पिता की इधर की गति-विधि से रामेसरी बड़ी शंकित रहती थी । शंकित होने का कारण क्या था ?

कारण यही था कि रामेसरी को छोड़ कर बाकी छहो बेटियाँ खोंखा पंडित ने बेच डाली थीं ।

महेसरी से उन्हें १९०० मिले थे ।
भुवनेसरी से ८०० मिले थे ।
गुनेसरी से ७०० मिले थे ।
गुंजेसरी से १००० मिले थे ।
वानेसरी से ७०० मिले थे । और -
धनेसरी से ९०० मिले थे । और अब बिसेसरी का नम्बर था । फसल तैयार खड़ी थी, कटने भर का विलम्ब था !''[१०९]

यहाँ पर लगता है जैसे आँचलिक समाज में मानवता ने अपनी अंतिम साँस ले ली है । एक पिता अपनी बेटियों को पैसे के लिए बेच रहा है । एक तो छोटी उम्र में लड़कियों की शादी और उस पर ऐसे अमानुशी पिता द्वारा सामने से लिये जानेवाले पैसों के कारण लड़कियों की हालत अपने ससुराल में क्या हो सकती है ये

तो वह खुद ही महसूस कर सकती है । लगता है जैसे समस्त मानवीय संवेदनाओं ने यहाँ पर दम तोड़ दिया है ।

''और आज समूचे गाँव की नाक कटने वाली थी । पन्द्रह साल की बिसेसरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को ब्याही जानेवाली थी!! दिगंबर ने यह खबर सुनी तो उसे ऐसा लगा कि किसीने भर-भर कलछी खैलता हुआ कडुआ तेल बारी-बारी से उसके दोनों कानों में डाल दिया है!''११० यहाँ गँवई समाज का और एक कमझोर पहलू बेमेल विवाह की अभिव्यक्ति हुई है । एक लड़की जो कि पन्द्रह वर्ष की है उसका विवाह एक बुड्ढे व्यक्ति-जो कि साठ वर्ष का है-के साथ कर रहे हैं । ऐसे बेमेल विवाह के पीछे एक मात्र कारण यही होता है कि लड़की के माता-पिता को दहेज नहीं देना पड़ता और इसके बदले में अपनी बेटी की पूरी जिन्दगी बरबाद कर देते हैं । और जब ऐसे लोगों का जब गाँव में विरोध किया जाता है तो वे बड़ी ही बेशरमी से अपना बचाव करते हुए कुछ इस प्रकार कहते हैं - ''खोंखा पंडित ने आधा घंटा बातचीत कर चुकने पर पाया कि आदमी काफी अकबाली है । उमर जरा ज्यादा है तो क्या हुआ ? कम उमर के लोग क्या नहीं मरते है ? बाबा बैधनाथ की अनुकंपा होगी तो इसी दूल्हे के घर विश्वेश्वरी की कोख से एक से एकइस संतान हो सकती है । ५०० बीघा जमीन की मलिकाइन बनेगी हमारी विश्वेश्वरी! ठहलोक और परलोक दोनों बन जायगा । मेरे नाना के दादा ने इसी आयु में विवाह किया था, लड़की का वयस बारह वर्ष का था और तब उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ हुई थी ।... नहीं, ऐसा अच्छा वर अब आगे ढूँढ़े नहीं मिलेगा; ''१११ वाह रे! समाज ! ऐसे लोगों के लिए तो फाँसी की सजा ही होनी चाहिए । यहाँ पर गँवई लोगों की मानसिकता को पूरी तरह से समझा जा सकता है ।

''ताश खेलना रामेसरी की नजरों में एक भारी अपराध था क्योंकि उसकी बालविधवा ननद को ताश की पत्तियों ने ले जाकर पेशावर पहुँचा दिया था! पडोस के एक नौजवान ने उस मुँहझौंसी के मन में 'कोटपीस' खेल का चश्का डाल दिया था कि एक रात वह उसके साथ भाग खड़ी हुई थी! और न जाने क्या-क्या हुआ!...''११२ यहाँ पर एक बालविधवा के अवैध संबंध की बात बताई गई है । जो अपने शारीरिक आवेगों पर नियंत्रण खोकर एक आवारा लड़के के साथ भाग गई है । यह समस्या इस समाज की सबसे बडी कमझोरी रही है क्योंकि बहुत ही छोटी उम्र में

विधवा हो जाने पर अब वह बड़ी होती है तब उसे अपने तन की प्यास को बुझाने के लिए ऐसे अवैध संबंधों का सहारा लेना पड़ता है ।

''.....सुना है, धन-संपदा काफी है । रानी बनकर रहेगी मेरी बीसो... उमिर कुछ अधिक है तो क्या हुआ ?

क्या हुआ! ....धन-संपदा ही क्या सबसे बडी चीज है ? पंद्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी ? हे राम!''[११३] बेमेलविवाह के कारण एक छोटी-सी लड़की की पूरी जिन्दगी किस प्रकार बद्‌त्तर हो जाती है इसका सचोट उदाहरण यहाँ पर दिया गया है । माँ-बाप कुछ पैसों के बदले में अपनी बेटी को ज्यादा उम्र के पुरुष को बेच देते हैं । और यही इस समाज की वास्तविक स्थिति!

''गहने रामेसरी के अपने कम ही थे । अपनी हँसली दो साल पहले ही उसने बेटी के गले में डाल दी थी । पति की दी हुई नथ थी, कंगन थे और करधनी थी । सो, आज संदुकची से निकालकर-खटाई से माँज-मूँजकर सुखा पोंछकर रखे हुए थे। मझली बहू से चंद्रहार ले आई थी, छोटी बहू से झुमके । गले में डालने की चाँदी की चकतियाँ बड़ी बहू खुद ही निकाल लाई थी ।''[११४] गँवई समाज के एक और कमझोर पहलू दहेजप्रथा को यहाँ निरूपित किया गया है । माँ-बाप अपनी बेटी को ज्यादा से ज्यादा दहेज देने की होड़ में ब्याज के तौर पर पैसे लेते हैं या तो फिर घर का सारा सामान बेच देते हैं । समाज की यह विषम स्थिति का शिकार आज पूरा आँचलिक समाज बना हुआ है । जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें काफी कुछ भुगतना भी पड़ता है ।

''छोटी जात का एक छोकड़ा दूल्हे के पास खड़ा था और किनारीदार बड़ा पंखा झल रहा था, पुराना और पीला पड़ गया हुआ ताड़ के पोढ़ पत्ते का पंखा-लम्बी-मोटी डंठल वाला!''[११५] तत्कालीन समाज में फेली हुई ऊँच-नीच की भावना को निरूपित किया गया है । छोटी कही जानेवाली जाति के लोगों के साथ समाज में बहुत ही बुरा व्यवहार किया जाता है । लेकिन इस परिस्थिति में समयानुरूप परिवर्तन भी आता है । जैसे एक अन्य उदाहरण देखे तो - ''.....गाँव की इज्जत को ऊँची बनाये रखने में मुखिया अपना-पराया सब भूल जाता था!''[११६]

यहाँ पर देख सकते हैं कि गाँव का मुखिया अपने स्वार्थ के लिए छोटे लोगों को भी इज्जत देने लगता है ।

आँचलिक समाज में बहुत कम देखी जानेवाली बहुविवाह की प्रथा का एक उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में देख सकते हैं । जैसे - ''बाबू चतुरानन चौधरी भी गुमसुम थे । इस तरह की पशोपेशी में वह भी कभी कहाँ पड़े थे ? पहला ब्याह तो खैर सत्रह साल की ही आयु में हुआ था, मुला बाकी तीनों शादियाँ चालीस के ऊपर की थी उन्होंने ।''११७ यहाँ पर एक चौधरी की बात बताई गई है जिसने अपने जीवन में तीन शादियाँ की थी । हालाँकि गँवई समाज में ऐसे बहुविवाह के उदाहरण बहुत ही कम देखने को मिलते हैं । क्योंकि गँवई लोगों की मानसिकता इस विषय में काफी संकुचित रही है ।

आँचलिक उपन्यासों के समाज में ज्यादातर अवैध संबंधों का चित्रण देखा गया है । प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित कुछ उदाहरण इस प्रकार है ।

''राम जाने, देवर से सहुआहन का क्या समंध था!
अमरितवा उसके घरवाले का सगा भाई हो सो बात नहीं, मगर दोनों में बड़ा ही नेह-छोह रहा । वह सुचित साहु का दूर का चचेरा होता था । पड़ोस के एक गाँव से जब-तब आकर चलते कोल्हू के पट्टे पर इस भाभी के पास वह बैठ जाया करता....।''११८

''दिगम्बर का मन नानी के कला-कौशल पर उतना फिदा नहीं था जितना कि छोटी मामी की सीने-पिरोने की हुनरमंदी पर । ठिंगने कद की वह साँवली औरत स्वेटर-मोजे तो बुनती थी ही मगर बातें भी बड़ी नफासत से बुनती थी- सच पूछिए तो इसी एक कारण से दिगम्बर बाइससाला छोटी मामी के चंचल नैनों को अपना दिल रेहन किये हुए था ।''११९

उपरोक्त दोनों उदाहरणों में अवैध संबंधों का चित्रण लेखक ने किया है । आँचलिक समाज में ऐसे अवैध संबंधों के दूषण का चित्रण सामान्य रूप से प्रत्येक आँचलिक उपन्यास में लेखकों के द्वारा हुआ पाया जाता है । ऐसे संबंधों से समाज की बनी-बनाई व्यवस्था में अनिवार्यत: व्यावधान आता है । समग्रत: प्रस्तुत

उपन्यास में उन तमाम पहलुओं का चित्रण बखूबी ढंग से हुआ है जिन्हें सामान्य रूप से अँचलीय समाज में देखा जाता है । बाल, बेमेल और विधवाविवाह की समस्या, दहेजप्रथा, अवैध संबंधों, ऊँच-नीच की भाव आदि बातों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन ने किया है । अतः सामाजिक दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास सफल रहा है ।

राजनीतिक दृष्टि से विवेचन :

राजनीति की व्यक्ति व समाज निरूपण में अहम् भूमिका रहती है । सांप्रत समय में इस राजनीति का गंदा व विकट स्वरूप दूर-सुदूर गाँवों तक पहुँच गया है। नागार्जुन ने अपने इस उपन्यास में चित्रित अँचल के विविध राजनीतिक दल, उनके द्वारा किये जानेवाले भ्रष्टाचार, धोखेबाजी, पुलिसतंत्र की भ्रष्टनीति, उनके अत्याचार, पंचायतों के अमानुशी व्यवहार व अत्याचार आदि का चोटदार वर्णन किया है । इसके कुछ उदाहरण देखे तो -

''चर्चा चली कि पाकिस्तान जोर मार रहा है, का मीर में फिर धमासान मचेगा... बात का छोर कांग्रेसी शासन से छू गया तो खोंखा पंडित बीच में ही टप से बोले-अंग्रेज बहादुर ही अच्छे! ठनसे तो हम भर पाये... बिना राज के कहीं कोई राज चला है ?

छकौड़ी खबास बैठक से हटकर अँगनई में बैठा था । तमाकू खोंट रहा था, खैनी मलने के लिए । वह बोला-अंग्रेज लहू पीता था, ई लोग हड्डी चबाते हैं पंडित जी!''[१२०] यहाँ पर अंग्रेजों व पाकिस्तान की बात करते-करते लोग देश के तत्कालीन शासन की बात करने लगते हैं । और ये बातें भी तत्कालीन शासक के द्वारा किये जानेवाले शोषण व अत्याचारों की ही है । इस पर मुखियाजी आगे बताते हैं कि - ''धन्य कांग्रेस सरकार की हमारी-तुम्हारी इज्जत आबरू बची हुई है! छूसरे की हुकूमत होती तो आज-कल केला-थंभ की छाल इसी भाव से खरीदते लोग और सो भी कहाँ मिलती ?''[१२१] देश पर कोई भी राजनीतिक दल शासन करे फायदा और स्वार्थ तो उनका ही पूरा होता है जो कूर्सी पर बैठा है । ऐसे राजनीतिक दल आपस में लड़-झगड़कर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं और भुगतना पड़ता है आम इन्सान को । लेकिन फिर भी लोगों में जागृति का संचार नहीं होता और जब

भी चुनाव आये कि निकल पड़ते हैं 'ये मेरे पक्षवाले ये तेरे पक्षवाले' करते हुए ! राजनीति का यह असर-प्रभाव दूर-दूर तक गाँवों में भी पहुँच चुका है ।

''फतूरी ठाकुर ठीक इसी वक्त कपड़ा कन्ट्रोल की शिकायत करने लगा - जमाहिर लाल का भला इसमें क्या कसूर है ? अफसर साले घूस खाते हैं, दुकानदार उनको चाँदी सुँघा देता है बस...''[१२२] यहाँ पर सरकारीतंत्र के भ्रष्ट कर्मचारियों भ्रष्टनीति पर व्यंग्य किया गया है । ऐसे कर्मचारी लोग चंद पैसों के लिए अपना इमान बेच देते हैं और इसका खमियाजा आम जनता को भुगतना पड़ता है । राजनीतिक भ्रष्टाचार का एक और उदाहरण देखे तो -

''प्रख्यात कांग्रेसी नेता गुणवंत लाल दास की मेहरबानी से यह नौकरी नीलकंठ बाबू स्वदेशी शासन के पहली दौर ('३७-'४०) में पा गये थे ।''[१२३] यहाँ पर एक राजकीय नेता की सिफारिश पर अयोग्य व्यक्ति को नौकरी मिल जाती है । जहाँ एक ईमानदार और काबिल व्यक्ति दर-दर की ठोकरे खा रहा है । सच ही राजनीति का यह गंदा खेल आम आदमी की जिन्दगी में जहर की तरह घूल-मिल गया है । जिसे अब बाहर निकालना नामुनकिन-सा हो गया है ।

''निकालिए ए'गो रुपइया! सिरिस्तेदार और समन ले जाने वाला सिपाही- दोनों को अठन्नी और चवअन्नी चटाना पड़ेगा, मैं कई बार जा जाकर उन्हें ताकीद करूँगा । तब कहीं समन बरामद होंगे और गवाहों तक पहुँचेंगे । कितनी दौड़-धूप मुझे करनी होगी! चहिये तो डेढ़ रुपइया, मगर निकालिए आप एक ही कलदारम्।''[१२४] यहाँ पर एक वकिल के द्वारा सीधे-सादे इन्सान को लूटा जा रहा है। सिपाही और सिरिस्तेदार के नाम पर वह पैसे ले रहा है । और गाँव के भोला मनुष्य लूटा जा रहा है । यह है राजनीतिक की गंदी और घिनौनी तस्वीर!

'' '४३-'४४ में एक अंडर ग्राउंड सोशलिस्ट लीडर का सम्पर्क पाकर रोतों-रात वाचस्पति के जीवन ने त्याग और तपस्या की यह कँटीली पगडंडी पकड़ ली थी । दो महीना जाते न जाते वह मधुबनी के विद्यार्थियों के अगुआ बनकर राजनीति की सतह पर जोरों से उभर आया था । और, रात-दिन पॉलिटिक्स की धमाचौकड़ी यह तभी से चली आ रही थी ।''[१२५] यहाँ पर एक आम व्यक्ति की बात कही गई है जो कि राजनीति में जाकर विद्यार्थी संघ का अगुआ बन गया है ।

राजनीति अच्छे से अच्छे लोगों के ईमान को भी डिगा देती है । और आँचलिक मनुष्य तो सीधा-सादा और भोले स्वभाव का होता है । उस पर जैसा रंग चढ़ाना चाहो चढ़ा सकते हो । राजनीति अच्छे लोगों को भी बुरे से बुरा काम करवाने पर मजबुर कर देती है । इसका सचोट उदाहरण यहाँ पर चित्रित हुआ है ।

इस प्रकार राजनीति के विविध षडयंत्रों, भ्रष्टाचार, पुलिसतंत्र की भ्रष्टनीति, सरकारी कर्मचारियों द्वारा किया जानेवाला भ्रष्टाचार, पंचायतों के जुल्म व अत्याचार आदि बातें नागार्जुन कृत प्रस्तुत उपन्यास 'नई पौंध' में चित्रित हुई है । अतः राजनीतिक वातावरण चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास सफल कहा जा सकता है।

आर्थिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक जनता की आय का प्रमुख आधार कृषि होता है । कृषि के अलावा गाँव के भिन्न-भिन्न जाति के लोग अपनी जाति के अनुसार व्यवसाय करते हैं । संक्षेप में कहे तो गाँववालों की सामान्य जरूरतों की पूर्ति गाँव में ही हो जाती है । लेकिन इन सब में कृषि का व्यवसाय ही सब व्यवसायों का मूल होता है । और कृषि का व्यवसाय संपूर्ण रूप से प्रकृति या कहे कि बारिश पर निर्भर रहता है। जिस साल अच्छी बारिश होती है उस साल किसानों की स्थिति अच्छी रहती है । इसलिए ये लोग प्रकृति पर आधारित होने के कारण नसीबवाद व ईश्वरत्व को अपने जीवन में प्रमुखता देते हैं । ऐसे आँचलिक लोगों की आर्थिक स्थिति का प्रस्तुत उपन्यास 'नई पौंध' में प्रभावक निरूपण नागार्जुन ने किया है । यथा -

''जथा-जाल मामूली था । पेशा था पंडिताई का । जमीन इतनी ही थी कि चार महीने का बुतात उसकी उपज से निकल आता । विद्या से ही उनकी असल आमदनी थी । भागलपुर, मुंगेर, संथाल-परगना और पूर्णिया-चार जिलों में खोंखा पंडित का नाम था ।''[१२६] यहाँ पर गाँव के एक ब्राह्मण पंडित की बात कही गई है। जो कि पंडिताई के व्यवसाय से अपने घर-परिवार चला रहा है । उसके पास जमीन अव य है लेकिन ऐसे पंडित लोग खेतों में काम करने से हमेंशा जी चुराते रहे हैं । और वैसे भी जमीन बहुत ही कम भी थी । अतः उसने अपनी विद्या को ही अपनी आय का साधन बना लिया है । आर्थिक स्थिति की कंगालियत का एक और

उदाहरण देखे तो ''....दो साल वहाँ और बारह साल मुजफ्फरपुर-पटना के कई एक छोटे-बड़े होटलों में कलछी-चम्मच माँझता रहा था, तब जाकर चार सौ रुपये जमा हुए थे और शादी हो सकी थी ।''[१२७] यहाँ पर देख सकते हैं कि चार सौ रुपये जमा करने के लिए गाँव के एक व्यक्ति को क्या-क्या करना पड़ता है । छोटे-बड़े होटलों में बरतनों की सफाई करके कुछ पैसे जमा हुए और फिर उसकी शादी हो सकी ! कहने का अर्थ यही है कि गँवई लोगों की आर्थिक स्थिति संपूर्ण रूप से खेती और प्रकृति पर ही निर्भर रहती है । प्रकृति पर आधारित होने से उनकी कैसी स्थिति होती है इसका एक उदाहरण देखे - ''हाँ, घटकराज ने अपना मुँह खोला-वायुदेवता का खेल है! एक गाँव में मेघ बरसता है और आधा कोस हटकर दूसरे गाँव में धूल उड़ती है । सब परमात्मा की कृपा है!''[१२८] यहाँ पर प्रकृति के विपरीत स्वरूप को देखकर लोगों के मन में ईश्वर के प्रति आस्था और नसीबवाद की भावना प्रबल बनती हुई नजर आती है । ऊपर से समय-समय पर आती प्राकृतिक आफतें, अतिवृष्टि, दुष्काल आदि की वजह से भी गाँव के किसानों का आर्थिक जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण स्थिति से गुजरता है । इस प्रकार संक्षेप में कहे तो प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित लोगों का आर्थिक जीवन संपूर्ण रूप से प्रकृति पर आधारित होने के कारण बहुत कमझोर और दयनीय रहा है ।

धार्मिक दृष्टि से विवेचन :

गँवई लोगों के मानस पर धर्म का बहुत ही गहरा असर देखने को मिलता है। ईश्वरवाद, बहुदेववाद, नसीबवाद, विविध धार्मिक उत्सवों, क्रियाएँ आदि का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । वैसे धर्म के नाम पर फेली हुई अंधश्रद्धाएँ और आस्थाएँ भी कम नहीं होती है । जिसे विस्तृत रूप से देखे -

गाँव में कोई भी शादी या मंगल उत्सव की शुरूआत लोग अपने-अपने कुलदेवता की स्तुति से ही करते हैं । इसके पीछे उनकी ऐसी सोच रही होती है कि कुलदेवता के स्तुतिगान से उनका प्रसंग अच्छी तरह से निबट जायेगा । जैसे ''नाना स्वयं अपने हाथों कन्यादान करेंगे, सो, नहा आये है और संध्याकालीन पूजा-पाठ से निबट रहे हैं । कुलदेवता के समक्ष मंगलगान आरम्भ हो चुका है, बड़ी-बूढ़ी औरतें और नई-नवेली बहू-बेटियाँ रस ले-लेकर गा रही है ।''[१२९] यहाँ पर देख सकते हैं कि पूजा-पाठ और शादी के प्रसंग में गाये जानेवाले मंगलगान में घर की सभी औरतें खुशी-खुशी हिस्सा ले रही है । यहाँ पर उनकी धार्मिक भावना का चित्रण प्रभावक रूप से हुआ है । ईश्वर के प्रति उन लोगों की धार्मिकता का एक और उदाहरण देखे तो - ''देवी-देवता का फूल अन्दर डालकर लोग बड़े जतन से जन्तर मढ़वाते हैं ताँबे का, चाँदी का, सोना का, अष्टधात का, वे उसे बाँह में, गले में, कमर में बाँधते हैं कि हमेशा शरीर से लगा रहे ।''[१३०] ईश्वर के चरणों का फूल अपने शरीर से लगाये रखने में इन लोगों की श्रद्धा में वृद्धि होती है । जिसमें उनका ईश्वर के प्रति समर्पण भाव ही प्रमुख रूप से उभरता है ।

समाज में ब्राह्मणों को धर्म के रक्षक माने गये हैं । वे लोग विविध धार्मिक क्रिया-काण्ड करवाके लोगों की धार्मिकता को सशक्त करते हैं और साथ ही अपना भी स्वार्थ पूरा कर लेते हैं । इसके लिए वे अपने आपको पूरी तरह धर्मावलम्बी रूप में सजा-धजाकर रखते हैं । जैसे - ''आम तौर पर लोग छः फेरों की दो जनेऊ धारण किये रहते हैं कि एक-आध धागा कहीं टूट-टाट गया तो भी तन-मन की शुद्धि बनी रहेगी । सो, आज विवाह-संस्कार के समय कई जनेउओं की जरूरत थी।''[१३१] यहाँ पर विवाह संस्कार के दौरान एक ब्राह्मण के द्वारा बोला गया यह वाक्य उनकी धार्मिकता का परिचायक है । ऐसे लोग अपने तन और मन की शुद्धि के लिए गले में जनेऊ का धागा डालते हैं । हाँलाकि इससे कितनों का मन शुद्ध

होता है ये तो खुद वे भी नहीं जानते है । लेकिन फिर भी ऐसे धागे और मुहूर्तो का उनके मानस पर गहरा असर होता है । जैसे – ''कुछ नहीं, दूसरा मुहूर्त पौने एक बजे पड़ता है जो कि साढ़े दशवाले से कहीं तगड़ा और महाशुभ है ।''१३२

आँचलिक लोगों के मानस पर प्रकृति का गहरा असर होने के कारण शुभ प्रसंगों पर ये लोग प्रकृति की पूजा करना भी नहीं भूलते । जैसे विवाह के प्रसंग पर बिसेसरी द्वारा किया गया यह कार्य कि – ''बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड़ पुजवाने गई हुई थी ।''१३३ उनकी धार्मिकता व आस्था को चित्रित करता है ।

गँवई लोगों के मानस पर धर्म का इतना गहरा असर होता है कि ये लोग अपने इस जन्म में किये हुए पापों का संबंध अपने पूर्व जन्म से जोड़ देते हैं । जैसे – ''लोटा लेकर बच्चन चला गया तो हाथ जोड़कर पंडितजी बोले – बाबू साहेब, यह जो कुछ भी हुआ है सो सब मेरे ही पापों का फल समझिए । निश्चय ही पूर्व जन्म में मैंने कोई भारी प्रत्यवाय किया होगा...।''१३४ इसके उपरांत लोग अच्छे–बुरे प्रसंगों पर धार्मिक क्रियाएँ भी करवाते हैं । जैसे – ''जेठ की पुरनिमा के दिन बेद और कर्मकाण्ड जानने वाले दो पंडितों को बुलवाकर विधिपूर्वक बुढ़िया ने जग्ग करवाया, साथ ही फल–फरहरी का ब्रह्मासाँज भी हुआ ।''१३५ इन सब के पीछे इन लोगों की एक ही मानसिकता बनी हुई होती है कि उनके शुभ प्रसंग अच्छी तरह से निबट जाये ।

समाज में धर्म के रक्षक ब्राह्मणों व पंडितों को माना गया है । इसके लिए वे लोग अलग–अलग प्रकार के धार्मिक पाखण्ड भी करते हैं । इसका एक उदाहरण देखे तो – ''खोंखा पंडित का खानदान धर्मभीरु और पूजा–पाठ परायण विद्वान ब्राह्मणों का खानदान था । यह कुल कभी तो शक्ति का उपासक रहा होगा अब लेकिन पंचदेवता का उपासक था । कुल देवता इन लोगों की भगवती उग्रतारा थी । इसलिए रंग–बिरंगे फूलों की आव यकता पड़ती ही रहती ।''१३६ गाँवों के भोलेभाले लोगों को ऐसे ढोंगी लोग अपनी जाल में फँसा ही लेते हैं । इनके ढोंग का एक और उदाहरण देखे – ''पंडिताइन ने आँचल पसारकर और मत्था टेककर जोड़ा छागर कबूला था दुर्गामाई के आगे । बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था ।''१३७ भगवान से अपने कामों को पूरा करवाने के लिए जैसे

रिश्वत दे रहे हो इस प्रकार ये लोग प्रार्थनाएँ और मन्नतें करते नजर आते हैं । और देखने लायक बात यह है कि ये सभी धार्मिक आस्थाएँ कहीं ना कहीं रूप से आर्थिक पहलू के साथ संबंधित होती है । जैसे देखे तो - ''गेहूँ सस्ता होता है तो घर-घर सतनराएन भगवान की पूजा होती है । सो, पंडित सस्ते हो गये हैं तो ज्ञान से लोगों की अरुचि हो गई है ।''१३८ इस प्रकार धर्म का मूल लोगों की आर्थिक स्थिति पर अवलम्बित रहता है ।

आँचलिक समाज में धर्म का खोखला स्वरूप इस उदाहरण से भलीभाँति रूप से स्पष्ट हो जाता है । जैसे - ''आज मातृनवमी थी । अपनी-अपनी माँ, नानी, सास, दादी और परदादी के निमित्त सबको एक-एक ब्राह्मण चाहिए था! इतने ब्राह्मण कहाँ से आवें ?... ब्राह्मणों को न्यौता दिया-चार छोकरे बाभन थे .... शास्त्र में कहीं ऐसा तो लिखा है नहीं कि भूख से कुलबुलाते अधेड़ ब्राह्मण के समक्ष तीन-तीन पत्तलों की खाद्य सामग्री एक ही पत्तल पर परोस देनी चाहिए अन्यथा पितरों को तृप्ति नहीं होती । गले में जनेऊ रहनी चाहिए, फिर उमर यदि पाँच की भी हो और जन्म हुआ हो ब्राह्मण वंश में तो देवता और पितर झख मारें, आपको ब्रह्मभोज में सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है ।''१३९ इस पूरे गद्यांश में आँचलिक जनता की धर्म विषयक विचारधारा का प्रस्फूटन हुआ है । समय परिवर्तन के साथ-साथ इन लोगों की धर्म विषयक मान्यताओं में भी परिवर्तन आने लगा है । जैसे - ''... भागवत की उनकी कथा लोग कान पाथकर व मन लगाकर सुना करते । अब तो खैर सर्धा-विश्वास कम हो गया, पहले मगर भागवत से काफी आमद होती थी ।''१४० इस प्रकार समय के परिवर्तित होने पर लोगों के धार्मिक विचारों में भी परिवर्तन आता है । आँचलिक जनता में धर्म विषयक सारी बातें कहीं ना कहीं, किसी न किसी रूप से आर्थिक स्थिति पर ही आधारित होती है। जिन्हें उपरोक्त उदाहरणों से भलीभाँति समझ सकते हैं ।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक जनता के मानस पर सांस्कृतिक परिवेश का असर बहुत ही प्रभावक रूप से दृष्टिगोचर होता है । सांस्कृतिक परिवेश के तहत विविध पर्व-उत्सव, मेले-थेले, खेल-कूद, खान-पान, लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथाएँ आदि

का समावेश होता है । प्रस्तुत उपन्यास में सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण कुछ इस प्रकार से हुआ है ।

स्कूल में पढ़नेवाला एक लड़का अपने पढ़ने-लिखने के सामर्थ्य को बताता हुआ गाँव के कुछ लोगों के सामने फकड़ा (फिकरा) प्रस्तुत करता है -

''खोंखा पंडित बड़े सयाने
दच्छिन-पच्छिम गये कमाने
बेटा रोया, बेटी रोई
करम न इनसे छूटा कोई
चूहा मारो, करो पराश्चित
पाप हरेंगे खोंखा पंडित
रात बता देंगे यह दिन को
चूड़ा-दहीं खिलाओ इनको
माल मुफ्त का यदी पा जाएँ
फिर तो दुम दिन-रात हिलाएँ
पैसा पावें, गूह चाट लें
सूना पावें, गला काट लें
बड़े घाघ है पंडित खोंखा
ईसर को भी देते धोखा ।''[१४१]

ऐसे हँसीभरे गीतों को गाकर और सुनकर आँचलिक लोगों का मनोरंजन होता है। साथ ही इसके द्वारा कुछ न कुछ उद्देश्य की अभिव्यक्ति भी होती है । एक धार्मिक गीत का उदाहरण देखे तो -

''कृ णाय वासुदेवाय
हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेश नाशाय
गोविंदाय नमोनमः ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय
गोब्राह्मण हिताय च ।

जगद्विताय कृष्णाय
गोविंदाय नमोनमः ।।''१४२

यहाँ पर एक पंडित के मुख से बोला गया यह लोक उसकी साहित्य साधना व धार्मिक भावना को चित्रित करता है । एक जगह पर दुर्गापूजा के दिन गँवई लोगों के मन-मस्तिष्क पर फेले हुए प्रभाव को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है ।

''जिज्ञासा में बूलों की आँखें बड़ी-बड़ी हो गई । मन के करेंट को उसने कान की कटोरियों से छुआ दिया और सुनने लगा....

काली कमलीवाले तुझको लाऽऽखो पर्नाम!
लाऽऽऽखो पर्नाम!
लाऽऽऽऽखो पर्नाम!
तुझकोऽऽ...

धत् तेरी! सौ साल पुराना गीत गा रहा है साला!''१४३

इस प्रकार सांस्कृतिक परिवेश का बहुत ही गहरा असर यहाँ पर प्रस्तुत हुआ है । लोकगीत और लोककथाएँ आँचलिक जनता के मनोरंजन के विशेष माध्यम होते हैं । इनके द्वारा एक ओर तो उनका मनोरंजन होता है और साथ में शिक्षा भी प्राप्त होती है । ये सारे लोकगीत उनके जीवन के अभिन्न अंग बन चुके होते हैं ।

समग्रतः आँचलिकता के सभी तत्त्वों की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर प्रस्तुत उपन्यास 'नई पौंध' एक सफल आँचलिक उपन्यास के रूप में उभर आता है । नागार्जुन की यह एक सशक्त रचना है जिनमें आँचलिकता के सभी लक्षणों का बहुत ही सफल ढंग से निर्वाह किया गया है । अतः यह एक सफल रचना है ।

३.९ बाबा बटेसरनाथ :

आँचलिक उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' का प्रकाशन सन् १९५४ में हुआ । मिथिलाप्रदेश के 'रूपउली' गाँव को अपने उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाकर नागार्जुन ने उस गाँव की चार पीढ़ियों की कथा को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । एक वट् वृक्ष के माध्यम से कथा प्रवाह को आगे बढ़ाया गया है । आजादी के बाद

के भारतीय गँवई क्षेत्र के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को रोचक ढंग से निरूपित किया गया है ।

कथानक दो खण्डों में विभक्त है । पूरे कथानक में जमींदारों द्वारा गरीब किसानों पर किये जाते अत्याचारों, शोषण, राजनीतिक आंदोलनों, अकाल, पुर जैसी कुदरती आफतों और इन सब समस्याओं से लड़ता-झझूमता गँवई मनुष्य इन सब का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है । अब इस उपन्यास को आँचलिक तत्त्वों के माध्यम से विवेचित करे ।

सामाजिक दृष्टि से विवेचन :

''कुछ दिनों बाद सुना कि बड़े घराने की एक बाल विधवा उस पर अपना तन-मन निछावर कर चुकी थी । पकड़े जाने पर वह कत्ल कर दिया गया और अगले ही रोज लड़की तालाब में बेजान तिरती पाई गई ।''[१४४] प्रस्तुत अवतरण में विधवा समस्या पर प्रकाश डाला गया है । आँचलिक समाज में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं है । अत: कम उम्र में विधवा हो जानेवाली लड़कियाँ अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए गाँव के अन्य लड़कों का सहारा लेती है । परन्तु ऐसा अवैध संबंध किसी भी समाज को मान्य नहीं होता । अत: वह बड़े घर की बालविधवा जब गाँव के अन्य एक लड़के से अवैध संबंध बनाती है तब गाँववालों को पता चलने पर उस लड़के को मार दिया जाता है और तुरन्त ही दूसरे रोज उस बालविधवा ने भी खुदखुशी कर ली । उसका शब तालाब में तैरता हुआ पाया गया। इस प्रकार आँचलिक समाज की एक कमझोर पहलू का यहाँ पर चित्रण किया गया है ।

''जाते-जाते ये जमींदार सार्वजनिक उपयोग की इस भूमि को भी बेचे जा रहे थे ।''[१४५] प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन ने एक वट्वृक्ष को लेकर उस समाज के हर एक पहलू को खोला है । यहाँ पर उपन्यास का नायक जैकिसुन को वट्वृक्ष गाँव की बातें बता रहा है । जब आजादी के बाद संयुक्त राष्ट्र की संकल्पना आई तब गाँव में जमींदारीप्रथा का उन्मूलन होता देख गाँव के जमींदार अपनी-अपनी जमीन बेचने लगे थे और ऐसे समय में वे लोग सार्वजनिक उपयोग की जमीन भी बेचने लगे थे । इस प्रकार यहाँ जमींदारों की क्रूरनीति का एक हल्का-सा एहसास जरूर होता है ।

''आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई किन्तु सौ वर्ष पहले दर-असल अपने इन इलाकों में जमींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था । रियाया से बैठ-बेगार लेना उनका सहज अधिकार था....वह रोब! वह दबदबा! वह अकड़! वह शान! वह तानाशाही! वह जोर! वह जुल्म! क्या बताऊँ, बेटा ? छोटी औकात और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकौड़े समझता ही था, अच्छी-अच्छी हैसियत के भले-खासे व्यक्तियों से वक्त-बेचक नाक रगड़वाता था जमींदार !''[१४६] जैकिसुन और बाबा बटेसरनाथ आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं। बाबा उसे गाँव के इतिहास के बारे में बता रहे हैं । उस समय किसानों की हालत बहुत ही खराब थी । कीड़े-मकौड़ों की भाँति अब वह पीसे जा रहे थे । परन्तु समय परिवर्तित होते-होते काफी कुछ बदल गया है । यह बात बाबा जैकिसुन को बता रहे हैं ।

''हमारी बिरादरी के वनस्पतियों पर भूतों, पिशाचों, पत्तों, देवों तथा ब्रह्मों की यह 'दया-दृष्टि' कोई नई बात नहीं है बेटा । इनका और हमारा सदैव संपर्क रहा है। एक वह भी युग था जब कि हमारे पूर्वज मनुष्य की ताजा अन्तड़ियों की माला पहना करते थे, एक वह भी युग था जब हमारी बेदियों पर कैदी राजाओं की आँखें निकालकर चढ़ा दी जाती थी, एक वह भी युग था जब कि ताजा कटी ऊँगलियों का हार पहनाकर वट्वृक्ष का श्रृंगार किया जाता था ।''[१४७] बाबा बटेसरनाथ (वट्वृक्ष) अपने अतीत को याद करके जैकिसुन को बता रहा है । इस पूरे अवतरण में अँचलीय लोगों के अँधविश्वासों का खुलकर चित्रण हुआ है । शिक्षा के अभाव में ये लोग तरह-तरह के अँधविश्वासों का शिकार होते हैं और जिसके पीछे उनकी परम्परागत मान्यताओं और संवेदनों का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

''दोनों रहने लगे । एक लड़का हुआ और बसा यह औघड़ बाबा पास के इलाकों में जल्द ही मशहूर हो गया । जहाँ कहीं भूत-प्रेत का उपद्रव उठ खड़ा होता, जहाँ कहीं देव-देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रह्मकर्म, पिशाची, चुडैल आदि की खुराफाते उभरती, वहाँ औघड़बाबा की गुहार होती । उस सिद्ध डोम के पहुँचते ही आधी गड़बड़ी दुरस्त हो जाती, जटाधारी औघड़ जोरों से चिमटा पटककर जब 'ओ... ऽ... ऽ... अलख निरंजन भग् सा ...ऽ....ऽ... ले की ऊँची आवाज मारता तो बाकी खुराफत भी खतम हो जाती ।''[१४८] बाबा अपने समय के समाज की बात बताता हुआ कहता है कि उस समय जब कोई व्यक्ति बिमार होता था तो

उस पर किसी भूत-प्रेत या पिशाच का वास बताया जाता था और गाँव के औघड़बाबा जैसे डोम ऐसे व्यक्तियों का अपने मंत्र-तंत्र से इलाज करके अपना स्वार्थ पूरा करते थे । वास्तव में ऐसे भूत-प्रेत होते नहीं हैं लेकिन ऐसे तांत्रिक लोग अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए गाँव के भोले लोगों को अपना शिकार बनाते हैं ।

''तेरी जात बिरादरी के लोग भी अब पढ़ने-लिखने लगे हैं । कुछ तो अच्छे ओहदे पर भी पहुँच गये हैं । कई अब असेम्बली के मेम्बर भी हैं । ...पहले जमाने में ज्ञान-विज्ञान और पढ़ाई-लिखाई बड़ी जातवालों की बपौति थी । अब पाठ ाला और स्कूलों के दरवाजे सभी जातियों के बच्चों के लिए खुल गये हैं । मगर ऊँची जातवालों का आपसी पक्षपात और 'शुभ-लाभ' के लिए उनकी आपाधापी जब तक मौजूद रहेंगे तब तक मानव समाज की सामूहिक प्रगति नहीं होंगी ।''[१४९] उस समय ऊँची मानी जाती जाति के लोगों को ही पढ़ने-लिखने का अधिकार था और छोटी जातवाले पढ़ नहीं सकते थे । इसके पीछे ऊँचीजातवालों की एक ही मानसिकता रही होती है कि अगर ये लोग पढ़-लिख लेंगे तो उन पर जोहुकमी नहीं चला पायेंगे, उनका शोषण नहीं कर पायेंगे, उन्हें अपना गुलाम बनाकर नहीं रख पायेंगे । इसलिए उन्हीं लोगों ने ऐसे नियम बना रखे थे कि पढ़ने-लिखने का अधिकार केवल ऊँची जातवालों को ही है । लेकिन समय परिवर्तन के साथ निम्न माने जानेवाले लोगों में भी जागृति का संचार हुआ है । वे भी अब पढ़ने-लिखने लगे हैं ।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने प्रस्तुत उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में आँचलिक समाज के हर एक पहलू का खुलकर चित्रण किया है । बाल- विधवा-बेमेल विवाह की समस्या, दहेजप्रथा, अँधवि वास, भूत-प्रेत, अवैध संबंध, जमींदारों का शोषण, अत्याचार, गरीबी आदि सभी सामाजिक पहलुओं का इस उपन्यास में प्रभावक चित्रण हुआ है । अतः सामाजिक दृष्टि से यह उपन्यास काफी प्रभावशाली सिद्ध होता है ।

राजनीतिक दृष्टि से विवेचन :

देश के दूर-सुदूर अँचलों में जाके देखे तो वहाँ भी राजनीतिक गतिविधियों का प्रभावक असर देखने को मिलता ही है । विविध राजनीतिक दल, उनके बीच

पनपते झगड़े-फसाद, पुलिसतंत्र के हथकंडे, भ्रष्टाचार, चुनाव आंदोलन, सरकारी अधिकारियों द्वारा किया जानेवाला भ्रष्टाचार आदि सभी बातें राजनीतिक परिस्थिति में समाहित की जाती है । प्रस्तुत उपन्यास में उपरोक्त बातों का चित्रण देखे तो -

''गाँव की अदालत ने उसे एक बार मामूली सजा दी । सजा क्या दी दो रुपये का जुर्माना ठोक दिया । बाकी पंच दुविधा में थे, लेकिन शत्रुमर्दन राय ने साफ-साफ कहा - चाहे कुछ हो, हमें बगैर किसी रु-रियासत के इस बलिभदर से कैफिसत तलब करना चाहिए....बलिभदर को रायजी पर बड़ा गुस्सा आया और उठकर चला गया । रायजी ने जोर डाला तो पंचायत ने मुजरिम पर दो रुपये का जुरमाना ठोका ।''[१५०] गाँव की पंचायत ने पंडित चन्द्रमणि को एक बार सामान्य सजा दी थी क्योंकि वह गाँव की महिलाओं को छेड़ता था और गाँव में बुरे काम करता था । इसलिए गाँववाले उससे नाराज थे । लेकिन वह बहुत ही पहुँचा हुआ व्यक्ति होने के कारण पंचायत उसे कड़ी सजा नहीं दे सकती थी । यहाँ पर देख सकते हैं कि गाँव के झगड़ों का फेंसला पंचायतों में ही होता है और गाँव के पहुँचे हुए लोग अपराध करके भी आसानी से छूट जाते थे । जैसे आगे कहा गया यह वाक्य कि - ''कानून और हकूमत उनके बुटों की कीलों के नीचे थे ।''[१५१] काफी हद तक राजनीतिक परिस्थिति को स्पष्ट कर देता है ।

''जमीन के झगड़ों में दोनों पक्षवालों को थाना बुलवाता, डरा-धमकाकर कुछ रकम कर लेता और समझौता उन पर थोंप देता । दहशत, अकड़, मक्कारी, जोर-जबरदस्ती और प्रपंच का अवतार समझा जाता भीम झा दारोगा ।''[१५२] यहाँ पर पुलिसतंत्र के द्वारा किया जानेवाला भ्रष्टाचार व शोषण की बात की गई है । जमींदारों के साथ मिलजुल कर पुलिसवाले भी गरीब लोगों पर कम अत्याचार नहीं करते । इसका सजीव निरूपण यहाँ पर नागार्जुन ने किया है ।

''सरकारी वकील पतौर के रहनेवाले थे और जीवनाथ का ननिहाल उसी गाँव में था । ननियाहर का वही रिश्ता इस वक्त काम आ गया । लोचन ठाकुर दयानाथ के जेल के साथी रहे, वह परिचय भी सहायक सिद्ध हुआ वरना बेचारे नाहक ही डकैती के मामले में फँसा लिये जाते ।''[१५३] यहाँ पर भी पुलिसतंत्र की भ्रष्ट नीति का पर्दाफाश किया गया है । वकील और सरकारी अधिकारी अपनी मनमानी करते हुए दोषित व्यक्तियों को छुड़ा ले जाते हैं और निम्न वर्ग के लोगों

को परेशानी भुगतनी पड़ती है । गरीब और पिछड़े लोगों को ऐसे भ्रष्ट कर्मचारियों के कार्यो का भोग बनना पड़ता है । यही है ऐसे अँचलों की राजनीतिक स्थिति! कि एक डकैत को अपने पापों के बदले जेल से मुक्ति मिल जाती है ।

''थानेदार और नीलाम्बर का विचार था जीवनाथ को फोड़ लेने का, इसके लिए दो बीघा बढ़िया जमीन दीवान टुनटुना मल्लिक से वे उनको दिलवाने की सोच रहे थे । पिछले किसान आन्दोलन में तीन किसान लीडर थोड़ी-थोड़ी जमीनों के बदले हमेंशा के लिए बैठा दिये थे । द्याद्य लोग इस बार भी उसी दृष्टि से समस्या को देखते थे । उनकी धारणा थी कि जीवनाथ गरीब है, जमीन का प्रलोभन कारगर रहेगा ।''१५४ यहाँ पर एक इमानदार व्यक्ति को जमीन दिलवाने की लालच देकर उससे गलत काम करवाने की सोच रहे हैं । भ्रष्टाचार के इस स्वरूप को देखकर लगता है कि आँचलिक जनता और समाज क्या कभी इमानदारीपूर्वक जी सकेंगे ? दो उच्च वर्गो के बीच फसता है बेचारा गरीब । यही है हमारी राजनीति!

''जीवनाथ और जैकिसुन आदि ने अच्छी तरह समझ लिया कि सिर्फ अदालत के भरोसे दुष्टों से छुटकारा नहीं मिलेगा गाँव को । जनबल को अच्छी तरह संगठित कर लेना चाहिए ।''१५५ यहाँ पर नागार्जुन ने आँचलिक समाज जन-जागृति के दर्शन करवाये हैं । अब लोग अत्याचारों व अपने पर हो रहे जुल्मों के विरुद्ध उठ खड़े हुए हैं । शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने इन लोगों की मानसिकता का परि कार किया है । जमींदारों के विरुद्ध अब इन लोगों ने भी 'जैसे के साथ तैसा' वाली कहावत अपना ली है । वाकई नागार्जुन की औपन्यासिकता का ही यह कमाल है कि उन्होंने इस प्रसंग के चित्रण से एक जीता-जागता चित्रबिम्ब उपस्थित कर दिया है ।

इस प्रकार देखे तो प्रस्तुत उपन्यास में राजनीतिक परिवेश का एक जीवंत चित्र उपस्थित हो पाया है । आँचलीय जनता के दिलो-दिमाग पर राजनीति का जो असर पड़ा है उसका नागार्जुन ने यथार्थ वर्णन इस उपन्यास में चित्रित कर दिया है और वैसे भी डॉ.मोहम्मद जिमल के अनुसार - ''राजनीति का समाज के निर्माण एवम् विकास में तथा व्यक्ति की उन्नति एवम् अवनति में विशिष्ट योगदान रहता है।''१५६

आर्थिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिक जनता का आर्थिक जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण स्थिति से गुजरता है। पूर्ण रूप से प्रकृति पर आधारित जीवन होने से इन लोगों को हमेंशा प्रकृति के प्रकोप का सामना करना पड़ता है । कुछ उदाहरण देखे तो –

''पूस–माध में उस वर्ष धान जब खलिहान में तोला गया तो मालूम हुआ कि तीन गुनी उपज हुई थी । लोगों ने अनाज बेच–बेचकर कर्ज की पिछली रकम चुकाई और शादी–ब्याह, मूंड़न–छेदन, जनेऊ–उपनयन, तीर्थ–वर्त वगैरह कामों में खुलकर खर्च किया ।''[१५७] यहाँ पर देख सकते है कि जब खेतों में फसल अच्छी होती है तब किसान अपना पहले का सब कुछ बाकी हिसाब–किताब पूरा कर देता है । शादी–ब्याह जैसे कई प्रसंगों को बड़ी अच्छी तरह मना लेता है । कहने का मतलब यही है कि गँवई किसानों की आर्थिक स्थिति का सबसे बड़ा आधार खेती और प्रकृति ही होती है ।

''वह दिन–भर परेशान रहे कि कहीं से चालीस रुपये चाहे जैसे भी मिल जाये लेकिन कोई सूरत नहीं निकली । बेटा वह रुपयों का जमाना तो था नहीं, जिन्सों–मालों का जमाना था । रुपये में तीन–तीन, चार–चार मन तक धान मिलते थे, दो–दो, ढाई–ढाई मन चावल । सात सेर छः से घी आता था, डेढ़–दो मन गुडा कौडियों पैसों की जगह इस्तेमाल होती थी । नोट का चलन बिलकुल नहीं हुआ थ़। आज तो एक बिघा उपजाऊ जमीन ढाई–ढाई, तीन–तीन हजार रुपये पर उठती है । उन दिनों पच्चीस रुपये मिलते थे एक बिघा धनहर खेत के । आज तेरी बस्ती के पचासों आदमी बाहर रुपये कमा रहे हैं । यहाँ के किसान हर साल अनाज बेचकर हजारों की खड़ी रकम बनाते हैं ।''[१५८] यहाँ पर नागार्जुन ने आज से सौं साल पहले की बात बताई है । बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को कहता है उस समय आदमी पूरा दिन परेशान रहता था कि रुपया कहाँ से आये । उस जमाने में पैसे का इतना महत्व नहीं था, जितना कि आज है । उस जमाने में तो लोग दो वक्त की रोटी मिल जाये उसीमें संतोष मान लेते थे । इस पूरे गद्यांश में आँचलिक जनता की आर्थिक स्थिति व्यक्त हुई है ।

''घासों का कहीं पता नहीं था । दूबे बिलकुल सूख गई थी । मामूली पौधों का भी यही हाल था ।''[१५९] यहाँ देख सकते हैं कि जब बारिश नहीं होती और खेतों में कुछ भी नहीं उगा हो तब गरीब किसानों की क्या हालत होती है ! उन लोगों के लिए घास-फूस खाने के लिए भी नहीं बचता । विकट परिस्थिति में वे लोग वृक्षों के पत्तों को उबालकर खाते थे और अपना तथा पूरे परिवार का निर्वाह करते थे ।

''उपज अच्छी हुई हो और घर-गिरस्ती का काम ठिकाने पड़ा रहा हो तो किसान अपने को क्या समझता है बेटा ? उस हालत में किसान अपने को बादशाह समझता है बल्कि उस स्थिति में वह अपने आगे किसीको कुछ नहीं समझता । है न!''[१६०] यहाँ पर नागार्जन ने बताना चाहा है कि जब खेतों में अच्छी फसल उगती है तब किसान अहंकार में चूर हो जाता है । बहुत खुशी के प्रसंग में वह अपने अतीत को भूल जाता है और अपने हृदय की दबी हुई खुशियों को बाहर निकाल देता है ।

''चमार जूते बनाना भूल गये । मोमिनों के पाँच करघे थे सो अब एक ही रह गया था । चीनी की आमद ने गुड़ के व्यापार को चौपट कर दिया था । बटन, सुई, आईना, कंघी और कैंची...कपड़े, खेती के औजार...बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग-धन्धों का गला दबाने लगे ।''[१६१] नागार्जुन ने यहाँ पर वैश्वीकरण की व्यापक समस्या को केन्द्रस्थ करके एक बहुत बड़ी बात रख दी है । विदेशी आयातों से हमारे छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों को बहुत ही असर हुआ है । आँचलिक जनता की पूरी अर्थव्यवस्था टूट-सी गई है । पहले ये लोग गाँव में ही अपनी जरूरतें पूरी कर लेते थे, लेकिन अब मोची, कुम्हार, बढ़ई, सुथार आदि अपना-अपना धन्धा छोड़कर शहरों की ओर भागने लगे हैं और इससे आँचलिक परिवेश की आर्थिक स्थिति पूरी तरह टूट गई है ।

इस प्रकार नागार्जुन ने प्रस्तुत उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में आर्थिक परिवेश की बहुत ही सचोट अभिव्यक्ति दी है । गँवई जनता के आय के स्रोत, उनके कार्य-व्यापार, उद्योग-धन्धे आदि का व्यापक चित्रण आँचलिक परिवेश को सजीव बनाता है ।

धार्मिक दृष्टि से विवेचन :

धार्मिकता का प्रभाव आँचलिक जनता पर बहुत गहरी हद तक पाया जाता है। विविध देवी-देवता, मंत्र-तंत्र, पूजा-अर्चन आदि बातों का समावेश धार्मिक परिवेश में होता है । प्रकृति पर निर्भर रहनेवाले आँचलिक लोगों का मानस नसीबवाद पर आधारित होता है और इसी वजह से ये लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करके उसकी पूजा-अर्चना करते हैं । कुछ उदाहरणों से समझे -

''इस साल चैत में वारुणी का परब आया तो राउत पाँच-पैदल गंगा नहा आये-सिमरिया घाट जाकर ।''[१६२] यहाँ पर उपन्यासकार ने बताया है कि गँवई लोग वर्ष में कुछ परब आने पर गंगा नदी के घाट जाकर नहा आते हैं । ऐसा करने के पीछे उनकी धार्मिक आस्था जुड़ी रहती है । वे ऐसा मानते हैं कि गंगा नहाने से वर्ष भर के पाप धूल जाते हैं ।

''दहीं-वहीं तो राउत तुमने बहुत दिनों से इधर नहीं खिलाया । एक-पर-एक दबे होठों को किसोड़कर पूजारी ने कहा - आँखे नचा ली । हाथ जोड़कर तेरा परदादा बोला - लो महाराज कल ही आ जायगा ।''[१६३] यहाँ मंदिर के पूजारी की मानसिकता का पता चलता है । ये पूजारी धर्म के नाम पर गाँव के लोगों को उल्लू बनाते हैं और अपना स्वार्थ पूरा कर लेते हैं ।

''हर सोमवार को सबेरे आकर तेरी परदादी मेरी जड़ों में लोटाभर जल डालने लगी तो मैं खुश हुआ ....।''[१६४] भारतीय संस्कृति के मुताबिक जिन लोगों की आत्मा भटकती है उन लोगों के घरवाले वट्वृक्ष की जड़ में पानी चढ़ाते हैं । जिससे कि भटकती आत्माओं को शांति मिले । यहाँ पर जैकिसुन की परदादी अपने पुर्खो को शांति मिले इस हेतु वट्वृक्ष की जड़ों में पानी चढ़ाती है । यहाँ पर भी धर्म के नाम पर अँधविश्वास के दर्शन होते हैं ।

''मेरी छाया में बैठकर तेरी इस बस्ती ने रूपउली के ब्राह्मणों ने मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाये और उनकी सामूहिक पूजा की उन्होंने, फिर भी मेघ की कृपा नहीं हुई - नहीं हुई! नहीं हुई!! नहीं हुई!!! ग्वालों, अहिरों और धानुकों ने चार दिनों तक भुइयों महाराज का पूजन किया, दस भेड़े बलि चढ़ाई और दो जवान

भाव खेलते-खेलते लहूलूहान होकर गिर पड़े थे, फिर भी राजा इन्दर खुश नहीं हुआ - नहीं हुआ! नहीं हुआ!! नहीं हुआ!!!''१६५ आँचलिक परिवेश में जब बारिश नहीं होती है तो ये लोग अँधी धार्मिकता के तहत पशु- पक्षियों की बलि चढ़ाते हैं और इसके पीछे इन लोगों की सोच यह होती है कि यह सब करने से इन्द्र देव खुश होते हैं और गाँव में बारिश होती है । लेकिन ऐसे अँधविश्वास में पड़कर वे लोग निर्दोश प्राणियों की हत्या कर देते हैं और वह भी धर्म के नाम पर!

''लेकिन पाठक बाबा की ध्वजा जहाँ से यहाँ खड़ी हुई तब से मेरे प्रति सब की भावना बदल गई । श्रद्धा, भय और आतंक...अब मैं प्रिय नहीं था । पूजनीय था, वन्दनीय और माननीय था । सोमवार और बुधवार के प्रातःकाल स्त्रियाँ आकर मेरी वेदी पर चावल की पीठी के घोड़े रखे करती और पिड़ियों पर दूध ढालती अच्छत और फूल चढ़ाती, परिवार की भलाई के लिए भिन्नते मानती ।''१६६ भारतीय संस्कृति के मुताबिक धार्मिक संस्कृति की दर्शन यहाँ पर होता है । बाबा बटेसरनाथ कहते हैं कि जब से पाठक बाबा की ध्वजा यहाँ खड़ी की गई है तब से लोगों का एक प्रकार का धार्मिक विश्वास मेरे प्रति जम गया था ।

''सावन में टुनाई का पोता साँप के काटने से मर गया, लोगों ने कहना शुरू किया : विधाता से नहीं देखा गया, आखिर बईमान को उन्होंने चेतावनी दे ही डाली।''१६७ एक कहावत 'जैसी करनी वैसा भरनी' के अनुसार टुनाई का पोता साँप के काटने से मर गया था, लेकिन गाँववालों ने समझ लिया कि ईश्वर पापों की सजा दे ही देता है ।

''गाँव के नौजवान इन भली-भली बातों का मतलब खूब समझते थे । 'सत्तर चूहे मारकर बिल्ली चली हज को' छिपा नहीं था । पाठक की माँ वर्ष में एक बार भागवत का पारायण करवाती, नौ दिनों तक जैनारायण के घर प्रति मास संक्रांति के दिन सत्यनारायण की पूजा होती । परन्तु इससे क्या जमीन की उनकी भूख का न और था, न छोर...परमार्थ और स्वार्थ साथ-साथ चलते रहे इन परिवारों में ।''१६८ व्यक्ति गंगा नहाने जाये वह इसलिए कि अपने पूरे जीवन भर जो बुरा काम किया हो उन पापों का नाश कर सके । व्यक्ति अपने पापों को मिटाने हेतु धार्मिक क्रियाएँ करता है, व्रत-उपवास करता है, लेकिन भगवान सबकुछ जानते हैं कि कौन कितने पानी में है ।

इस प्रकार नागार्जुन कृत प्रस्तुत उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में धार्मिक परिस्थिति-परिवेश का यथार्थ निरूपण हुआ है । धार्मिक परिवेश का चित्रण आँचलीय लोगों की मानसिकता और उनके आचार-विचारों को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है । अत: धार्मिक परिवेश के चित्रण में नागार्जुन पूर्ण रूप से सफल रहे हैं ।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन :

सांस्कृतिक परिवेश के अंतर्गत विविध पर्व-त्योंहार, मेले-थेले, उत्सव, लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथाएँ, खेल-कूद, खान-पान आदि का समावेश होता है। इसके कुछ उदाहरण देखे तो -

''बाल पकने लग गए
पिछले बारह वर्षो से
इस आँचल में गाँठ बाँध रखी है मैंने
आने का लेता है तो भी नहीं नाम
निठुर मेरा दुसाध...
राजा सलहेस प्रीतम मेरे!
तेरे नाम पर गाँठ बाँध रखी है
अपने आँचल मां मैंने
ओ निठुर! निर्मोही !!''[१६९]

प्रस्तुत पंक्तियों में भैंसों के चरवाहों के मुँह से गाये गये हृदयोंद्‌गारों को लिया गया है । प्रस्तुत पंक्ति में विरह में जलती हुई नायिका अपने प्रियतम को याद करती हुई विरहाग्नि में जल रही है ।

''उठ जाग मुसाफिर भो भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है
जो जागत है सो पावत है
जो सोवत है सो खोवत है ।''[१७०]

प्रस्तुत पंक्तियों में समाज जागृति का प्रयास किया गया है । पंक्ति के माध्यम से समाज को संदेश देते हुए लेखक आँचलिक जनता की संवेदनाओं को भी जगाने का काम करते हैं ।

''प्रबोधिनी एकादशी का त्यौहार बड़ा ही फीका गुजरा ।''[१७१] अपनी भारतीय संस्कृति में त्यौंहारों का बड़ा ही महत्व है । जैसे जन्माष्ठमी, होली, दिपावली आदि त्योंहार धूमधाम से मनाये जाते हैं । उसी प्रकार रूपउली गाँव में भी प्रबोधिनी एकादशी का त्योंहार मनाया जाता है । लेकिन इस साल इस त्योंहार में कुछ मजा न आने की बात नायक कह रहा है । संक्षेपतः इन त्योंहारों में हमारी भारतीय संस्कृति के दर्शन करवाने का लेखक का उद्देश्य रहा है ।

इस प्रकार आँचलिकता के सभी लक्षणों - सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक - की दृष्टि से विवेचन करने पर प्रस्तुत उपन्यास एक सफल रचना सिद्ध होता है । नागार्जुन ने इस उपन्यास में आँचलिकता के सभी तत्त्वों का निर्वाह खूब अच्छी तरह से किया है । अतः यह उनकी एक सफल रचना साबित होती है ।

३.१० वरुण के बेटे :

नागार्जुन कृत प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् १९५७ में हुआ । बिहार राज्य के एक छोटे-से क्षेत्र 'मलाही-गोढ़ियारी' को उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया गया है । इस छोटे-से अँचल में थोड़े-बहुत परिवार रहते थे, जिनका एक मात्र व्यवसाय मछलियाँ पकड़कर उसे बेचना था । मछुआरों (वरुण के बेटे) के जीवन तथा परिवेश को उपन्यास में यथार्थ चित्रित किया गया है । पूरे उपन्यास में मानवमन की संवेदनाओं, भावनाओं, इच्छाओं व आवेगों को चित्रित करने का उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है ।

१२ परिच्छेदों में विभाजित कथानक में पुरुष पात्रों के रूप में भोला, खुरखुन, मोहनमाँझी, नीरस, रंगलाल, चुल्हाई आदि पात्रों का चित्रण हुआ है । तो स्त्री पात्रों के रूप में जिलेबिया, मधुरी, तीरा, जिमिया, सिलेबिया आदि का चरित्रांकन हुआ

है। संक्षेप में कहे तो यह नागार्जुन का एक विशिष्ट व सार्थक उपन्यास है । जिसमें उस समाज की सामाजिक परिस्थिति के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थ रूप से निरूपण हुआ है । साथ नारी चेतना को उजागर करके नागार्जुन ने एक सफल आँचलिक उपन्यास की अपनी विशिष्ट पहचान कराई है । अब आँचलिकता के तत्त्वों की दृष्टि से इस उपन्यास का मूल्यांकन करे तो कुछ इस प्रकार से है -

सामाजिक दृष्टि से विवेचन :

''भोला का चाचा बिसुनी गरीब का गरीब रह गया । अपनी जाँगर ही उसकी असल जमा पूँजी थी । यही हाल खुरखुन, रंगलाल, नीरस वगैरह सामान्य मछुआ का था । उनमें आपस का एका भी हद दर्ज का था सभी परिवार दु:ख-सुख में साथ रहते थे ।''[१७२] यहाँ पर नागार्जुनजी ने आँचलिक समाज के परिवारों की स्थिति के बारे में बताया है । वे लोग छोटी-छोटी बस्तियों में रहते हैं, अत: एक-दूसरे की आवश्यकताओं व जरूरतों को आपस में ही पूरी कर लेते थे । उनके बीच पारिवारिक संबंध अच्छे बने हुए होते हैं । यहाँ पर नागार्जुन की वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का दर्शन होता है ।

''मंगल और चुल्हाई के साथ मधुरी के स्नेह-सम्पर्क की अफवाहे दो-एक बार उड़ी थी, फिर आहिस्ते-आहिस्ते दब गई थी ।''[१७३] यहाँ पर गँवई मानसिकता का परिचय करवाया गया है । गाँवों में लोग लड़का-लड़की के संबंध को एक मात्र दृष्टिकोण से ही देखते हैं । अगर भूल से भी कोई लड़का-लड़की आपस में बात करते या एक दूसरे को मात्र देखते हुए भी नजर आ गये तो पूरे गाँव में यह खबर चिन्गार की तरह फेल जाती है । यहाँ पर भी ऐसा ही होता है कि मंगल और चुल्हाई के साथ एक बार मधुरी कुछ बात कर रही थी और कुछ गाँववालों ने यह देख लिया । अत: गाँव में मधुरी और उन लड़कों के बीच अवैध संबंध की झूठी अफवाह फेल गई थी । आँचलिक समाज इस बात को लेकर संकुचितता में जी रहा होता है ।

''फिर मधुरी की ओर देखकर बोली - देखती है मधुरी, सोलह साल की हो गई तो भी जिलेबिया के मगज में अपने आप कोई बात नहीं आती । पग-पग पर

भूंकना पड़ता है, तभी समझती है । हाय राम! ससुराल में कैसे भकोलका निबाह होगा ।''१७४ प्रस्तुत गद्यांश में मधुरी की उम्र सोलह साल की होने पर उसके ससुराल की चिंता करती हुई उसकी माँ की बात बताई गई है ।

''सहनी, सुखिया, सुनौट, सोरहिया, बाँतर, नीयर, जलुआ, माँझी, खानदानी उपाधि किसीकी कुछ है तो किसीकी कुछ । मगर है फिर भी सभी निशाद ।''१७५ इस गाँव में अलग-अलग जाति के लोग रहते हैं । उसमें जो मछुआरे हैं उन लोगों को जमीन नहीं मिलती है । उस बात को लेकर तरह-तरह के विवाद उठते हैं । लोग-लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं । ''और हमारी सोन-छड़ी को जो सराहती, वही इस धरती पर नहीं रही, चली गई है सरगउली हाट! स्सुर है तो बुढ़वा ताड़ी पीकर धुत बना रहता है! बहिना फिकिर के मारे पलकों से नींद उड़ गई है हमारी... .।''१७६ मधुरी की माँ की आँख भर आई क्योंकि अपनी बेटी अब ससुराल जानेवाली है । इसलिए मधुरी की माँ को तरह-तरह के विचार आते हैं, वह रात-दिन उस बात को लेकर चिन्ता में रहती है । यहाँ पर एक माँ के द्वारा अपनी बेटी की शादी को लेकर चिन्तित बताया गया है ।

''भोला को अपनी स्त्री से इसकी भनक मिली थी । पचास रुपये की लागत से उसने हँसली बनवाई और मँगल की माँ को लाकर सौंप दी । कहा था - मधुरी हमारी भी बेटी है न!''१७७ यहाँ पर नागार्जुन ने यह बताया है कि अलग-अलग समाज के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज होते हैं । मधुरी की माँ को अपनी बेटी को कुछ देना चाहती है किन्तु उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वह दे नहीं पाती । अपनी पड़ोसन को इस बात का पता चलता है तो भोला और उसकी पत्नी मधुरी के लिए पचास रुपये की लागत से एक हँसली बनवाकर मधुरी को देते हैं । यहाँ पर मानवता की शुद्ध भावना को चित्रित किया गया है । संवेदना की चरम सीमा पर इन पात्रों का चित्रण किया गया है । जो काफी प्रभावक लगता है ।

''मधुरी पिछली शाम को ही ससुराल से भाग आई थी । नशाखोर ससुराल की खुराफतों ने उसे पति के पास टिकने नहीं दिया ।''१७८ यहाँ पर एक नवविवाहिता स्त्री अपने ससुराल के अत्याचारों से तंग आकर अपने घर वापस आ गई है । इसके बावजूद दहेज मुख्य समस्या रही है । ''मलाही-गोंढ़ियारी की संयुक्त आबादियों में आम किसान और खेत मजदूर कम नहीं थे । किन्तु उनमें भी

ज्यादा तादाद थी मछुओं-माँझियों की ही । इनकी भी चार-चार, पाँच-पाँच उपजातियाँ यहाँ थी, सहनी, माँझी, खुनौत, तीअर और तलुआ... ।''[१७९] यहाँ पर उपन्यासकार ने गाँव में विविध जाति-उपजाति की बात की है । इन सब के बीच विविधता में भी एकता के दर्शन नागार्जुन ने करवाये हैं । जो उस समाज की विशिष्टता रही है ।

''लात-बात बर्दाश्त करके भी लड़कियों को ससुराल में रहना चाहिए।''[१८०] यहाँ पर नागार्जुन के व्यक्तित्त्व का एक ओर अहम पहलू दृष्टिगोचर होता है । एक भारतीय स्त्री के गुण व संस्कारों के दर्शन यहाँ पर होता है । लेकिन यह मानसिकता आज तोड़ने की जरूरत भी आ पड़ी है । क्योंकि ससुराल के अत्याचारों से आज कई नारियाँ पिड़ित नजर आ रही है । जिसके विरुद्ध एक सशक्त कदम उठाने की जरूरत है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास 'वरुण के बेटे' में सामाजिक परिवेश का यथार्थ व रोचक वर्णन पाया जाता है ।

राजनीतिक दृष्टि से विवेचन :

राजनीति का प्रभाव छोटे-छोटे अँचलों में भी आज पाया जाता है । देश के किसी भी कोने में जाओ वहाँ राजनीति के विविध षड़यंत्रों, दाँव-पेंच, विविध दल, उनके भ्रष्टाचार, पुलिस की जोहुकमी, पंचायतें आदि बातें पाई जाती है । इसका निरूपण प्रस्तुत उपन्यास में भी बखूबी ढंग से किया गया है । कुछ उदाहरण देखे -

''...और किसीकी दिलचस्पी नहीं थी । सर्वे के पुराने कागजात पानीवाले इन क्षेत्रों को 'दलात' (बाढ़-ग्रस्त) बताते आ रहे थे । पुराने भूस्वामियों ने मछुओं से दो-एक दफे 'जल-कर' वसूलने के तिकड़म भिड़ाई थी, लेकिन इसमें उन्हें कामयाबी नहीं मिली तो झील की निकटवर्ती कछारे किस्तबन्दी ठेकों पर सस्ते-सस्ते उठा दी थी ।''[१८१] यहाँ पर मछुआरों को पुर-ग्रस्त होने पर सरकार की ओर से सहायता मिल रही है । लेकिन उसमें दलाल लोग बीच में से अपना हिस्सा निकालकर उन लोगों की सहायता में कटौती लगा देते हैं ।

''१५ अगस्त '४७ के पहले तीन बार जेल की सजा भुगत आया था । खरी-खरी सुनाने की और सर्व साधारण जनता का पक्ष लेकर चाहे जो कुछ कर गुजरने की लत पड़ गई थी ।''१८२ यहाँ पर नागार्जुन ने राष्ट्रीय भावना को उजागर किया है । मोहन नामक युवक के द्वारा अपने राष्ट्र के लिए अपनी जान देने के लिए कुरबान हो जाने की बात करके लेखक ने देशवासियों में राष्टप्रेम की भावना को उजागर किया है । आगे एक और उदाहरण में देखे तो - ''अब अदालती भूल-भूलइया में भटकाकर उन्हें वे दम कर देना चाहते है....मोहन माँझी से यह सब छिपा नहीं था ।''१८३ यहाँ पर भ्रष्ट पुलिसतंत्र और अंधी कानून व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है । एक आम इन्सान जो सीधे-सादे ढंग से जीवन गुजार कर रहा है उसे झूठी बातों में फँसाकर कॉर्ट-कचहरी के धक्के लगाने को मजबुर कर दिया जाता है ।

''संगठन का शंख फूक रहे हैं । दो-चार स्वार्थी निशादों का इससे फायदा होगा, यह मैं मानता हूँ । मैथिली महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी साम्प्रदायिक संगठन है सभी का बायकॉट होना चाहिए ।''१८४ यहाँ पर अलग-अलग समुदायों के बीच पनपनेवाली राजनीतिक चालबाजियों का परिचय करवाया गया है । गाँव में अलग-अलग जूथ-दल बनाकर राजनीति का गंदा खेल खेलते ये चेहरे महानगरों के राजनीतिक षड़यंत्रों की झाँकी करवाते हैं । ये लोग अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक नीचे गीर जाते हैं । कुछ न कुछ प्रयत्न करके अपना काम निकालने में ये लोग माहिर हो गये हैं ।

''भोला, गंगा और मोहन माँझी ने जीप रुकते देखा तभी स्कूल की ओर आने लगे । दो हैटवालों को और लट्ठधारी लाल पग्गडवालों को देखते ही उन्हें निश्चय हो गया कि सतधरावाले जमींदारों की यह करतूत है ।''१८५ प्रस्तुत उपन्यास में जमींदारों और मछुआरों के बीच राजकीय दुश्मनावट शुरूआत से ही देखने को मिलती है । उसमें मोहन जो सिपाही की नौकरी करता है उसे पूरे गाँव की राजकीय स्थिति मालूम है । यहाँ पर जमींदारों ने पुलिसवालों को कुछ रुपये देकर मछुआरों के विरुद्ध भड़काया है और वे मछुआरों को पकड़ने आते दिखाई देते हैं ।

''सच, तुम्हारी कसम!
तुम तो कहते थे कि नहीं होगा ।
मैं कोई विधाता थोड़े हूँ ।
ॐ!
ॐ! स्तधरा के जमींदारों का जाल कोई मामूली जाल है ?''[१८६] यहाँ पर दो जूथों के बीच जमीन को लेकर झगड़ा चल रहा है । उसमें जो मुख्य अधिकारी पर तपास आई और उसको सही निर्णय लेना पड़ा, उस बात को लेकर अलग-अलग बातचीत कर रहे हैं ।

''गढ़ पोखर के मामलों में देपुरा के जमींदारों ने गंगा सहनी को फोड़ लिया। सहनी को फुसलाया गया कि उसे ग्राम पंचायत का मुखिया बना दिया जायगा।''[१८७] यहाँ पर गंगा को गाँव का सरपंच बनाने की लालच देकर उसे फोड़ लिया जाता है । व्यक्ति कूर्सी या पद प्राप्त करने के लिए कितनी हद तक गीर सकता है दस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है ।

इस प्रकार पूरे उपन्यास में राजनीतिक परिवेश का सजीव व यथार्थ रूप से वर्णन हुआ है । गँवई लोगों के मानस पर राजनीति की इतनी हद तक असर देखकर पाठक वर्ग को आ चर्य होता है । लेकिन यह वास्तविकता है कि आज देश के कोने-कोने तक राजनीति का गंदा खेल घर कर चुका है । जिससे बच पाना बहुत ही कठिन है ।

आर्थिक दृष्टि से विवेचन :

आर्थिक परिस्थिति में हमने आगे देखा उसी प्रकार आँचलिक जनता के आय के विविध साधन, उनका उपयोग, वैश्वीकरण के कारण उद्‌भवित समस्याएँ आदि का समावेश होता है । प्रस्तुत उपन्यास में आर्थिक परिवेश का चित्रण कुछ प्रकार से हुआ है ।

''मधुरी अब की होली के दिन अठारहवें में प्रवेश करेगी । दूल्हा इकलौता है घर का । उसके माँ-बाप अपनी बहू को अब मायके नहीं रहने देना चाहते । माघ या फागुन तक लड़की को चाहे जैसे विदा करना होगा । कहाँ से जुटायेगा ? कौन

देगा उधार ?''[१८८] मधुरी की शादी हो चुकी है, अब उसका गौना कराने की बात सोचकर उसके माता-पिता परेशान हो रहे हैं । क्योंकि गौना होने पर लड़की ससुराल जाती है और उसको साथ में दहेज के तौर पर कई सारी चीजें देने पड़ती है। लेकिन मधुरी के घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमझोर होने के कारण उसके माँ-बाप को चिन्ता हो रही है और वे इसके लिए किसीके पास से उधार लेने को तक तैयार हो जाते हैं ।

''उपज नहीं रह गई । बाढ़ का दौरा देर से आता तो महुआ, मकई और मूंग की भदई फसलें थोड़ी-बहुत हो जाती । कभी वर्षा की अति कमी उसके अभाव की अति धान की फसलों के लिए दोनों ही स्थितियाँ घातक थी ।''[१८९] यहाँ पर गँवई लोगों की आर्थिक स्थिति का पूरा स्पष्ट चित्र नजर आता है । आँचलिक जनता की आय का प्रमुख साधन खेती होता है । अत: वे लोग पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर रहते हैं । इसीलिए उन्हें वक्त-बेवक्त प्रकृति की मार सहनी पड़ती है और इसी वजह से उनकी आर्थिक स्थिति कमझोर रहती है ।

''भोला नकछेदी और गंगा सहनी ने पिछले वर्ष तीन हजार रुपये नकद गिनकर दो साल के लिए गरोखर का पट्टा लिखवाया था । मछलियाँ निकाले ... ...।''[१९०] यहाँ पर मछवारा अपना पट्टा लिखवाकर पैसा लेता है और अपना काम करते थे । इसमें कुछ लोग पैसा लेकर अपनी मनमानी करते है और गरीबों का शोषण भी करते हैं ।

''जिलेबिया-सिलेबिया खाते-पीते मछुआ परिवार की लड़कियाँ थी । टभकी या गाँज लेकर घर से निकलना उनके लिए शौक की बात थी लेकिन मधुरी और तीरा के लिए वह जीवन की अनिवार्य शर्तो में शामिल था ।''[१९१] यहाँ पर नायिका की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है । लेकिन अन्य मछुआरों की बेटी मौज-मस्ती करती देखकर वह उसका अनुकरण करने की सोच रहा है । इस पूरे अवतरण में आँचनिक जनता की आर्थिक परिस्थिति का स्पष्ट प्रस्तुतिकरण हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आर्थिक परिवेश का यथार्थ निरूपण लेखक ने किया है ।

धार्मिक दृष्टि से विवेचन :

धार्मिक परिवेश का चित्रण कुछ इस प्रकार से देख सकते है -

''उहूँ, अब बस कर आज; रहने दे भोला, टिटहरी रोती है कलमुँही।''[१९२] उपरोक्त गद्यांश में टिटहरी (पक्षी) के बोलने या रोने की आवाज को अँधश्रद्धा के साथ जोड़ा गया है । निश्चित पक्षी के रोने या बोलने से कार्य बिगड़ता है या अपशुकन होता है, ऐसी धार्मिक मान्यता यहाँ पर खुरखुन के शब्दों से व्यक्त हुई है।

''हे भगवान! सृष्टि के इन्हीं तौर-तरीकों में तुम्हें अपने विधातापन का स्वाद मिलता है ?''[१९३] यहाँ पर भगवान के प्रति एक गँवई मनुष्य का समर्पणभाव या एक परोक्ष शिकायत का स्वर मुखरित हुआ है । खुरखुन जो इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है वह गरीबों, मजदुरों पर हो रहे अत्याचारों व अन्यायों के प्रति उग्र स्वर में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहा है । बड़े-बड़े ठेकेदार और अमीर लोग पर व्यंग्य करता हुआ, वह अंतत: भगवान की शरण ले लेता है । यहाँ पर उसके पूरे संवाद में धार्मिक दृष्टि का पूरा अंदाजा प्राप्त होता है ।

''राम! राम! ऐसी भी अशुभ बातें निकाली जाती है! छी! मंगल ने संजीदगी से हटा दिया, बुदबुदाया - क्या अशुभ, क्या शुभ, सभी बराबर है...।''[१९४] यहाँ पर गँवई मनुष्य की हर बात धार्मिकता से जोड़ देने की मानसिकता प्रस्फुटित हुई है। लाभ-शुभ के दायरे में सिमटकर उनका पूरा जीवन इन्हीं धार्मिकता के बीच गुजर जाता है ।

उपन्यास में एक जगह पर कमला मैया (देवी) को उद्‌बोधित करते हुए उसका वंदना गीत भी खुरखुन के द्वारा गाया गया है । इस काव्यांश में भी धार्मिकता की विशिष्ट अभिव्यक्ति पाई जाती है । जैसे -

''ओ कमला देवता,
कमला-नदी के बीचो-बीच ।
तुमने उस बाँध पर फुलवाड़ी लगा दी है ।
अजी, किस फूल की ओढ़ती है ओढ़नी ?
किस फूल का बनाती है परिधान कमला मैया ?
और बिछावन होता है किस रंग के फूल का ?
अजी, वह बेला ओढ़ती है, पहनती है चमेली
बिछाती है अडहुल के फूल !!
अजी कौन-सा फूल वह जुड़े में बाँधती है ?
कौन-से फूल होते हैं मैया का हार ?
अजी, जुड़े में बाँधती है मधुरी का फूल ।
हार होता है खिले कमलों का ।
अजी किस पर सवार होकर जायेगी मैया ?
जाएगी किस पर चढ़कर ?
बहायेगी किस तरफ अपनी धारा ?
हंस पर चढ़कर आएगी कमला मैया ।
होकर मगर पर सवार चली जाएगी ।
तिरहुत (मिथिला) की तरफ बहाएगी धारा ।''[१९५]

''मन्दिर नजर आते ही मंगल गरजा - बम् बम् बम्! बोल प्रेम से बाबा उरबसी नाथ की .....
ज्जै ! .... बाकी लोगों ने कहा ।
शंकर बंभोले की....
ज्जै !''[१९६]

इस पूरे संदर्भ में गाँववाले एक मगर को पकड़ने के लिए जंगल में जा रहे होते हैं और अचानक ही शंकर भगवान के मंदिर को देख लेते हैं तो अपना धार्मिक भाव खोलकर रख देते हैं । परोक्ष रूप से देखे तो वे लोग किसी जोखिमभरा कार्य करने जा रहे होते है या बहादुरी का कार्य करने के लिए जाते समय भगवान का आशीर्वाद प्राप्त करना जरूर चाहते हैं । यही उनकी धार्मिकता का एक पहलू है ।

''दीवारों पर काली माई और जगन्नाथजी की तस्वीरों के अगल-बगल कांग्रेसी नेताओं के फोटों जगमगाने लगे ।''[१९७] यहाँ पर गँवई लोगों के धार्मिक दृष्टिकोण का विपरीत पहलू भी दृष्टिगोचर होता है । जैसे घर की दीवारों पर के भगवान की फोटों के पास अब राजनीतिक नेताओं के फोटों रखने पर उनकी धार्मिकता की गहराई को नापा जा सकता है ।

इस प्रकार पूरे उपन्यास में धार्मिक परिवेश का सचोट वर्णन उपन्यास को सफल बनाने में सहायक हुआ है । नागार्जुन की औपन्यासिक कला के दर्शन यहाँ पर अवश्य होते हैं । धार्मिक अँधविश्वासों को उन्होंने इस तरह से प्रस्तुत किया है कि किसी भी व्यक्ति या जाति की धार्मिक भावना को ठेस नहीं पहुँची है ।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन :

आँचलिकता के एक अंग के रूप में सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में कुछ इस तरह से हुआ है । लोकगीत का एक उदाहरण देखे तो -

''जिनगी भेल पहाड़, उमिर भेल कापाल!
ठन फेफड आहे मोर दिलचन,
नोहियापिरीतिया के जा!!!
आव आव, देखि जा हा !!! ल!!!
उमिर भेल का ! ! ! ! ल! ! !
जीना हुआ मुश्किल, जवानी हुई घातक,
न डालो, न डालो ओ मेरे दिल के चाँच !''[१९८]

जब मधुरी अपना घरकाम करती होती है तब कुछ न कुछ गीत गुनगुनाती रहती है और अपनी मस्ती में वह काम करती रहती है । एक दिन लाल मिर्च पिसने के लिए सिल लेने गई थी तब वो न मिला ऐसा था कि आसपास की चारों -पाँचों झोंपड़ियाँ खाली थी । मधुरी सिल पर लोढ़ा चलाने लगी । चुप्पी अखरी तो मुगल को ध्यान में रखकर गुनगुनाने लगी ।

''कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया!
जुलमी मछरिया चलल मछरिया!
कबहू पकड़ में न आवे मछरिया!
ताल में खेले तलइया में खेले,
कुंइयाँ में डुबकी लगावे मछरिया!
कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया!
जुलमी मछरिया!! ''१९९

जब मछवारा मछलिया पकड़ने जाते हैं तब वे अपने मन को एकाग्र रखकर मछलिया पकड़ते हैं और कुछ लोग खुशनसीब मछलियों का गीत भी बनाकर गाते हैं । जब मधुरी वहाँ से निकलती है तब वह गीत सुनकर अपनी चाल आहिस्ता-आहिस्ता कर देती है और गीत सुनने लगती है ।

''बायें हाथ का पंजा बायें कान पर रखकर गंगा ने दाहिने हाथ को सामने फेला दिया और ऊँचे स्वर में गाने लगा -

'बउआ खइयउ ने!
आवने खइयउ बउआ जैसिड मोतीपूरो मीठाई
हओ....
बबुआ, खाओ! खाओन!'' २००

जब गंगा ने अपनी जाल तालाब के पानी में डाली तो उसमें ढेर सारी मछलियाँ आई । यह देखकर वह गीत गाने लगता है और इस गीत में उसकी पूरी खुशी जाहिर होती हे ।

''सावन है सखि अति भयावन
निठुर पिय नहीं पास, यो!
चपल दामिनि, विकल भामिनि
ककर करती आस यो!
मस भादो, कीच-कांदो...।''२०१

यहाँ पर एक ऐसी प्रेयसी की बात कहीं गई है जो कि अपने प्रेमी के विरह में जल रही है । उसको विरह में जलते हुए महीने बीत गये हैं । अब जब सावन का महीना आता है तो उसका विरह अधिक बढ़ जाता है । इसे सावन का महीना अति भयावह दिख पड़ता है । बारिश के मौसम में कड़कती बिजलियाँ उसके लिए तीर के समान है । इस प्रकार एक विरहाग्नि के विरह की यहाँ पर अभिव्यक्ति हुई है ।

संक्षेपत: सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थ व रोचक निरूपण प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है । जो नागार्जुन की औपन्यासिक कला का उत्तम नमूना है ।

समग्रत: नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों की कथ्यगत विवेचना के पश्चात् हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि नागार्जुन कृत उपरोक्त आँचलिक उपन्यासों में आँचलिकता के सभी लक्षणों व तत्त्वों का निर्वाह बखूबी ढंग से हुआ है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का चोटदार व प्रभावक निरूपण उपरोक्त उपन्यासों में हुआ है । नागार्जुन की औपन्यासिक कला का उत्तम नमूना उपरोक्त उपन्यासों के कथ्य में पाया जाता है । समग्रत: नागार्जुन के उपरोक्त आँचलिक उपन्यासों का कथ्य संपूर्ण रूप से अँचलीय परिवेश का निर्माण कर उपन्यासों को सफलता की चरमसीमा पर ला खड़ा करते हैं । नागार्जुन वाकई एक सशक्त आँचलिक कथाकार व उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य में अपनी एक अलग विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं और उपरोक्त उपन्यास इस बात के सबूत है ।

:: -- ::

;\NE";}IR

१. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ. १८ ।
२. वही, पृ. १९ ।
३. वही, पृ. २० ।
४. वही, पृ. २० ।
५. वही, पृ. २१ ।
६. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ. मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ. २१ ।
७. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ. २१ ।
८. वही, पृ. २१ ।
९. वही, पृ. २२ ।
१०. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ. मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ. २१ ।
११. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ. २३ ।
१२. वही, पृ. २४ ।
१३. वही, पृ. २५ ।
१४. वही, पृ. २६ ।
१५. वही, पृ. २६ ।
१६. वही, पृ. २७ ।
१७. वही, पृ. २८ ।
१८. वही, पृ. ३० ।
१९. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ. मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ. ४७ ।
२०. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ. ३० ।
२१. वही, पृ. ३१ ।
२२. वही, पृ. ३९ ।
२३. वही, पृ. ४० ।
२४. हिन्दी गद्य साहित्य: उपलब्धि की दिशाएँ, डॉ. रामदरश मिश्र, नॉर्थ इण्डिया पब्लिशर्ज एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, २०००, पृ. ९१ ।

२५. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९८५, पृ.१० ।
२६. वही, पृ.१० ।
२७. वही, पृ.१० ।
२८. वही, पृ.१०,११ ।
२९. वही, पृ.११ ।
३०. वही, पृ.१२ ।
३१. वही, पृ.१३ ।
३२. वही, पृ.१६ ।
३३. वही, पृ.१६ ।
३४. वही, पृ.१८ ।
३५. वही, पृ.२० ।
३६. वही, पृ.२४ ।
३७. वही, पृ.४१ ।
३८. वही, पृ.५० ।
३९. वही, पृ.५१ ।
४०. वही, पृ.६१ ।
४१. वही, पृ.९५ ।
४२. वही, पृ.११० ।
४३. वही, पृ.११५ ।
४४. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ.आनन्द मोहन उपाध्याय, अमर प्रकाशन, मथुरा, २००५, पृ.६४ ।
४५. वही, पृ.२०७ ।
४६. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९८५, पृ.१६ ।
४७. वही, पृ.८४ ।
४८. वही, पृ.८५ ।
४९. वही, पृ.८६ ।
५०. वही, पृ.८६ ।
५१. वही, पृ.९८ ।
५२. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ.मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ.४७ ।
५३. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ.आनन्द मोहन उपाध्याय, अमर प्रकाशन, मथुरा, २००५, पृ.१०३ ।
५४. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९८५, पृ.७ ।
५५. वही, पृ.२३ ।
५६. वही, पृ.३९ ।

५७. वही, पृ.४४।
५८. वही, पृ.८८ ।
५९. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ.विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ.१५८ ।
६०. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९८५, पृ.१४ ।
६१. वही, पृ.२० ।
६२. वही, पृ.२७ ।
६३. वही, पृ.३४ ।
६४. वही, पृ.४० ।
६५. वही, पृ.४८ ।
६६. वही, पृ.५४ ।
६७. वही, पृ.५४ ।
६८. वही, पृ.५५ ।
६९. वही, पृ.६७ ।
७०. वही, पृ.७० ।
७१. वही, पृ.१३५।
७२. बलचनमा, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.२०००, पृ.८ ।
७३. वही, पृ.९ ।
७४. वही, पृ.१२ ।
७५. वही, पृ.१२ ।
७६. वही, पृ.१६ ।
७७. वही, पृ.१८ ।
७८. वही, पृ.२६ ।
७९. वही, पृ.३६ ।
८०. वही, पृ.४६ ।
८१. वही, पृ.५९ ।
८२. वही, पृ.६६ ।
८३. वही, पृ.११५ ।
८४. वही, पृ.१२४।
८५. वही, पृ.१४३ ।
८६. वही, पृ.१४८ ।
८७. वही, पृ.४१।
८८. वही, पृ.५१ ।
८९. वही, पृ.५२ ।
९०. वही, पृ.५३ ।

९१. वही, पृ.८१ ।
९२. वही, पृ.१३९ ।
९३. वही, पृ.६ ।
९४. वही, पृ.७ ।
९५. वही, पृ १९ ।
९६. वही, पृ २७ ।
९७. वही, पृ २९ ।
९८. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ.मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ.४७ ।
९९. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ.विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ.१४४ ।
१००. बलचनमा, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.२०००, पृ.२५ ।
१०१. वही, पृ.२६ ।
१०२. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ.विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ.१६० ।
१०३. बलचनमा, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.२०००, पृ.१२७ ।
१०४. वही, पृ. १० ।
१०५. वही, पृ. १३२ ।
१०६. वही, पृ. १५३ ।
१०७. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ.विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, २०००, पृ.५५ ।
१०८. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.३ ।
१०९. वही, पृ. ६ ।
११०. वही, पृ. १४ ।
१११. वही, पृ. १४-१५ ।
११२. वही, पृ. २२-२३ ।
११३. वही, पृ. २६ ।
११४. वही, पृ. ३६ ।
११५. वही, पृ. ४३ ।
११६. वही, पृ. ४३ ।
११७. वही, पृ. ५५ ।
११८. वही, पृ. ८० ।
११९. वही, पृ. ११२।
१२०. वही, पृ. ४१ ।
१२१. वही, पृ. ४१ ।

१२२. वही, पृ. ४१ ।
१२३. वही, पृ. ६७ ।
१२४. वही, पृ. ९८ ।
१२५. वही, पृ. ११३ ।
१२६. वही, पृ. ४ ।
१२७. वही, पृ. १० ।
१२८. वही, पृ. ७१ ।
१२९. वही, पृ. ३७ ।
१३०. वही, पृ. ३८-३९ ।
१३१. वही, पृ. ४२ ।
१३२. वही, पृ. ४४ ।
१३३. वही, पृ. ४४।
१३४. वही, पृ. ७२ ।
१३५. वही, पृ. ७६ ।
१३६. वही, पृ. ८५ ।
१३७. वही, पृ. ९१-९२ ।
१३८. वही, पृ. ९४ ।
१३९. वही, पृ. १०२-१०३ ।
१४०. वही, पृ. ४ ।
१४१. वही, पृ. १२ ।
१४२. वही, पृ. ११० ।
१४३. वही, पृ. १२४।
१४४. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल पब्लिकेशन्स, बम्बई, १९५४, पृ. २८ ।
१४५. वही, पृ. ९ ।
१४६. वही, पृ. ३९ ।
१४७. वही, पृ. ६२-६३ ।
१४८. वही, पृ. ६६ ।
१४९. वही, पृ. ७६ ।
१५०. वही, पृ. ४० ।
१५१. वही, पृ. ७४ ।
१५२. वही, पृ. ९६ ।
१५३. वही, पृ. १०८ ।
१५४. वही, पृ. १११ ।
१५५. वही, पृ. १३८ ।

१५६. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, डॉ. मोहम्मद जीमल अहमद, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ. २०७ ।
१५७. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल पब्लिकेशन्स, बम्बई, १९५४, पृ. ३७ ।
१५८. वही, पृ. ४१ ।
१५९. वही, पृ. ४८ ।
१६०. वही, पृ. ८४ ।
१६१. वही, पृ. ८७ ।
१६२. वही, पृ. ३७ ।
१६३. वही, पृ. २० ।
१६४. वही, पृ. ३८ ।
१६५. वही, पृ. ४६ ।
१६६. वही, पृ. ६० ।
१६७. वही, पृ. १०६ ।
१६८. वही, पृ. ११४ ।
१६९. वही, पृ. २८ ।
१७०. वही, पृ. १०४ ।
१७१. वही, पृ. १२० ।
१७२. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. १९९८, पृ. २५ ।
१७३. वही, पृ. २८ ।
१७४. वही, पृ. ३० ।
१७५. वही, पृ. ३८ ।
१७६. वही, पृ. ४७ ।
१७७ वही, पृ. ५४ ।
१७८. वही, पृ. ७५ ।
१७९. वही, पृ. ८६ ।
१८०. वही, पृ. १११ ।
१८१. वही, पृ. २५ ।
१८२. वही, पृ. ३२ ।
१८३. वही, पृ. ३७ ।
१८४. वही, पृ. ३८ ।
१८५. वही, पृ. ७० ।
१८६. वही, पृ. ९२ ।
१८७. वही, पृ. १०६ ।
१८८. वही, पृ. १४ ।
१८९. वही, पृ. २० ।

१९०. वही, पृ. ३४ ।
१९१. वही, पृ. ७७ ।
१९२. वही, पृ. १० ।
१९३. वही, पृ. ४३ ।
१९४. वही, पृ. ५२ ।
१९५. वही, पृ. ५६ ।
१९६. वही, पृ. १०२ ।
१९७. वही, पृ. १०६ ।
१९८. वही, पृ. २३ ।
१९९. वही, पृ. २७ ।
२००. वही, पृ. ६४ ।
२०१. वही, पृ. ९५ ।

अध्याय – ४

नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में शिल्प विधान ।

४.१ भाषा ।
- ४.१.१ तत्सम् शब्द ।
- ४.१.२ तद्भव शब्द ।
- ४.१.३ आगत शब्द ।
- ४.१.४ देशज शब्द ।

४.२ शैली ।
- ४.२.१ वर्णनात्मक शैली ।
- ४.२.२ काव्यात्मक शैली ।
- ४.२.३ पूर्वदीप्ति शैली ।
- ४.२.४ व्यंग्य शैली ।

४.३ मुहावरे ।

४.४ कहावतें ।

४.५ बिम्ब ।

४.६ प्रतीक ।

अध्याय : ४

नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में शिल्प विधान

नागार्जुन हिन्दी आँचलिक उपन्यास साहित्य के बहुप्रचलित लेखक हैं । बहुमुखी व्यक्तित्त्व के धनी नागार्जुन ने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में कलम चलाई है । उन्होंने अपने पूरे जीवनकाल दौरान ११ से भी ज्यादा उपन्यासों की रचना की हैं । यहाँ पर आँचलिकता के संदर्भ में उनके उपन्यासों के शिल्प विधान को विवेचित करने का प्रयास किया गया है ।

४.१ भाषा :

सामान्य रूप से भाषा शब्द का अर्थ बोलना या उच्चारण करना होता है । भाषा शब्द की कुछ परिभाषाएँ देखे –

(१) ''भाषा शब्द का अर्थ होता है वक्तृता, बात, बोली आदि ।''[१]

(२) ''भाषा मानव समाज में वाग् ध्वनियों द्वारा मानव के मनोगत भाव विचार की अभिव्यक्ति का माध्यम है ।''[२]

(३) ''मुख से निकलनेवाली व्यक्त ध्वनियों अथवा सार्थक शब्दों और वाक्यों का वह समूह जिसके द्वारा मन के विचार दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं ।''[३]

(४) ''दैनिक व्यवहार की भाषा का अभिप्राय संकुचित और तात्कालिक होता है । उसका लक्ष्य सूचना तथा विवरण प्रदान करना होता है ।''[४]

आँचलिक उपन्यासों की भाषा के सम्बन्ध में चचाएँ होती रही है । नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में वाक्य के वाक्य स्थानीय भाषा के दिये है । ऐसी स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग सर्जन की अनिवार्य मांग है । इससे एक तो स्थान विशेष का वातावरण चित्रित किया जा सकता है, दूसरे वहाँ के जीवन को जीवंतता और उसकी मूल सहजता को अंकित किया जा सकता है । भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज नहीं होती, वह स्थान विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूति के साथ अनिवार्य भाव से संपृक्त होती है । अतः कुछ शब्द और मुहावरे इस प्रकार वहाँ के जीवन-सत्यों के साथ जुड़े होते हैं, कि वे सत्य विशेष के साथ स्वतः लगे हुए चले आते हैं । विशेष प्रकार की अनुभूति को कहने के लिये जब हमारी तथाकथित साहित्यिक भाषा में ठीक-ठीक शब्द नहीं मिलते, तब स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखक की अनिवार्य विशेषता हो जाता है ।

भाषा तो बहता नीर है । वह बोलियों के शब्दों को समेट कर ही शक्तिमान बन सकती है । मसलन खड़ी बोली हिन्दी में अपने कितने शब्द हैं जो समूचे जीवन की विविध वास्तविक्ताओं को व्यक्त करने में समर्थ हों ? विभिन्न बोलियों के शब्दों के प्रयोग से हिन्दी का शब्द कोष और भी समृद्ध होगा ।

नागार्जुन एक आँचलिक उपन्यासकार हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में जिस प्रदेश विशेष का चित्रण किया है वहाँ की अँचलीय भाषा को भी बखूबी चित्रित किया है । ''भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज नहीं होती, वह स्थान विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूति के साथ अनिवार्य भाव से संपृक्त होती है ।''५ नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में बिहार के दरभंगा तथा मिथिला प्रदेश के अँचलीय शब्दों को प्रयोग किया है ।

भाषा की विवेचना में शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान है । शब्दों के अंतर्गत तत्सम् शब्द, तद्भव शब्द, आगत शब्द और देशज शब्दों का अध्ययन किया जाता है ।

४.१.१ तत्सम् शब्द :

''संस्कृत के शब्द, जो अपने मूल रूप में हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होते हैं, तत्सम् शब्द कहलाते हैं ।....तत्+सम अर्थात् तत्सम् । तत् का अर्थ है वह और सम् का अर्थ है समान, इसप्रकार तत्सम का अर्थ हुआ - उसके (संस्कृत के) समान।''[५]

''साहित्यिक हिन्दी में तत्सम् अर्थात् प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के साहित्यिक रूप अर्थात् संस्कृत के विशुद्ध शब्द ।''[६]

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है । जो इसप्रकार है -

नक्षत्र, नील, चंचल, जलराशी, तरंग, अंजलि, तिथि, व्यवधान, निशा- शेष, अभिव्यक्ति, आलोक, गृहस्वामी, क्षुधा, लक्ष्मी, अप्रत्याशित, अपहास, संक्रांति, पवित्र, शुभारंभ, बृहत्तम, प्रतिष्ठान, सामर्थ्य, गृहपति, अंतर्जगत्, पंक्तिबद्ध, ऋतु, शेष, ध्वनि, उपालंभ, मुखमंडल, ग्रीष्म, प्रवचन, निषाद, अभ्यागत, साम्प्रदायिक, श्रमदान, आह्वान, उत्सुक, अनासक्ति, द्वितिया, प्रथमा, अंतर्द्वन्द्व, पृष्ठभूमि, मधुशाला, त्रिमूर्ति, दृष्टि, शून्य, चतुर्थाश, प्रायश्चित, परिधान, बन्ध्या, मानसपटल, मर्मस्थल, मुकुट, कल्पना, चिरस्मरणीय, नृत्य, दलित, दुहिता, चरणधूलि, निष्प्राण, सार्वजनिन, कुत्सित, कोपभोजन, सूत्र, युगान्तकारी, परिवर्तन, अश्रुधारा, शिलान्यास, धुरंधर, विश्लेषण, अनुनय, सद्यः स्नाता, निरुत्साह, अतिवृष्टि, प्रकांड, स्मृति, अग्नि, अपलक, प्रसारित, पाठशाला, दर्शन, श्रेष्ठ, सत्यता, धर्माचार्य, वेदाचार्य, सत्संग, पूज्य, यदा-कदा, पुण्य-प्रताप, अभिवादन, कुण्ठित, विशालकाय, आद्र, आह्लादित, साक्षी, आजीवन, कौमार्य, हत्प्रभ, आंतरिक, विशुद्ध, गृहउद्योग, ख्याति, क्रान्ति, दुराग्रह, साप्ताहिक, गोष्ठि, धराशायी, निस्संग, आत्मीय, उत्सर्ग, पवित्र, रीति, संस्कार, दीर्घायु, आवश्यक, आशीर्वाद, काया, ज्येष्ठ, बलात्कार, कृपादृष्टि, अग्रिम, ज्ञान, कीर्तिमान, मितभाषी, आवृति, ब्रह्मचर्याश्रम, हठात्, प्रलयकारी, भयावह, आनंद, स्पर्श, अधीर, ग्राम, भ्रष्ट, देवतुल्य, आतंकित, पाकशास्त्र, भाषण, निवृत, त्यक्ता, अपूर्व, निरुत्तर, कुशाग्र, निरक्षर, व्यभिचार, काया, शोकाकुल, द्वंद्व, इश्वरप्रदत्त, अवांछनीय, आक्रोश, वात्सल्य, गंध, स्वाध्याय, प्रवर्तक, सात्विक,

तत्सत्, प्रिय, नाटकशाला, कलख, धारणा, भीषण, साकार, सर्वसम्मति, पगरव, दुर्लभ, संस्कृति, खलनायक, क्रमिक, पुरातन, सर्वव्यापी, वेगवान, पारिवारिक, चिकित्साशास्त्र, यौन, अँचल, तेजोमय, क्षणिक, रात्रि, मद्धिम, जनपद, पंक्तिबद्ध, परास्त, आच्छादित, आत्मसात, रक्षिता, परीक्षा, अतृप्त, भोगविलास, मुक्त, भावावेश, प्रतिबंध, अभिनंदन, सर्वाधिकार, वसन्तोत्सव, धर्मभीरु, मंत्रमुग्ध, स्थान्तरण, राष्ट्र, समाजीकोत्थान, प्रार्थना, कर्तृत्व, प्रशिक्षण, उत्तरदायित्व, पदाधिकारी, दुर्गति, अर्थोपार्जन, नारी, अनूमति, कर्तव्यनिष्ठ, प्रतिकुल, आश्वस्त, गर्भित आदि ।

इसप्रकार नागार्जुन ने अपने सभी उपन्यासों में उपरोक्त शब्दों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है ।

४.१.२ तद्भव शब्द :

''संस्कृत के शब्द, जो उच्चारण के सुविधानुसार बदलकर (बिगड़कर) हिन्दी में आ गये हैं, तद्भव शब्द कहलाते हैं ।.... तत्+भव अर्थात् तद्भव । तत् का अर्थ है वह और भव का अर्थ है उत्पन्न, इसप्रकार तद्भव का अर्थ हुआ उससे (संस्कृत से) उत्पन्न ।''७

''हिन्दी शब्द समूह में सबसे अधिक संख्या उन शब्दों की है, जो प्राचीन आर्यभाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होते हुए चले आ रहे हैं । वैयाकरणों की परिभाषा में ऐसे शब्दों को तद्भव कहते है ।''८

तद्भव शब्दों का प्रयोग हम अपनी रोजमर्रे की भाषा में करते हैं । तद्भव शब्दों के प्रयोग से निश्चित अँचल विशेष के जीवन से सामीप्यता रहती है और आँचलिक जीवन को स्वाभाविकता से अभिव्यक्त किया जा सकता है । अब नागार्जुन के उपन्यासों में तद्भव शब्दों के प्रयोग को विस्तृत रूप से देखे –

अगुवानी, इन्तजाम, गाछ, निठल्ला, बदमाश, झंझट, जतन, बाँटबखरा, बपौती, जनाना, बतंगड, हेर–फेर, चर–चबैना, नपनी, रासन, पतोहू–नतोहू, धकिया–मुकिया, जोगाड, पवित्तर, चिरैया, कोखजली, दीया, भाड, टूँडदार,

टोना-टटका, माँझिल, गुन-सहुर, डँडीदार, पियर, फोकट, गुहार, निहाल, तालमेल, कानाफूसी, चहलकदमी, घोरधुप्प, मुँगाई, फुसफुसाहट, कातिक, हथपोई, थाह, जुलुम, खटास, चाकरी, जार-बेजार, चुडैल, न्योता, जतन, जोग, चमाइन, बाभिन, जुगाड, घरवाला, थरथरी, नुक्कड, गवैया, काई, कोठेदार, हरियर, नक्कासी, मऊनी, सिकहुली, चौउवा, कनअँखिया, बाना, बेतहाशा, छाँह, दुआर, मटर-पटर, धड़ाधड़, किलबिल, आँचर, अगोर, हँसोडा, छुमंतर, पंडित, जब्बै-तब्बै, कटान, लिहाज, खटिया, सुरसुरा, चुहिया, पतुरिया, सबुर, लोटपोट, बूँदा-बाँदी, पीलपावेदार, ओसारा, मुँहार, माई, कोठरिया, बौरा, पोटली, चौपट, चिट्ठी-पतरी, चकमक, गोलमाल, चिचियाती, छिनाल, नखरा, घाघ, सोंधी, बैठकी, बतियाना, करतब, कलेवा, कनपटी, बूझता, जाहिल, मलिकाइन, मुँहामुँही, पाँवलागी, गोरू, बोआई, सुराज, दढ़ियल, नकियाई, बडोत्तरी, भेदिया, भीतरिया, बढोत्तरी, मूरख, अरवर, ढिलाई, बथान, जंजाल आदि ।

उपरोक्त रूप से नागार्जुन ने तद्भव शब्दों का प्रयोग बखूखी ढंग से अपने उपन्यासों में किया है ।

४.१.३ आगत शब्द :

''जो शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाओं से आकर हिन्दी भाषा में मिल गये हैं, उन्हें विदेशी (आगत) शब्द कहते है। ''९

नागार्जुनजी के उपन्यासों में आगत शब्दों के प्रयोग को देखे तो -

अंग्रेजी शब्द :-

मिनट, पाकिट, फुट, ब्रेक, स्टेशन, बुक, ट्रेन, प्राइवेट, मास्टर, बुकिंग, क्लर्क, जंक्शन, रिक्शा, टैक्स, रेट, सिगरेट, डिक्शनरी, बुकडीपो, टायर, स्टूल, टेबूल, मोटर, ऑफिस, प्रोजेक्ट, एडमिनिस्ट्रेशन, बॉर्ड, इंजीनियर, मशीनरी, ट्रक, रेलवे, पेसेंजर, एडवान्स, मिडिल, पास, मैट्रिक, फाइनल, डिस्ट्रिक्ट, कम्पनी, ड्यूटी, ट्यून, फुटबॉल, मैच, सैनिटोरियम, कमेटी, पार्टी, मेम्बर, मिनिस्टर, बायकाट, रिकार्ड,

माइक, लाउड, स्पीकर, नेशनल, कैडेट, कोर, कैमरा, रोमान्स, हाफ, युनिफार्म, अलमुनियम, प्वाइंटमैन, कलक्टर, कान्फ्रेस, सेक्रेटरी, कम्युनिज्म, सेटलमेन्ट, एश्युरेन्स, कोमिन्ट्रेटर, चार्ट, प्रायमरी, फाइनल, प्राइवेट, सिट, स्मार्ट, पोलिस्टर, स्कर्ट, अप्लाई, कम्पोजिंग, फैक्ट्री, सर्विस, बैंक, कैशियर, मशीन, मार्कशिट, पार्टटाइम, स्टार्ट, क्लब, क्रोस, डेन्जर, मेकअप, म्युनिसिपल, स्प्रिंग, कनवेसिंग, प्रेस, ट्रान्सफर, ओपरेशन, लास्ट, लिस्ट, ब्रेक, मनीऑर्डर, डिग्री, ट्रेनिंग, लेडिज, कोर्ट, स्टेशन, फैशनेबल, एक्सप्रेस, आउट, सेण्टर, इंजेक्शन, रिजल्ट, लेक्चर, जुनियर, टाई-कोट, ओब्जेक्शन, योरओनर, फेवर, पिस्तौल, कमाण्ड, इन्जन, मफलर, हाईकोर्ट, फेल, क्रासिंग, सोसायटी, युनिवर्सिटी, एक्सप्रेस, एक्सपर्ट, राईट, पेट्रोमक्स, गैस, डिजाइन, लाइन, न्यूजपेपर, बाथरूम, लाइट, स्वीमिंग, ड्राइवर, फायर, चेप्टर, बी.ए, एम.ए., ओर्डर, आइडिया, एक्सीडेन्ट, स्टाफ, प्रेक्टिकल, ग्रूप, गर्ल्स, कण्डीशन, जजमैन्ट, मीटिंग, ब्रेड, प्रोफेसर, पीरियड, पैसेन्जर, ट्राफिक, सिगरेट, हेलीकोप्टर, डायरी, पोस्ट, इन्सपेक्टर, टीचर, स्टेज, फ्रेन्ड, मिक्स, बेन्च, प्रेक्टिस, गेस्टहाउस, अण्डर, मेण्टली, रिमार्क्स, प्रिन्सिपाल, क्लास, फिनाइल, सिविल, फास्ट, गेट, ऑटो, नंबर, युनियन, ऑफिस, अपडाउन, कंट्रोल, अप्लीकेशन, स्लेट, प्रिन्टेड, मिलिटरी, इलेक्ट्रिक, फुल, स्पीड, प्लीज, प्लास्टिक, मैडम, सोफासेट आदि ।

अरबी-फारसी शब्द :-

अवाम, किस्मत, चाँद, करारी, मशक्कत, दस्तखत, फर्माइश, निहायत, तजुर्बेकार, इम्तिहान, दिलचस्पी, एतराज, बा-अदब, शौकिया, तरन्नुम, शहनाई, खबर, बदनाम, सलाम, तालीम, गलतफहमी, नमकहराम, खुमारी, वापिस, ताबेदार, हुकुम, काबिल, खिलाफ, मिजाज, मसखरी, रिहा, ख्वाहिश, मंजिल, माहिर, रोज, खुशामद, बन्दगी, हाजिरी, दलील, दगाबाजी, इन्कार, इस्तीफा, नाजुक, नाराज, मातम, ताज्जुब, खत, लावारिस, फरार, मशहुर, तारीफ, हरगिज, इल्जाम, इन्कलाब, नफरत, नीलाम, जेब, उम्र, हैसियत, खौफ, निगाह, महफिल, वाजिब, इन्सान, दाखिल, खूबसूरत, बेवजह, फरियाद, मुदत, इजलास, मनहुस, दहलीज, पनाह, कसूर, गुनाह, बदसूरत, नाजायज, चहलकदमी, कामयाब, इलाका, याद, कबूल, शौक, आवाज, गुजारा, मेहरबानी, असर, अखबार, तमाचा, मौसम, नजर, इलाज, आबादी, जायज, बेदखल, कोशिश, रिवाज, इरादा, हिम्मत, गलत,

वकालत, सिर्फ, मजबूर, इन्साफ, कीमंत, नाबालिग, बेदाग, बेरहमी, सवाल, खबर, उम्मीदवार, दरम्यान, मक्कार, दगाबाज, जुलूम, मेहरबानी, खुश, हलाल, शक, हस्ती, जुल्म, चश्मदीद, फरियाद, रिहा, तबादला, दामन, तरूरत, एतराज, बावजूद, अंदाज, दस्तक, शर्त, वफादार, जुबान, गुलाम, हरकत, रिफारिश, जुनून, सलाम, मरीज, उम्मीद, औलाद, तमाशा, गुमराह, इल्जाम, जशन, वारदात, कौम, गुजारिश, नकाब, तमाशबीन, जुदा, हमउम्र, हुनर, इत्मीनान, अदालत आदि ।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अंग्रेजी तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है । इन शब्दों के अध्ययन से उनकी भाषा विषयक क्षमता का परिचय प्राप्त होता है । नागार्जुन की बहुलता तथा अध्ययनशीलता का परिचय मिलता है । ये सारे शब्द हमारी आम जिन्दगी में इतने घूल-मिल गये हैं कि अब इनको निकालना नामुनकिन-सा लगता है । विदेशी भाषा के शब्दों के प्रयोग से हिन्दी भाषा समृद्ध रही है तथा प्रभावशाली ढंग से इनका प्रयोग किया जाता रहा है।

४.१.४ देशज शब्द :-

''जो शब्द न तत्सम् है, न तद्भव है और न विदेशी है, वरन् अपने देश में बने और प्रचलित हुए हैं उन्हें देशी या देशज शब्द कहते हैं ।''१०

नागार्जुनजी के उपन्यासों में देशज शब्दों के प्रयोग को देखे तो -

पोखर, तलइया, चभच्चा, गरोखर, सेंवार, थाह, ढोंके, गोटियो, दंतुर, खोडर, भाकुर, मोदनी, निमस्तीन, मलाही, गोंढियारी, कूकुर, हेमाल, बोरसी, ओरीयानी, पुआल, बेतरतीब, गांज, टापी, सहत, सरैला, पुआल, भुंजिया, चंगेरी, मछगिद्धा, सिधाई, पचमेर, सकोरा, बिबाइया, दोहर, इंच्चा, मारा, कतरा, पोठी, पोठा, टेंगरी, टेंगरा, गरई, गरचुन्नी, सिंगी, मंगुरी, अन्हई, धनहा, तीरा, अन्हई, भूजा-फहरी, दहलान, चुल्हवा, तत्ते, डोंगी, पेंदी, बसूला, रुखान, बटखरा, गरोखर, पितोझिया, साहड़, बड़हल, गाँज, टापी, गोनड, फूलपरास, दोनही, पोठिया, मरइली, खपियार, धनी, सतोल, दुआली, ठेंठी, कोकटी, भोटिया, पच्छ, कल्लर, भोकर, नथुनी, गोंढ, लत्ती, गोनड़, भभाकर, खुचरा, कोरइला, मींगणी, सरगउली, ढारस, मचान, झिल्ली,

कचरी, फरही, दुसाही, ओडघा, नेसुहा, मूँजहे, गोंठिल, केरूलाही, गंदुमी, पौउठ, रजघर, ओराय, अलसी, मड़हा, हुरा, थाम्ह, कठऊ, खेप, मौनी, महुली, पतरकी, मँडार, गँऊखे, निखरहरी, ओरउनी, पियरा, अगोला, गूठा, ठीहे, बालने, जायड, बल्लम, कोरट, गुरची, सगियाना, शैल, बाँबी, बिलनी, बरौनी, जोंधरी, कमोरी, हरसाजी, कुरथी, रसियाव, फरा, तरुप्पर, चोंगा, गोझा, सोहारी, हरोखत, पंधाय, थुथुनाने, खैलरी, नैनू, खरई, पना, कलबियही, चीलर, चौगोडिया, छगोडिया, मायन, पाइथन, वीरा, सईत, कुढ़ना, हुमसा, गँजहड़ी, सौरियाही, ढाक, टगना, नर्री, परचत, पालटी, चानस, खरसेवर, लासा, रोऊली, लोखडिया, आरव, छौद, घेंघा, खरहरा, मजेठी, पना आदि ।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में प्रभावक ढंग से देशज शब्दों का प्रयोग किया है । जिन्हें समझने में भी कोई बाधा या रुकावट नहीं आती है । समग्र रूप से कहे तो ''हिन्दी किसी एक रूपा भाषा का नाम नहीं है । वह भाषा परंपरा का नाम है, जिसके अंतर्गत हिन्दी की सभी विभाषाओं एवम् बोलियों का समावेश हो जाता है ।''[११]

४.२ शैली :

फ्रेंच भाषा में एक कहावत है - ''स्टाईल इझ ध मैन'' अर्थात् शैली ही मनुष्य के व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है । संस्कृत साहित्य में शैली के लिए 'रीति' शब्द का प्रयोग किया गया है । साहित्यशास्त्र के संदर्भ में शैली अर्थात् लिखने का विशिष्ट ढंग या पद्धत्ति । ''शैली यानी वाक्य रचना का वह ढंग जो लेखक की भाषा संबंधी निजी विशेषताओं का सूचक होता है ।''[१२] ''शैली यानी उक्ति या रचना का प्रकार ।''[१३]

जिस प्रकार एक चित्रकार चित्र बनाने के लिए विविध सामग्री का प्रयोग करता है उसी प्रकार साहित्यकार या लेखक भी भाषा के विविध अंगों का प्रयोग करता है । नागार्जुन ने भी अपने आँचलिक उपन्यासों में भावाभिव्यक्ति के लिए विविध शैलीगत प्रयोग किये हैं । जो इस प्रकार से है -

४.२.१ वर्णनात्मक शैली ।
४.२.२ काव्यात्मक शैली ।
४.२.३ पूर्वदीप्ति शैली ।
४.२.४ व्यंग्य शैली ।

४.२.१ वर्णनात्मक शैली :

वर्णनात्मक शैली के अंतर्गत किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या परिस्थिति का वर्णन किया जाता है । यह वर्णन इतना सजीव और प्रभावक ढंग से किया जाता है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते भावविभोर हो जाता है । इसके कुछ उदाहरण देखे तो -

''फूफी को आग्रहपूर्वक आसन पर बैठाया गया । गोरा और छरहरा बदन, गोल-मटोल चेहरा । नन्हे-नन्हे से पतले होंठ । गंगा-जमनी बाल । कानों में छोटे-छोटे मगर लटक रहे थे । शांतीपुरी धोती पहने हुई थीं । गले में बारीक रुद्राक्षों की माला शिवभक्ति की सबूत थी या शौक की, कहा नहीं जा सकता।''[१४] यहाँ पर गाँव की एक स्त्री का वर्णन किया गया है । जिससे पाठक उन लोगों के पहनावे और शौक के बारे में जानकारी प्राप्त करता है ।

''उनकी धोती लाल-सुर्ख रहती थी । गले में हाथीदाँत के खरादे हुए दानों की माला थी । दाई बाँह पर दो बड़े-बड़े रुद्राक्ष और एक बड़ा-सा मूँगा पहनते थे। दाढ़ी-मूँछ, बाल और नाखून कभी कटाते नहीं थे ।''[१५] यहाँ पर एक पंडित का वर्णन बहुत ही वास्तविक रूप से किया गया है । जिससे पूरा एक चित्र उपस्थित हो उठता है ।

''वह बहुत सुन्दर थी । चेहरे में लम्बाई-गोलाई की अपेक्षा फैलाव ही अधिक था । आँखे बड़ी-बड़ी । नाक नुकीली । कपार छोटा । बाल खूब काले और एड़ी तक लम्बे । गोरी तो थी ही । गले की आवाज नरम और सुरीली थी । हाथ-पैर छोटे-छोटे, लाल और भरे हुए, मानो आम के पल्लव हो ।''[१६] यहाँ पर रतिनाथ की चाची का वर्णन रोचक बन पड़ा है । पूरा शारीरिक वर्णन उसके व्यक्तित्त्व का आभास करवाता है ।

''आँगन में पच्छिम वाली निवास-भूमि खाली पड़ी थी । उस पर मौसम के मुताबिक भिंडी, बैंगन, मिर्चा वगैरह उपजाया जाता । इससे पूरब तालाब था, दच्छिन बाग और बाँस । बाग में चार ही छः आम के पेड़ थे । दो पेड़ कटहल के, एक बड़हल का, एक सहिजन का । अड़हुल, इन्द्रकमल, करबीर, कनैल, थलकमल, थल-कुमुदिनी, हरसिंगार, बेला - दो-दो, एक-एक झाड़ इन फूलों के थे। जम्बीरी नींबू का भी एक बड़ा-सा झाड़ था ।''१७ यहाँ पर प्रकृति का सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है । जिससे एक पूरा प्राकृतिक बिम्ब खड़ा हो गया है । नागार्जुन के उपन्यासों में ऐसे वर्णनों की भरमार पाई जाती है क्यों कि वे एक उच्च कोटि के कवि भी थे ।

''काले पाख की दशमी तिथि का अधूरा पीला-पीला चाँद निकल आया था। तारे अब भी ढीठ बने हुए थे । अपनी-अपनी शान में चमक रहे थे । गरोखर की हल्की-हल्की पतली-पतली भाप ऊपर उठकर पूस के उन कुहासों को घना बना रही थी ।''१८ यहाँ पर सुन्दर रात्री की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया गया है । जिससे पाठक हृदय रोमांचित हो उठता है । एक और जगह प्रकृति की शोभा का वर्णन देखे तो - ''असाढ़ से लेकर कार्तिक-अगहन तक धनहा चौरं का इतना भाग अथाह पानी की वजह से झील बना रहता था । शरद् ऋतु में खुलकर खिलने वाले नीले कमलों की बहार देखते ही बनती थी । हँसुली की-सी शकल वाली वह मनोरम झील ही धनहा चौरं के यश में चार चाँद लगाए हुए थी ।''१९

''मछुआ-संघ की अधमीती कुटीर के आगे भिंड का जो ढालू मैदान था, वह सामने नीचे की ओर रबी की फसलों से लहराती हुई कछारों में खो गया था।''२० यहाँ पर प्रकृति का सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है ।

''हाथ-पैर खूब फैले हुए । जिस प्रकार लम्बा-छरहरा था, डील-डौल उतनी मोटी नहीं थी । कमर में मटमैली धोती लपेटी हुई थी, बाकी बदन यों ही खाली था । छाती, पीठ, जाँघों और बाहों पर मुलतानी मिट्टी-सा हल्का पीलापन छाया हुआ था ।''२१ यहाँ पर भी नागार्जुन की सुन्दर लेखन शैली का परिचय प्राप्त होता है । एक और उदाहरण देखे - ''गेहुँआ से मढ़ा हाड़ों का कमजोर ढाँचा । फाँक-सी आँखे, नुकीली नाक । बड़े-बड़े कान । पतली मूँछ, चिकने गाल । पहनावे में मामूली धोती, कंधे पर गमछा चारखाना ।''२२

इस प्रकार नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों के शिल्पगत अध्ययन के अंतर्गत वर्णनात्मक शैली का बहुत ही प्रभावक ढंग से चित्रण हुआ है । विविध परिस्थिति, घटना, व्यक्ति आदि के वर्णन में नागार्जुन की कलम खूब चली है । इनके द्वारा किये गये वर्णनों में कहीं पर भी क्लिष्टता या दुरुहता नहीं खटकती । पाठक वर्ग को इनके वर्णन समझने में कहीं भी रुकावट या परिश्रम का सामना नहीं करना पड़ा है । इस प्रकार नागार्जुनजी की वर्णन शैली बहुत ही प्रभावशाली रही है ।

४.२.२ काव्यात्मक शैली :

नागार्जुन एक कवि हृदय इन्सान थे । हाँलाकि उनके उपन्यासों में भी उनकी इस काव्यात्मकता का परिचय प्राप्त हो जाता है । उन्होंने अपनी इस काव्यात्मकता के अनेक उदाहरण उपन्यासों में कई जगहों पर चित्रित किये हैं । जिसे अब देखे ।

''गौरी की माँ के सामने का समूचा आसमान तारों से झलमल-झलमल कर रहा था । नक्षत्रखचित यह रजनी उसको वैसी ही लग रही थी जैसी चाँदी के दस-पाँच गहनों से भूषित कोई साँवली औरत ।''[२३] यहाँ पर नागार्जुन जी ने सुंदर प्रकृति की शोभा का वर्णन बखूबी ढंग से किया है ।

''शरद् ऋतु की चाँदनी में नील, निर्मेध आकाश, बिखरे नक्षत्रों की अपनी जमात के साथ बलुआहा पोखर के श्यामल वक्षस्थल पर जब प्रतिफलित हो उठता, तो भींड पर बैठे हुए निपट, निरक्षर दुसाध-मुसहर भी कवि की तरह उसाँसे भरा करते! उन्हें जाने अपने जीवन की मधुमय घडियाँ एक-एक कर याद आतीं, या क्या!''[२४] यहाँ पर भी प्रकृति की सुंदर शोभा का वर्णन किया गया है । लगता है जैसे नागार्जुन ने प्रकृति के एक-एक अंग को जाँच-परखकर उनका भावनात्मक वर्णन किया है जिससे पाठक वर्ग उसकी ओर आकर्षित हुआ है ।

''बागमती, तू धन्य है ! तेरा पानी विद्यापति की साँस से सुरभित है और तेरे तट के बालुका-कण दर्शनिकों की दृष्टि से भास्वर । तेरा प्रवाह जिस भूमि पर से एक बार भी गुजर जाता है, वह सदा के लिए रत्नगर्भा बन जाती है । बागमती, तू धन्य है ! शरद् ऋतु की पूर्णिमा के इस निशीथ में मन करता है, मैं अपनी देह तेरे

प्रवहमान वक्ष पर छोड़ दूँ... सोचते-सोचते वह झपकियाँ लेने लगा ।''२५ यहाँ पर नागार्जुन ने अपनी काव्यात्मक दृष्टि का प्रभावक चित्रण किया है । लगता है जैसे प्रकृति खुद नागार्जुन की कलम पर सवार होकर आई हो ऐसा लगता है ।

''परछाई में तारे जँच नहीं पा रहे थे क्योंकि छोटी-बड़ी हिलकोरें पानी को चंचल किए हुए थीं । कदली-थंभों की यह नाव पोखर की छाती पर हचकोले खा रही थी ।''२६ लगता है जैसे पाठक की नजरों के सामने ही प्रकृति अपने आकर्षक रूप में खिल उठी हो ऐसा काव्यात्मक वर्णन पाया जाता है ।

''घौली तेरस की गाढ़ी-दुधिया चाँदनी किसुनभोग की घनी-छतनार डालों के तले आ नहीं पा रही थी किन्तु अपनी दमकती पाछाई से अंधकार की गहन कालिमा पर हल्की-हल्की-सी पोची वह अवश्य फेर रही थी ।

मंगल का पहला आवेग कुछ शांत हुआ तो मधुरी ने बाहुपाश को आहिस्ते से ढीला कर लिया । बित्ता भर अलग हुई और उसके कंधों पर अपने दोनों हाथ टिका दिए ।''२७ यहाँ पर भी नागार्जुन की काव्यकला का उत्तम उदाहरण पेश हुआ है ।

''सुबह की किरणें फूट चुकी थीं । ग्रीष्म का मीठा सुनहला प्रभात गढ़पोखर को नहला रहा था । सिंचाई से उगाए मडुआ के पौंधे कछारों में लहलहा रहे थे । महाजाल की किनारियों में कसे लोहे के गोटे और उनकी जगमगाहट उत्तरी कछारों में घूप को और अधिक आकर्षक बना रहे थे ''२८ सुबह का प्राकृतिक वर्णन 'नौकाविहार' की याद दिला जाता है । वाकई नागार्जुन की कलम का यह जादू ही है कि पाठक उनके द्वारा लिखित इस काव्यात्मक वर्णन को पढ़कर भावविभोर हो जाता है । इसी उपन्यास के अंत में उनके द्वारा चित्रित यह वर्णन - ''सूरज अब लुक-झुक कर रहा था, लेकिन सड़क और डूबते सूरज के दरम्यान गड़पोखर की ऊँची भिंड़ खड़ी थी । अस्त प्राय दिनकर की किरणें इस कदर निस्तेज और संकुचित हो आई थीं कि शर्मीली परछाई छितराकर पूरबी-दच्छिनी क्षितिज की ओर भाग आई थी ।''२९

''जेठ की पूनम चाँदनी क्या बरसा रही थी, गाढ़ा कढ़ा दूध बर्फ की तरावट लेकर भूतल को शीतल बना रहा था । दिन की झुलसी प्रकृति इस अमृत वर्षा में

जुड़ा ही थी ।''३० यहाँ पर भी प्राकृतिक शोभा का सुंदर काव्यात्मक ढंग से वर्णन हुआ है । जो नागार्जुन की कलम का जादू है । एक और उदाहरण देखे तो - ''स्निग्ध-शीतल एवम् धवल-पांडुर आलोक धरती को दिग्-दिगंत तक उद्भसित कर रहा था । नीचे पृथ्वी, ऊपर आकाश- दिप्त प्रकृति का उदार परिवेश वह क्या था, ग्रीष्मांत की रजनी का सौभाग्य श्रृंगार था मानो...''३१

''पौ फटने को थी । अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसीसे हवा में कुछ ठंडक थी । पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदे टपका रहे थे । सूखी धरती ने दिल खोल कर वर्षा का स्वागत किया था । जहाँ-तहाँ मेढ़क पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जयजयकार कर रहे थे । ऊपर खेतों की बलुआही मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था ।''३२ पूरी प्रकृति मानो नागार्जुन की कलम का पावन स्पर्श पाकर खिल उठी हो उस प्रकार चित्रित हुई है ।

''घान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पांतर हरियाली का समुंदर हो रहा था । बयार सिहकती तो इस समुद्र की हरित-नील लोल मन-प्राण धान के लहराते पौधे देख-देख लहराया करते और भविष्य की सुनहली जालियाँ बुनने में उनकी आत्मा विभोर हो जाती । जनपद की शस्य श्यामला प्रकृति सुंदरी अपनी ओर देखते रहने वालों की बाहरी और भीतरी जलन छन भर के लिए तो अवश्य ही मिटा डालती... ''३३ प्रकृति का सुंदर बिम्ब खड़ा हो गया है । पूरा गद्यांश पाठक को जकड़े रखता है और यही नागार्जुन की कलम का जादू है ।

''धान के फूलों की भीनी और जमी खुश्बू बितते क्वांर की सलोनी सिहरन में शरद् की अनमोल ताजगी भर रही थी ।''३४ यहाँ पर धान की मिठी महक का वर्णन बहुत ही प्रभावशानी ढंग से चित्रित हुआ है । एक और उदाहरण देखे -

''जंगलों की किवाड़ियाँ डेवढ़ लगी थी, उनके फाँकों में से होकर हेमंती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी - मिठासभरी-सर्दवाला तरुण समीर इस काम में उसकी मदद कर रहा था ।''३५

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने तकरीबन सभी उपन्यासों में काव्यात्मक शैली का प्रयोग प्रभावात्मक ढंग से किया है । जिसमें वे काफी हद तक सफल भी रहे हैं।

४.२.३ पूर्वदीप्ति शैली ।

पूर्वदीप्ति शैली पाश्चात् साहित्य की देन है । अंग्रेजी में इसे थ्सौभ ठाब्ज्ञ कहते है । पूर्वदीप्ति शैली से तात्पर्य यह है कि इसमें कथानायक या पात्र अपने वर्तमानकाल में रहकर भूतकाल की महत्वपूर्ण घटनाओं को श्रृंखलाबद्ध रूप में याद करता है और इससे पाठक को उस नायक या पात्र के व्यतीत जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त होती है ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग आकर्षक ढंग से किया है । जिसे सोदाहरण समझे –

''वह भादों का महीना था । अमावस की रात थी । एक घनी और अँधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ़ आई । उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा...''[३६] यहाँ पर रतिनाथ की चाची के साथ हुए अवैध संबंध की बात का पता चलता है ।

''आज से चालिस साल पहले नैयायिक जी के प्रपौत्र इन्द्रमणि झा ने गया से लौटते समय पटना में भगवान का वह सिंहासन बेच डाला । इन्द्रमणि की पुत्र का मुँह देखने की लालसा कभी पूरी न हुई । हाँ, लड़कियाँ चार अवश्य हुई । उन्हें अपने भी उच्च कुल में कन्याएँ दान करने की सनक थी ।''[३७] यहाँ इन्द्रमणि नामक उपन्यास के एक पात्र की मनःस्थिति को व्यक्त किया गया है । एक और उदाहरण देखे –

''क्या थी वह रात ? यही कि रतिनाथ की बीमार माँ बिस्तरे पर उतान लेटी पड़ी है और जयनाथ रुद्र रूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है । हाथ में कुल्हाड़ी है और वह अपनी स्त्री की गरदन रेतता जा रहा है । वह घिघिया रही है, लेकिन कोई भी इस नरमेध में हस्तक्षेप करनेवाला वहाँ मौजूद नहीं है...माँ

घिघियाती है, साढ़े तीन साल के अबोध रत्ती ने यह दृश्य देखकर दम साध लिया है।''[३८] यहाँ एक अबला नारी पर हुए अत्याचार के बारे में पाठक अवगत होता है।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग बखूबी ढंग से हुआ पाया जाता है ।

४.२.४ व्यंग्य शैली ।

जहाँ प्रत्यक्ष रूप से कुछ कहना सभ्यता के खिलाफ हो, वहाँ व्यंग्य की छाया में प्रभावी प्रहार किया जाता है । सीधे-सादे शब्दों में कही गई बात, जब विपरीत अर्थ की सृष्टि करती हुई दोषों, खामियों या त्रुटियों का उद्‌घाटन करती है, तब वह व्यंग्यात्मक शैली कही जाती है । जहाँ प्रधान रूप से 'साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे' वाली कहावत चरितार्थ होती है । इसमें कभी शुद्ध हास्य और मनोरंजन करने के उद्‌देश्य से भी व्यंग्यात्मक शैली प्रयुक्त होती है ।

अब नागार्जुन के उपन्यासों में व्यंग्य शैली के कुछ उदाहरण से समझे -

''हीरा जी मेडिकल कालेज (पटना) का छात्र था और अफवाह फैल रही थी कि उसका दिमाग फिर गया है । आज-मौज में हजार-पाँच सौ रुपये फेंक-फूंक दे तो ठीक है । सौ-पचास लगाकर गांधीजी और नहेरूजी की रजत प्रतिमाएँ बनवा ले तो ठीक है । महीने में बीस दफे हॉलीवुड फिल्मे देख आये तो भी ठीक है । मगर कम्युनिस्टों की संगत में वक्त गँवाए, छठे-छमाहे दस- पाँच रुपये उनकी पार्टी को चंदा दे, स्टुडेन्ट फेडरेशन द्वारा चलाई गई तहरीकों में दिलचस्पी ले, तो अवश्य ही उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है...''[३९] यहाँ पर व्यंग्यात्मक शैली में रातनीतिक षड़यंत्रों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

''यह दिगंबर वगैरह कहीं उसके गाँव में होते तो इन्हें भी वह आसानी से किसी केस में फँसा सकता था । छि: नौगछिया भी यह कोई बस्ती थी! हिजड़ों का रैनबसेरा!! एक भी चेहरे पर पानी नहीं, किसीकी भी आवाज में कड़क नहीं।''[४०] व्यंग्यात्मक शैली के द्वारा नागार्जुनजी का विद्रोही व्यक्तित्त्व मुखरित हो उठता है ।

''अब आज नहीं जाने दूँगा, कल सबेरे खा-पी के अपना चले जाना!
अंदेशा के मारे माँ जो परान तेआग देगी ।
नहीं रे दिगो! राम के लिए कौसल्या की जान जब नहीं निकली तो तेरी माँ का क्या होगा ?
यह कहते-कहते दुर्गानंदन को भी हँसी आ गई और दिगंबर के रंगे होंठ दुहरे-तिहरे हो उठे ।''४१

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में व्यंग्यात्मक शैली के विविध उदाहरण पाये जाते हैं । जिनमें उनकी शैली की सशक्तता के दर्शन होते हैं ।

समग्रत: नागार्जुन ने अपने सभी उपन्यासों में विविध शैलियों का प्रयोग कर अपनी भाषा को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है । वर्णनात्मक, काव्यात्मक, पूर्वदीप्ति, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों के प्रयोग से नागार्जुन ने अपनी औपन्यासिक भाषा को सुंदर बनाया है । नागार्जुन की भाषा की अपनी विशिष्ट पहचान रही है। वे अपनी सशक्त भाषा-शैली के द्वारा पाठक वर्ग को आकर्षित करने में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं ।

४.३ मुहावरे :

''किसी विशिष्ट भाषा में प्रचलित वह वाक्य अथवा पद जिसका अर्थ लक्षण या व्यंजना द्वारा निकलता हो । वह अर्थ जो शब्दों के प्रत्यक्ष अथवा शाब्दिक अर्थ से भिन्न तथा विलक्षण हो ।''४२

''ऐसा वाक्यांश जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराये मुहावरा कहलाता है ।'' ४३

''मुहावरा यानी लाक्ष्यणिक या क्वचित् व्यंग्यार्थ में रूढ़ वाक्य या प्रयोग'' ४४

इसप्रकार दैनिक जीवन की भाषा को प्रभावक व रोचक बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग होता है । मुहावरे अनावश्यक विस्तार को हटाते हैं । इससे बोली संयमित तथा सशक्त बनती है । मुहावरे अपने आप में पूर्ण नहीं होते, वाक्यांश होते हैं । सामान्य रूप से मुहावरों का अंत क्रिया में 'ना' प्रत्यय जोड़ने से

होता है । जैसे छक्के छुड़ाना, काम तमाम होना आदि । अब नागार्जुनजी के उपन्यासों में मुहावरों के प्रयोग को देखे –

पल्ले न पड़ना, दाल न गलना, मन मसोसकर रह जाना, हाथ मींजना, हाथ साफ करना, दूध का दूध और पानी का पानी होना, जले पर नमक छिड़कना, पल्ले पड़ना, हाथ मींजकर रह जाना, हुक्का–पानी बन्द करना, कान भरना, अहंदक जाना, जूँ तक न रेंगना, कनअँखियों से झाँकना, मुँह की खाना, दाल में काला होना, हतप्रभ रह जाना, सेंप जाना, आद्र हो उठना, भीगी बिल्ली बन जाना, सोलह आने सच होना, हाथ धौ बैठना, हाथ मलकर रह जाना, चार चाँद लगाना, आद्र हो उठना, जान साँसत में पड़ना, मन में लड्डु फूटना, कलेजा दहक जाना, जमीन–आसमान एक करना, दुअँखिया करना, पशोपश में पड़ना, सन्न रह जाना, बगले झाँकना, सूखी नदी में नाव चलाना, आँखे चार करना, बावन बवाल घेरना, कानी कोड़ी न होना, पेट में चूहे कूदना, ऊँट के मुँह में जीरा, गेहूँ के साथ धुन भी पीसा जाना, ठहाके लगाना, नानी याद आ जाना, जुबान पर लगाम होना, गोड़ बंधना, सन्न रह जाना, छाती पटकना, कीचड़ उछालना, पाँचों ऊँगलिया घी में होना, कान भरना, मुँह फुलाना, कन्नी काट जाना, चोली–दामन का संबंध होना, गुल खिलाना, नाको चना चबाना, दाँतों तले ऊँगलियाँ दबाना, दाँत खट्टे करना, नाक कट जाना, घोड़े बेचकर सोना, दाँत काटी रोटी होना, तिलमिला उठना, चोर की आँख में तिनका, दाँत निपोरना, मन तिक्त सा होना, होठ काटकर रह जाना, थककर चूर हो जाना, फूट पड़ना, हुड़क उठना, हाथ धो बैठना, लकीर का फकीर बनना, पलड़ा ऊँचा रखना, दिवाला निकल जाना, मिट्टी में मिलना, आँखों पर पट्टी बाँधना, कोर्रा काटना, रोये–रोये थर्रा उठना, मुँह फूलाना, लड्डु फुटना, अपना सा मुँह बनाना, कानाफुसी करना, पल्ले न पड़ना, सिट्टी–पिट्टी गुम जाना, आँखे तरेतना, तमतमा उठना, चोर दृष्टि से देखना, खजूर पर अटकना, हाथ पीले करना, पासा पलटना, दिल पर पत्थर रखना, कलेजा दहक जाना, पानी–पानी होना, खाने के मोहताज होना, ज़मीन में धँस जाना, शेर की गुफा में हाथ डालना, रफा–दफा करना, डंके की चोट कहना, तलुए चाटना, पेट में हुँक चलाना, कमर कसना, स्वर्ग सिधारना, लार टपकाना, चूल्हा फूँकना, डोरे डालना, चोखट लाँघना, रंगे हाथो पकड़ना, पग का पसीना माथे चढ़ाना, मन हूमस आना, फूले न समाना, चार चाँद लगाना, गुड़ माटी में मिलाना, जीना हराम करना, लाँछन लगाना, शतरंज की चाल चलना, झाड़

फूँककर चलना, मुँछ फटकार कर कहना, दूसरे की हाँडी में मुँह डालना, हड्डी दिखाई पड़ना, दुमुहा साँप होना, मिरचा लगाना, किताबी कीड़े होना, दूध की धोई होना, कालिख पुत जाना आदि ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में विविध प्रकार के मुहावरों का प्रयोग पाया जाता है । नागार्जुन की भाषा का एक विशिष्ट गुण यह है कि उन्हें अपनी भाषा रचना में कहीं पर भी प्रयत्नशीलता का सहारा नहीं लेना पड़ा है । सहज व स्वाभाविक रूप से उन्होंने मुहावरों का प्रयोग किया है । समग्रतः मुहावरों के उपरोक्त प्रयोग के अध्ययन से कह सकते हैं कि नागार्जुन के लेखन में सक्षम व्यंजना शक्ति का संचार हुआ है । जो नागार्जुन को एक समर्थ व ग्राह्यशील कलाकार सिद्ध करता है ।

४.४ कहावतें :

''बोलचाल में बहुत आनेवाला ऐसा बंधा चमत्कारपूर्ण वाक्य जिसमें कोई अनुभव या तथ्य की बात संक्षेप में कही गई हो ।'' ४५

''मसल, लोकोक्ति, उक्ति, कथन, मृतक कर्म आदि की सूचना देने के लिए संबंधियों आदि को भेजा जानेवाला संदेश या पत्र ।'' ४६

''अच्छे लेखकों की गद्य और पद्य की कुछ विशेष पंक्तियाँ भी धीरे-धीरे इतनी अधिक लोगों के मुँह चढ़ जाती है कि वे मुहावरे या कहावत के रूप में व्यवहत होने लगती है ।''४७

साहित्य में कहावतें स्वयं स्फूर्त, सहज रूप से प्रकट होती है और गहन प्रभाव छोड़ जाती है । कहावतें वेद, उपनिषदकाल से लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित है । वह ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक स्तर पर पाई जाती है । कहावतें और लोकोक्तियों में कोई फर्क नहीं है । लोकगीत और लोककथा की भाँति कहावतें और लोकोक्तियाँ प्रचलित है । लोकोक्तियाँ समाज में स्थाई रूप से पाई जाती है, कहावतें सायास प्रयुक्त होती है । नागार्जुन के उपन्यासों में कहावतों का प्रयोग इस प्रकार से किया गया है ।

''इसके पिता जिन्दगी-भर बनैली में राजपंडित रहे । सज्जनता की मूर्ति थे। जैसा बाप, वैसी बेटी । क्यों न हो, हीरे की खान से काँच थोड़े ही निकलता है''४८

''बात क्या रहेगी - कल्लर ने कहा - कुछ नहीं! दूर के ढोल सुहावन! बस, यही समझ लो खुरखुन काका!''४९

''युवक ने आदेशपूर्ण स्वर में माँझी से कहा - आइए कामरेड, देखिए राक्षसों का यह तांडव! बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह!''५०

''डराँडोर के सहारे गमछा को कमर से लपेट कर पोखर में नहाने उतरा । कहावत है - आन गामक पोखरि अपना गामक काछी याने अपने गाँव का बाग और दूसरे गाँव का पोखर डरावना होता है ।''५१

''जाते-जाते भी ये राजा, जमींदार, भूस्वामी, सांमत चाँदी काट रहे हैं । घोड़े की कीमत पर वे हाथी हटा रहे हैं, बछड़े की कीमत पर घोड़ा; और बछड़ा?''५२

''उन्हीं महानुभाव ने विश्वेश्वरी जैसी कन्या रत्न के लिए इस प्रकार का परम सुदुर्लभ वररत्न ढूँढ निकाला था । जिन खोया तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ, अब और क्या चाहिए ?''५३

''आज नतनी की कंधी-चोटी वह खुद अपने हाथों नहीं कर सकी! बेचारी को बहुत सारे काम करने थे, अकेली राधा कितना नाचे! ''५४

''दिल बुरी तरह धड़क रहा था । आज सभी उसे एक अजीब नजर से देख रहे थे । अँधेरे घर में साँप ही साँप! उसे बड़ा ही डर लग रहा था, अगले क्षणों में क्या होने वाला है...''५५

इसप्रकार नागार्जुन ने विविध कहावतों का सुन्दर प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है । सामान्यत: कहावतें उसी साहित्यकार के लेखन का अभिन्न अंग बनती

है, जो जीवन के यथार्थ के बहुत समीप होता है, जीवन की वास्तविकता से टकराता है ।

४.५ बिम्ब :

''बिम्ब ऐन्द्रिय अनुभूति, जीवनानुभूति, कलानुभूति और काव्यानुभूति को शब्दों के माध्यम से मूर्त करतें हैं । बिम्ब के माध्यम से भाषा सजीव, मुखर, संवेदनशील और पारदर्शी बन जाती है ।'' ५६

''आधुनिक आलोचना में 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'इमेज' के अर्थ में होता है । यह कहा जा सकता है कि जगत् की स्थूल और इन्द्रिय बोधगम्य वस्तुओं का जो चित्र हमारे मानस में बनता है, वही बिम्ब है...बिम्ब किसी विशिष्ट इन्द्रिय-बोध के साहचर्य से वस्तुविशेष का समग्र रूप से मानसिक पुन:प्रत्यक्षीकरण करता है ।''५७

''बिम्ब का उद्देश्य किसी भाव का मूर्तिकरण करना होता है और बिम्ब का संबंध सीधे कल्पना से होने के कारण काव्य में भाषा, विचार, भावना तथा रूप के मिश्रण के द्वारा ही बिम्ब का उदय होता है ।'' ५८

बृहत् हिन्दी कोश में बिम्ब की परिभाषा कुछ इसतरह से दी गई है - ''अक्स, प्रतिच्छाया, उपमेय, आईना, आधुनिक काव्य का एक उदाहरण ।'' ५९

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिम्ब के द्वारा एन्द्रिय-आँख, कान, नाक, जीहवा और त्वचा-अनुभूति, जीवनानुभूति तथा कलानुभूति को मूर्त स्वरूप प्रदान किया जाता है । इसमें व्यंग्य, व्यंजना, लक्षणा तथा प्रतीकों द्वारा अर्थवत्ता तथा अर्थबहुलता प्रस्तुत की गई होती है तथा प्रयोजन को मूर्त रूप दिया जाता है । इसके द्वारा विशेषत: सादृश्यता तथा मानवीकरण को प्रस्तुत किया जाता है । विषय की दृष्टि से आधुनिक मानव जीवन संबंधी बिम्ब सर्वाधिक संख्या में प्राप्त होते हैं । इसके अलावा प्रकृति, साहित्य, विज्ञान, व्याकरण, संगीत, नृत्य आदि के बिम्ब भी प्राप्त होते हैं । समग्रत: बिम्ब सृष्टि द्वारा मानव तथा व्यक्ति जीवन की द्वंद्वात्मकता तथा विरोधाभास को सजीव रूप से

प्रस्तुत किया जाता है । नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित विविध बिम्बों के उदाहरण देखे तो -

''चाची जाकर बिस्तरे पर लेट गई । बिस्तरा क्या था, खजूर के पत्तों की चटाई थी । बीच घर में वही बिछाकर लेट गई, न तकिया लिया न सुजनी । दाई बाँह पर सिर रखकर वह पड़ी रही और आँखों की रोशनी को घने अँधकार में भटकने के लिए छोड़ दिया, जैसे थका और भूखा चरवाहा लापरवाह होकर अपनी गायों को जंगल में छोड़ देता है । वे लौट भी आना चाहती है तो मार डंडा से वह उन्हें फिर-फिर जंगल की और खदेड़ देता है । बस्ती नजदीक नहीं होने से किसी पेड़ के नीचे वह भी बाँह का तकिया बनाकर करवट लेट जाता है...''६० (मानसिक बिम्ब)

''नील माधव के तीन लड़के थे- जयमाधव, वेणीमाधव और श्रीमाधव । इनमें दो अपठित थे, उनके जिम्मे खेतीबाड़ी का काम था । जयमाधव के दो लड़के हुए, सोनमणि और राजमणि । सोनमणि ने व्याकरण का अध्ययन काशी में रहकर किया था । सोनमणि के एकमात्र लड़का हुआ इन्द्रमणि । वही मूर्ख भगवान का छत्र-सिंहासन बेचकर खा गया । कमलनाथ आदि श्रीमाधव के प्रपौत्र थे ।''६१ (पारिवारिक बिम्ब)

''हेमन्त की हल्की ठंड में सिल्लियों और बनमुर्गियों का झुण्ड बलुआहा के निर्मल जल में घने सेंवार पर इधर से उधर छप-छप करके दौड़ा करता । शिशिर की नीरव निस्तब्ध निशा में रह-रहकर एकआध बड़ी मछली पानी पर उतरकर अपने पर फड़फड़ाती तो ठिठुरती प्रकृति के वे एकान्त क्षण मुखरित हो उठते । वसन्त में ग्रामीण बालक-बालिकाएँ लाख मना करने पर भी अपना जल-विहार प्रारम्भ कर देते । वैशाख और जेठ के महीने में तो मानो वरुण देवता का खजाना धनी-गरीब, बूढ़े-बच्चे, औरत-मर्द सभी के लिए खुल जाता ।''६२ (प्राकृतिक बिम्ब)

''पुआल बिछे थे कोने में, उन पर फटी पुरानी बोरी बिछी थी । एक जवान लड़की और नंग-धडंग बच्चे बेतरतीब सोए पड़े थे । ओढ़ना के नाम पर कथनी-गुदड़ी के दो-तीन छोटे-बड़े टुकड़े उन शरीरों को जहाँ-तहाँ से ढक रहे थे ।

दूसरे कोने में चुल्हा-चौका । तीसरे में अनाज रखने के कूंड और कुठले । चौथा कोना खाली । छप्पर के बाँसों से दसियों छिक्के लटक रहे हैं ।...घर- गिरस्ती की बाकी दसियों चीजें । यानी खुरखुन का समूचा संसार ही मानो तेरह फुट लम्बे और नौ फुट चौड़े घर में अटा पड़ा था । भीतें बीस साल पुरानी, फिर भी मजबूत थीं। ''६३ (आर्थिक बिम्ब)

''गेहुआ खाल से मढ़ा होड़ों का कमझोर ढाँचा । फाँक-सी आँखें, नुकीली नाक । बड़े-बड़े कान । पतली मूँछ, चिकने गाल । पहनावे में मामूली धोती, कंधे पर गमछा चारखाना ।''६४ (शारीरिक बिम्ब)

''पौ फटने को थी । अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसीसे हवा में कुछ ठंडक थी । पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदें टपका रहे थे । सूखी धरती ने दिल खोल कर वर्षा का स्वागत किया था । जहाँ-तहाँ मेढ़क पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जय-जयकार कर रहे थे । ऊसर खेतों की बलुआही मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था ।''६५ (प्राकृतिक बिम्ब)

''आधा सावन बीतते न बीतते लोग अपने-अपने खेत आबाद कर चुके थे । धान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पाँतर हरियाली का समुद्र हो रहा था । बयार सिहकती तो इस समुद्र की हरित-नील-लोल लहरियाँ सातों सागर की तरंगित सुषमा को मात कर जाती; खेतिहरों के मन-प्राण धान के लहराते पौधे देख-देख लहराया करते और भविष्य की सुनहली जालियाँ बुनने में उनकी आत्मा विभोर हो जाती । जनपद की शस्य श्यामला प्रकृति सुंदरी अपनी ओर देखते रहने वालों की बाहरी और भीतरी जलन छन भर के लिए तो अवश्य ही मिटा डालती''६६ (रहस्यपूर्ण मानव जीवन संबंधी बिम्ब)

''धान के फूलों की भीनी और जीम खुश्बू बीतते क्वांर की सलोनी सिहरन में शरद की अनमोल ताजगी भर रही थी ।

किसान होकर सबेरे-शाम अपने-अपने खेतों की परिक्रमा कर आते थे । निचली जमीन में खेसाड़ी और मटर की बुआई चल रही थी । उपरले खेतों में लोग जौ-चना, मसूर-तीसी बगैरह बो रहे थे ।

बूलो के पास रबी की फसल के लायक जमीन नहीं थी- नहीं के बराबर कहिये । पाँच-सात कट्टा जमीन भी क्या लेखा-लायक जमीन कहलाएगी!''६७ (खेती बिम्ब)

''खादी की धोती, सफेद-पीली-भूरी धारियों वाली हॉफ कमीज...ऊपर सुराहीनुमा गर्दन पर गोल और मझोली आकृति की मस्तक । सूरत गेहुँआ, आँखे साफ और साधारण ढंग की । नाक-कान-कपार भी इसी अनुपात में पड़ते थे । बाएँ पैर पर घाव का भारी निशान था । दोनों पैरों की दशों उँगलियों के बढ़े हुए नाखून तूफानी जीवन की अस्तव्यस्तता के सबूत थे ।''६८ (मानवीय बिम्ब)

''गोरी, छरहरी...नुकीली नाक, फाँक-सी आँखे, ढले-उभरे गाल, चौड़ा कपार, काले-लम्बे बालों का भारी जूड़ा...और ठुड्डी व होंठ दोनों तो साँचा पर से अभी-अभी निकले हैं...उम्र पंद्रह होगी या सोलह ?''६९ (मानवीय बिम्ब)

इसप्रकार नागार्जुन की बिम्बयोजना बहुआयामी और प्रकार बहुल है । बिम्बयोजना के द्वारा नागार्जुन ने अपनी भाषा को संप्रेष्य और ग्राह्य बना दिया हैं । साथ ही मानवीय भावों का स्पष्ट तथा वस्तुसंगत मूर्तिकरण भी किया है । नागार्जुन ने परम्परागत बिम्बयोजना का चित्रण नहीं किया, बल्कि बिम्बों की सजग निर्माण-प्रक्रिया में सर्वथा नवीन बिम्बों का प्रयोग किया है ।

४.६ प्रतीक :

''प्रतीक कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ व्यंजित करते हैं । अत: प्रतीकों का निर्माण एवम् उपयोग प्रत्येक क्षेत्र में किया जाता है । प्रतीकों का उद्‌गम कवि की चेतना, संस्कार तथा अवचेतन मन से होता है । इसलिए प्रतीक मानवमन की संपूर्ण प्रक्रिया का द्योतन करते हैं ।''७०

''किसी अमूर्त, अगोचर अथवा अप्रस्तुत वस्तु का प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रस्तुत या गोचर वस्तुविधान को प्रतीक कहते है, जो देशकाल एवम् सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण किसी तीव्र भावना को उत्पन्न करते हैं ।''७१

प्रतीक यानी ''वह दृश्य वस्तु या तथ्य जो किसी अदृश्य वस्तु या तथ्य के प्राय: अनुरूप होने के कारण उसके प्रतिनिधि या प्रतिरूप के रूप में मान ली जाय।''७२

प्रतीक यानी - ''किसी गद्य या पद्य के आदि या अन्त के कुछ शब्दों को लिखकर या पढ़कर पूरे वाक्य या पद का पूरा पता लगाना ।'' तथा प्रतीक ''वह जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि हो ।''७३

इसप्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि लेखक अपने अंतर्मन की अतिसूक्ष्म भाव-लहरियों, संवेदनों को प्रतिबिम्बित करने के लिए विविध प्रकार के प्रतीकों का आश्रय लेता है । लेखक अपनी सूक्ष्म मनोदशाओं की सफल अभिव्यंजना के लिए प्रतीक का उपयोग करता है ।

नागार्जुनजी एक सशक्त आँचलिक उपन्यासकार हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में न सिर्फ स्थान एवम् काल को प्रतीकात्मक प्रस्तुत किया, बल्कि पात्र भी प्रतीक रूप में ही प्रस्तुत किये हैं । अब कुछ उदाहरणों से समझे ।

'वरुण के बेटे' उपन्यास में मधुरी जब अपने ससुराल जाने की बात सोचती है तब वह भावावेश में आकर अपनी चाची के गले से लग जाती है और कहती है -''चाची, तुम सबसे अलहदा होकर मैं कैसे रह सकूंगी ? सूखी रेत पर कबई मछली जिस तरह तड़पा करती है, मैं भी क्या उसी तरह नहीं तड़पूंगी चाची ?''७४

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में एक जगह चाची की मन:स्थिति का वर्णन पूरा प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है । जैसे - '' चाची जाकर बिस्तरे पर लेट गई। बिस्तरा क्या था, खजूर के पत्तों की चटाई थी । बीच घर में वही बिछाकर लेट गई, न तकिया लिया न सुजनी । दाई बाँह पर सिर रखकर वह पड़ी रही और

आँखों की रोशनी को घने अँधकार में भटकने के लिए छोड़ दिया, जैसे थका और भूखा चरवाहा लापरवाह होकर अपनी गायों को जंगल में छोड़ देता है । वे लौट भी आना चाहती है तो मार डंडा से वह उन्हें फिर-फिर जंगल की और खदेड़ देता है । बस्ती नजदीक नहीं होने से किसी पेड़ के नीचे वह भी बाँह का तकिया बनाकर करवट लेट जाता है... ''७५

एक जगह पर चाची तत्कालीन पुलिसतंत्र और कानून व्यवस्था पर व्यंग्य कसती हुई सोच रही है । जैसे - ''सरकार ने कानून में गर्भ गिराना नाजायज है; तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादुर ने यह कानून बनाया होगा, कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती... चाची अब भी उसी रफ्तार से तकली कात रही थी। पूनी पर पूनी खतम होती गई, मगर सोचने का धागा अपने छोर पर नहीं पहुँचा। ''७६ उपन्यास में एक और जगह पर चाची की दयनीय स्थिति को लेकर प्रतीकात्मक ढंग से कहा गया है कि - ''धिक्कार है तुम्हें! उमनाथ की माँ और तुम वर्षो से साथ रहते आए हो और आगे भी सारी जिन्दगी साथ कटेगी, यह मुझे विश्वास है । फिर भी तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो!''७७

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में एक जगह पर अवैध संबंध की बात बताते हुए लेखक इस प्रकार लिखते है - ''उस धनी सज्जन का नाम मैं तुम्हें नहीं बतानी चाहती जिसका हृदय हम विधवाओं के प्रति करुणामय है - इतना करुणामय कि तीन-तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखेलियाँ रहते हुए भी चूड़ियों से कलाई की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है । ताड़ी पीने वाले को तुमने अवश्य देखा होगा, मेरा भी वही हाल है ।... एक दिन उसे कीमती चूड़िया पहने देखकर जयनाथ दंग रह गया था और इस पर क्या कहा था सुशीला ने ? कहा यही था कि मेरे जितने मित्र बनते है, उतनी बार मैं चूड़ियाँ पहनती हूँ और फोड़ती हूँ ।''७८ एक और जगह अवैध संबंध की बात करते हुए नागार्जुन लिखते है - ''एक विधवा तेलिन इन दिनों जयनाथ की प्राणवल्लभा बनी थी । चाची ने समझाया-शादी कर लो बाबू, भले आदमी की जिन्दगी बिताओ । सेंध लगाने की फिराक में भीतों की ओर घूरते रहनेवाला चोर क्या खाक चैन से रहेगा ?''७९

नागार्जुन द्वारा लिखित 'नई पौंध' एक पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक उपन्यास है। जिसमें लेखक ने कई जगहों पर अपनी प्रतीकात्मक शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया

है । जिसे देखे - ''स्वाद ले-लेकर दोनों तरफ की गालियाँ सुनने वालों को अब पड़ोसी की मर्यादा का ख्याल आया तो वे भी दौड़े और खोंखा पंड़ित को संभालने लगे । मगर बादल तो बरस चुका था, रह गया था धुला- पीला आकाश!''८०

'नई पौंध' उपन्यास में एक और जगह प्रतीकात्मक शैली का उदाहरण देखे - ''दिगंबर का बैठका सूना पड़ा था । तख्तपोश के नीचे सिलेबिया कुत्ता गोलिया कर बैठा हुआ था । आकाश में हल्के-फुल्द धुआँसे बादलों से तेरही चन्द्रमा की हाथापाई देखने लायक थी ।''८१

''रही-सही खैनी उसने आप फाँक ली तो बरामदे से नीचे उतरकर अँगनई में जीमड़ के अधजीबू खूँटे से पीठ टिकाकर आ बैठा...

कटी-टूटी बातें पंखहीन तितलियों-सी बैठके में अब भी रेंग-रेंग कर चल ही रही थी ।''८२

''मझली बहू भी दुल्हा देखकर झँवा गई थी । यह उसकी कल्पना से पर की बात थी कि बीसो जैसी सोनछड़ी को बूढ़े पीपल की डाल से लटका दिया जायेगा । वह स्वयं एक ब्राह्मण की बेटी थी ।''८३

''आधा खाया हुआ अमरुद, आधी उठी हुई हथेली...बिसेसरी का स्तंभित शरीर किसी वस्तुवादी मूर्तिकार के लिए शिल्प का सुंदर नमूना बनकर रह गया।''८४

''खंजन तनिक मुसकान उभार लाई अपने होंठों के बाँध पर, फिर बिसेसरी की आँखों में झाँककर देखा...छन भर देखती रह गई, तब जाकर बोली - तेरा वो हीरामन तोता अपने मजबूत डेनों पर तुझे लिये-लिये उड़ता फिरेगा..''८५

''वाचस्पति बिसेसरी के दहिने हाथ की अनामिका उँगली में अँगूठी ढालने की कोशिश कर रहा था ।

गोरी, छरहरी...नुकीली नाक, फाँक-सी आँखे, ढले-उभरे गाल, चौड़ा कपार, काले-लम्बे बालों का भारी जूड़ा...और ठुड्डी व होंठ दोनों तो साँचा पर से अभी-अभी निकले हैं...उम्र पंद्रह होगी या सोलह ?

कैसी खूबसूरत जीवन-संगिनी मिली है उसे!''८६

इसप्रकार नागार्जुन ने अतिन्द्रिय एवम् सूक्ष्म वैचारिक भावों की सांकेतिक अभिव्यंजना के लिए परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग करते हुए नवीन प्रतीकों एवम् प्रतीक स्वरूप उपमानों की सृष्टि की है । अन्य साहित्यिक क्षेत्रों, विविध कलाओं, दर्शनशास्त्रों, संप्रदायों से प्रतीकों को ग्रहण करते हुए स्वनिर्मित प्रतीकों द्वारा अपने आँचलिक उपन्यासों को सुदृढ़ बना दिया हैं । इनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति की वनस्थली से ग्रहण किये गये हैं, परन्तु परवर्तीकाल में इन्होंने विशुद्ध प्रतीकों का प्रयोग भी किया हैं । समग्रतः प्रतीकयोजना की दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास संपूर्ण रूप से सफल सिद्ध होते हैं ।

समग्रतः नागार्जुन की कथाभाषा की शक्ति है उनकी आत्मीयता, जो इनकी रचनाओं में रस, संगीत और कवित्व तीव्रता तथा दर्द की सृष्टि करती है । कभी न थमनेवाले पार्श्व संगीत की तरह उनकी कथाभाषा धरती की अतुलनीय लोक संस्कृति का सर्वथा अछूता उपयोग करती है । भाषा का यह तरल रूप एक ओर कथाकार नागार्जुन के वैयक्तिक पक्ष को उद्‌घाटित करता है, तो दूसरी ओर उनकी कथा के जनपदीय रूप को । इस रूप में हमें स्वीकारना होगा कि नागार्जुन की कथाभाषा का जनपदीय रूप न तो भावावेश का उच्छलन है और न कठोर संयम का अभिव्यक्त रूप, बल्कि है यह नितांत सहज, स्वाभाविक और विवेक संपन्न रूप ।

:: -- ::

;\NE";}IR

१. संस्कृत-हिन्दी कोश, सं. वामन शिवराम आप्टे, २००४, पृ.७३९ ।
२. प्रेमचंद के उपन्यासों का औदात्यपरक अध्ययन, डॉ. शशिप्रभा, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, २००५, पृ. २०८ ।
३. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं. श्रीनवलजी, आदीश बुक डीपो, दिल्ली, १९८४, पृ.१०२१ ।
४. मुक्तिबोध की काव्यभाषा, डॉ. सनतकुमार, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, २०००, पृ.७ ।
५. हिन्दी रूप रचना, सं. आचार्य जयेन्द्र त्रिवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१, पृ. २७ ।
६. हिन्दी भाषा और लिपि, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३३, पृ.५६ ।
७. हिन्दी रूप रचना, सं. आचार्य जयेन्द्र त्रिवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१, पृ. २७ ।
८. हिन्दी भाषा और लिपि, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३३, पृ.५६ ।
९. हिन्दी रूप रचना, सं. आचार्य जयेन्द्र त्रिवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१, पृ. २७ ।
१०. वही, पृ.२७-२८ ।
११. नूतन भाषा सेतु, अप्रेल-जून, २००७, सं. डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ. ४ ।
१२. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं. श्रीनवलजी, आदीश बुक डीपो, दिल्ली, १९८४, पृ.१३५८ ।
१३. संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, सं. डॉ. शिवप्रसाद शास्त्री, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००४, पृ.८८२ ।
१४. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.७ ।
१५. वही, पृ. २० ।
१६. वही, पृ. २२ ।
१७. वही, पृ. ३० ।
१८. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.१० ।
१९. वही, पृ. २५ ।
२०. वही, पृ. ११४ ।
२१. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल पब्लिकेशन्स,बम्बई,१९५४, पृ.५ ।
२२. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.५२ ।

२३. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.२८ ।
२४. वही, पृ. ३९ ।
२५. वही, पृ. १०६ ।
२६. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.७ ।
२७. वही, पृ.४९ ।
२८. वही, पृ. ७० ।
२९. वही, पृ. ११८ ।
३०. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल पब्लिकेशन्स,बम्बई,१९५४, पृ.४ ।
३१. वही, पृ. १२ ।
३२. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.७० ।
३३. वही, पृ. ८४ ।
३४. वही, पृ. १२७ ।
३५. वही, पृ. १४२ ।
३६. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.१० ।
३७. वही, पृ. २१ ।
३८. वही, पृ. २९ ।
३९. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.८६ ।
४०. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.७४ ।
४१. वही, पृ. १०० ।
४२. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं.श्रीनवलजी, आदीश बुक डीपो, दिल्ली, १९८४, पृ.१११५ ।
४३. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा का शैलीशास्त्रीय अध्ययन, लालिमा वर्मा, जानकी प्रकाशन, पटना, १९८८, पृ. १३१ ।
४४. बृहत् हिन्दी कोश, सं.कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, २०००, पृ. ९१० ।
४५. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं.श्रीनवलजी, आदीश बुक डीपो, दिल्ली, १९८४, पृ.२२० ।
४६. बृहत् हिन्दी कोश, सं.कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, २०००, पृ. २३३ ।
४७. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा का शैलीशास्त्रीय अध्ययन, लालिमा वर्मा, जानकी प्रकाशन, पटना, १९८८, पृ. १३७ ।
४८. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.४३ ।
४९. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.४२ ।
५०. वही, पृ. ९३ ।
५१. बलचनमा, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.२०००, पृ.८९ ।

५२. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल पब्लिकेशन्स,बम्बई,१९५४, पृ.३३
५३. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.१५ ।
५४. वही, पृ. २७ ।
५५. वही, पृ. ३६ ।
५६. मुक्तिबोध की काव्यभाषा, डॉ.सनतकुमार, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, २०००, पृ.८० ।
५७. छायावादी काव्य : परंपरा और प्रयोग, त्रिलोकीनाथ पाण्डेय, संजय बुक सेण्टर, वाराणसी, १९८९, पृ. १५७ ।
५८. पंत एवम् निराला के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ.मंजुला जैन, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, १९९६, पृ. १२९-१३० ।
५९. बृहत् हिन्दी कोश, सं.कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, २०००, पृ. ८०८ ।
६०. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.११ ।
६१. वही, पृ. ३० ।
६२. वही, पृ. ३९ ।
६३. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.१३-१४ ।
६४. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.५२ ।
६५. वही, पृ. ७० ।
६६. वही, पृ. ८४ ।
६७. वही, पृ.१२७-१२८ ।
६८. वही, पृ. १३१ ।
६९. वही, पृ. १४४ ।
७०. पंत एवम् निराला के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ.मंजुला जैन, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, १९९६, पृ. १४३ ।
७१. कहानीकार निर्मल वर्मा, सुल्तान अहमद, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद, १९८९, पृ. ८४ ।
७२. बृहत् हिन्दी कोश, सं.कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, २०००, पृ. ७३२ ।
७३. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं.श्रीनवलजी, आदीश बुक डीपो, दिल्ली, १९८४, पृ.८९५ ।
७४. वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९८, पृ.४५ ।
७५. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८५, पृ.११ ।
७६. वही, पृ. १६ ।
७७. वही, पृ. ४२ ।

७८. वही, पृ. ७७ ।
७९. वही, पृ. ८९ ।
८०. नई पौंध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३, पृ.११ ।
८१. वही, पृ. ३३ ।
८२. वही, पृ. ४३ ।
८३. वही, पृ. ४६ ।
८४. वही, पृ. १२९ ।
८५. वही, पृ. १३८ ।
८६. वही, पृ. १४४ ।

अध्याय – ५
आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान

५.१ प्रमुख आँचलिक उपन्यास : विषयवस्तु व निरूपणरीति ।
- ५.१.१ मैलाआँचल ।
- ५.१.२ कब तक पुकारूँ ।
- ५.१.३ पानी के प्राचीर ।
- ५.१.४ जल टूटता हुआ ।
- ५.१.५ सागर लहरें और मनुष्य ।
- ५.१.६ आधा गाँव ।

५.२ नागार्जुन के आँचलिक उपन्यास : विषयवस्तु व निरूपणरीति ।
- ५.२.१ रतिनाथ की चाची ।
- ५.२.२ बलचनमा ।
- ५.२.३ नई पौंध ।
- ५.२.४ बाबा बटेसरनाथ ।
- ५.२.५ वरुण के बेटे ।

५.३ आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान ।

अध्याय : ५
आँचलिक उपन्यास परम्परा में नागार्जुन का स्थान

हिन्दी साहित्य आज अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर बिराजित है । आधुनिक काल में गद्यविधा का आरंभ हिन्दी साहित्य की एक अद्वितीय घटना थी । गद्यविधा के आविर्भाव ने हिन्दी साहित्य को विश्व साहित्य के परिप्रेक्ष्य पर लाकर खड़ा कर दिया । उपन्यास, कहानी, निबंध, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि गद्यविधाएँ अपने-अपने विकास के मार्ग पर अग्रसर होती हुई आज अपने चरमोत्कर्ष को छू रही है ।

हिन्दी में उपन्यास साहित्य का लेखन एक नव्य युग का अन्वेषी रहा । ऐसा कहा जाता है कि हिन्दी उपन्यास बंगला और अंग्रेजी भाषा के साहित्य से प्रभावित रहा है और यह काफी हद तक सही भी है । क्योंकि प्रारंभिक हिन्दी उपन्यासों में बहुत हद तक बंगला व पाश्चात उपन्यासों का प्रभाव दृष्टिगत होता है । लेकिन समय चलते हिन्दी उपन्यासों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई । प्रारंभिक उपन्यासकारों ने अपनी क्षमता के अनुरूप उपन्यास विधा में नये-नये प्रयोग किये और उसीका फल आज के हिन्दी उपन्यास का चरमोत्कर्ष है ।

प्रारंभिक उपन्यासों का स्वरूप घटनात्मक व मनोरंजन प्रधान रहा है । तत्कालीन उपन्यासकारों ने लोगों के मनोरंजन हेतु उपन्यासों का सर्जन किया । सन् १८८२ में सर्वप्रथम लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास लिखा, जिसे हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना गया । उसके बाद जासूसी उपन्यास, तिलस्मी उपन्यास, रोमानी उपन्यास, घटनाप्रधान उपन्यास, सामाजिक उपन्यास आदि प्रकारों में हिन्दी उपन्यास विकसित रहा ।

प्रेमचंद का प्रवेश हिन्दी कथा साहित्य के लिए वरदान रूप साबित हुआ । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपने साहित्य का प्रमुख स्वर बनाकर उन्होंने हिन्दी

साहित्य को अनेक माईलस्टोन कृतियाँ दी । ३५० से भी अधिक कहानियाँ और ११ पूर्ण तथा १ अपूर्ण उपन्यास के लेखन से वे हिन्दी साहित्य में छा गये । 'गोदान' प्रेमचंद का ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य का एक अद्वितीय उपन्यास रहा है । विश्व की ३६ भाषाओं में इसका अनुवाद इस बात की पुष्टि करता है ।

स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी उपन्यासधारा अपने बहुमुखी विकास की ओर अग्रसर रहा । उपन्यासकारों ने एक आम इन्सान को उपन्यास का केन्द्र बनाया । इस परम्परा में मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, मार्क्सवादी उपन्यास, आँचलिक उपन्यास आदि प्रकारों में हिन्दी उपन्यास का बहुमुखी विकास हुआ ।

सन् १९५४ में प्रकाशित फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैलाआँचल' हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास माना जाता है । हालाँकि सन् १९४८ में नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' और १९५२ में 'बलचनमा' उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे । लेकिन कुछ विद्वान इन्हें आँचलिकता की परिधि से बाहर मानते हैं । 'मैलाआँचल' के प्रकाशन के बाद आँचलिक उपन्यासों की होड़-सी लग गई । डॉ.ए.ए.शेख आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव को रचनाकारों की नव्यकांक्षी वृत्ति का परिणाम बताते हैं ।

हिन्दी के कुछ प्रमुख आँचलिक उपन्यास व उपन्यासकारों पर संक्षिप्त दृष्टि डालें । जो इसप्रकार है ।

फणीश्वरनाथ रेणु कृत **मैला आँचल**-१९५४, **परती परिकथा**-१९५७, **दीर्घतपा**-१९६३, नागार्जुन कृत **बाबा बटेसरनाथ**-१९५४, **रतिनाथ की चाची** - १९४८, **बलचनमा** - १९५२, **नईपौंध** - १९५३, उदयशंकर भट कृत **सागर लहरें और मनुष्य**-१९५६, रांगेय राघव कृत **कब तक पुकारूँ**-१९५८, **काका**, रामदरश मिश्र कृत **पानी के प्राचीर**-१९६९, **जल टूटता हुआ** -१९६९, **सुखता हुआ तालाब** -१९७२, **बीस बरस** - १९९६, डॉ.राही मासूम रज़ा कृत **आधा गाँव** - १९६६, शिवप्रसाद सिंह कृत **अलग-अलग वैतरणी**-१९६७, अमृतलाल नागर कृत **बूँद और समुद्र** - १९५६, **अमृत और विष**, डॉ.विवेकीराय कृत **सोनामाटी** - १९८३, डॉ.सूर्यदीन यादव कृत **माँ का आँचल** - १९९२, **दूसरा आँचल** - १९९१, **अँधेरा जहाँ उजाला** - २००३, **ममता** - २००२ आदि ।

इसप्रकार यह परम्परा निरंतर बढ़ती जा रही है । आँचलिक उपन्यास ने अपनी यात्रा में अनेक सशक्त व महत्वपूर्ण आँचलिक उपन्यास दिये । इन उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया । अनेक अछूते एवम् जनजातियों के जीवन को वाणी दी । आँचलिक उपन्यासों ने जीवन की ओर देखने का एक नया नजरिया विकसित किया और साथ ही आम आदमी के जीवन स्पंदनों का गहराई के साथ चित्रण किया । अब हिन्दी के प्रमुख आँचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु व निरूपणरीति को देखे ।

५.१ प्रमुख आँचलिक उपन्यास : विषयवस्तु व निरूपणरीति

५.१.१ मैला आँचल :

'मैला आँचल' फणीश्वरनाथ रेणु की प्रथम औपन्यासिक रचना है जिसका प्रथम प्रकाशन अक्तूबर, १९५४ को ममता प्रकाशन, पटना से हुआ था । बाद में इसका पुन:प्रकाशन डिसेम्बर,१९५४ को राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से हुआ । हिन्दी उपन्यास साहित्य की यह प्रथम रचना है, जिस 'आँचलिक' की संज्ञा दी गई।

'मैला आँचल' का कथ्यकाल सन् १९४५-४६ से लेकर १९४८ तक और स्थान की दृष्टि से बिहार के पूर्णिया जिले के एक छोटे-से गाँव मेरीगंज से जुड़ा हुआ है । उपन्यास की कथा दो खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड में ४४ अध्याय है जिसमें आझादी मिलने के पूर्व का चित्र है और द्वितीय खण्ड में २३ अध्याय है जिसमें आझादी मिलने के बाद का चित्रण हुआ है । पूरा गाँव उपेक्षित एवम् पिछड़ा हुआ है । गाँव में जमींदारों व तहसीलदारों का आतंक फैला हुआ है। गाँव में छोटे-मोटे चार-पाँच किसान है, बाकी कृषक-मजदूर ऐसे है जिन्हें साल भर भरपेट भोजन, तन ढँकने के लिए पर्याप्त वस्त्र और जाड़ा-बरसात से बचने के लिए ढंग के आवास भी नहीं है । शिक्षा के अभाव में ग्रामीण जन नाना प्रकार के अंधविश्वास, काल्पनिक डर और गलतफहमियों के शिकार हो रहे हैं ।

रेणु ने 'मेरीगंज' गाँव की भौगोलिक स्थिति से लेकर उसके इतिहास, नामकरण और सामाजिक-आर्थिक स्थिति का वर्णन मात्र नहीं किया, बल्कि सजीव बिंब भी उपस्थित किये हैं । उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्रों के रूप में डॉ. प्रशांत, तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद सिंह, कालीचरण, बालदेव, बासुदेव, रामकीरपालसिंह,

प्यारू, रामदास आदि का चित्रण हुआ है । तो नारी पात्रों के रूप में कमली, लछमी, ममता, मंगलादेवी आदि का चित्रण स्वाभाविक व सहज रूप से हुआ है ।

उपन्यास में किस्सागोई के द्वारा बहुत कम ही कथा कही गई है, पात्रों के व्यवहार, आचरण, बातचीत और चिंतन के द्वारा कथा कही गई है, जिसमें उनकी भाषा का भी पर्याप्त योगदान है । पूरे अँचल के जीवन को भलीभाँति प्रस्तुत किया गया है । इसमें जो चीज पहले सामने आती है वह है अँचल के निवासियों की निर्धनता, मानसिक पिछड़ापन, जमींदार या तहसीलदार का शोषण, जातिगत आधार पर आपस की फूट और कमीनगी । रेणु ने इस नग्न यथार्थ को बड़ी निर्ममता से प्रस्तुत किया है । उपन्यास खोलते ही अँचल का पूरा पिछड़ापन एक बारगी सामने आता है । ब्रिटिश शासन के आतंक से डरी और गुलामी की मानसिकता से दबी जनता का यह बहुत ही सच्चा चित्र है । गुलामी और गरीबी ने इस समाज की आत्मा को कुचलकर रख दिया है । गाँव का तहसीलदार अपने कमीनेपन में निर्धन ग्रामीणों से भी बड़ा है । डिस्ट्रीक्ट बॉर्ड के अधिकारी और कर्मचारियों को मिलिट्री वाले समझने से उसके मानसिक स्तर का पता चलता है । उसकी कमीनगी इस बात से व्यक्त होती है कि वह उन्हें अनुकूल बनाने के लिए घी, बासमती चावल और खस्सी ले जाता है । पर उसका खर्च गाँव वालों से वसूलता है ।

'मैला आँचल' में चित्रित ग्रामांचल की दूसरी पहचान है उसकी अंध विश्वासग्रस्तता, जो अशिक्षा और मानसिक पिछड़ेपन की उपज है । किसी को साँप काट लेता है तो वह प्रेत की करतूत बन जाता है । अंधविश्वासों की सृष्टि अशिक्षित ग्रामीणों की कल्पना बड़ी उर्वर होती है । जैसे कि मार्टीन साहब के खण्डहर के बारे में ग्रामीणों की कल्पना शक्ति ने अनेक मिथों की सृष्टि कर रखी है। जैसे ''ततमा टोले का नंदलाल एक बार ईट लाने गया; ईट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया । जंगल से एक प्रेतनी निकली और नंदलाल को कोड़े से पिटने लगी - साँप के कोड़े से ।''१ भूत-प्रेतों पर गाँव वालों को बहुत विश्वास है । ज्योतिषी की चौथी पत्नी की मृत्यु का कारण यह है कि अपनी रूढ़िवादिता के कारण वह उसका सिजेरियन नहीं करने देता ।

इस प्रकार अशिक्षा-अंधविश्वास से ग्रस्त समाज की निर्धनता स्वयं सिद्ध तथ्य है । इसी निर्धनता का चित्रण रेणु ने यथार्थवादी तरीके से किया है । ग्रामीण

मजदूरों को भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढाँकने को कपड़ा नहीं मिलता । तँत्रिमा, गहलोते और पोलिया टोली के लोगों ने अपनी जिन्दगी में कभी पुड़ी-जलेबी चखी ही नहीं । अनेक ग्रामीण पीलही, कालाजार, मलेरिया, पायरिया, गढिया आदि रोगों से ग्रस्त है । बच्चे रोग के निदान के बिना मर रहे हैं और उसका दोष डायन को दिया जाता है । और इस गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढिवादिता आदि का कारण जमींदार और उनके तहसीलदार द्वारा किया जाने वाला शोषण है ।

पूरा गाँव अंदरुनी फूट से भरा पड़ा है । विविध जाति के अनुसार टोलियाँ बनी हुई है । जैसे पोलिया टोली, तँत्रिमा टोली, छत्री छोटी, यादव टोली, गहलोत टोली, कुर्म टोली, अमात्य ब्राह्मण टोली, धनुकधारी टोली, कुशपाहा टोली, रैदास टोली आदि ।

गाँव में जमींदारों द्वारा मजदूर किसानों के शोषण का बहुत जाना-पहचाना तरीका है किसानों को उधार अनाज या कर्ज देकर उन्हें सदा के लिए अपना गुलाम बना लेना । कोई पर्व-त्योंहार आता है तो किसान सादे कागज पर अँगूठे का निशान देकर धनी किसानों से उधार लेते हैं । शर्त होती है भादों महीने में धान चुका देने पर ड्योढ़ा और अगहन में चुकाने पर तीन गुना ।

'मैला आँचल' में इस बात का पर्दाफाश किया गया है कि किस प्रकार कांग्रेस पार्टी शुरू से ही जनता को नये-नये सब्जबाग दिखाकर उसे छलती रही है । कांग्रेस पार्टी के अधिकतर नेता जमींदार और भूमिपतियों के समाज से आते थे । जो एकतरफ तो भूमिहीन किसानों का वॉट पाने के लिए उन्हें झूठे आश्वासन देते थे और दूसरी तरफ अपने वर्ग-स्वार्थ से जुड़े रहने के कारण भूमिसुधार के कार्यक्रमों को खटाई में डालते रहते थे ।

भारत को आजादी मिलने के समय ग्रामीण अँचलों को यही सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक यथार्थ था, जिसके चित्रण में रेणु ने पूरी प्रामाणिकता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और गहरी सहानुभूति का परिचय दिया है । ''रेणु के उपन्यासों में ग्राम्यजीवन की बदली हुई परिस्थितियों और सामाजिक मूल्यों के विघटन का यथार्थ चित्रण हुआ है ।''[२] रेणु की यथार्थ यात्रा यही पर समाप्त नहीं हो गई । किसानों की आर्थिक-सामाजिक दशा के साथ उनमें आयी राजनीतिक चेतना का भी रेणु ने

पर्याप्त विस्तार के साथ चित्रण किया है । इस राजनीतिक चेतना का गाँव में प्रवेश गांधीजी के नमक सत्याग्रह आंदोलन से शुरू होता है । बालदेव, चुन्नी गोसाई और बावनदास के माध्यम से रेणु ने समकालीन राजनीति के तीन पक्षों का चित्रण किया है । पाँचवे दशक में सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हो गया था । हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी अलग से आंदोलन में लगे हुए थे ।

मेरीगंज में एक मठ है जो भ्रष्टाचार और पाखण्ड का गढ़ है । नये महंतों को गद्दी देते समय वह पाखण्ड अपने चरम पर पहुँच जाता है ।

कालीचरण के नेतृत्व में मेरीगंज के गरीब किसानों में एक नई चेतना का उदय होता है । हरगौरी प्रतिक्रियावादी युवक है जिसे यह नई चेतना अखरती है । लेकिन युगों से पीड़ित, दलित और उपेक्षित लोगों को कालीचरण की बातें अच्छी लगती है । गाँव वालों में संघर्ष चेतना पैदा हो जाती है । प्रत्युत अंत में भोले गाँव वाले तहसीलदार की बातों में आ जाते हैं । रेणु ने सोश्यलिस्ट नेताओं में चरित्र का भी पर्दाफाश किया है ।

उपन्यास के अंत में एक चमत्कारपूर्ण घटना घटती है । तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद का हृदय परिवर्तन । वे गाँव के प्रत्येक परिवार को पाँच बीघे के हिसाब से जमीन लौटा देने की घोषणा करते हैं । चारों ओर हँसी-खुशी का वातावरण छा जाता है ।

कला की दृष्टि से भी 'मैला आँचल' एक सर्वोत्कृष्ट कृति रही है । रेणु की एक विशेषता रही है कि वे शुद्ध किस्सागोई के रूप में कथा कहते हैं । बिलकुल इत्मीनान से पाठकों को विश्वास में लेकर और कथा संसार के पात्रों के साथ एकमेक होकर । कथा प्रस्तुतीकरण में रेणु ने एक और प्रविधि का बहुत उपयोग किया है । वे अपने कथाकार को पात्रों की चेतना से इस प्रकार जोड़ देते है कि दोनों का अंतर मिट जाता है और कथा में एक अपरिचित नया स्वाद आ जाता है । रेणु की एक विशेषता यह है कि वे इस प्रकार के दृश्यों को ध्वन्यात्मक प्रभाव से युक्त कर उन्हें और भी नाटकीय और सजीव बना देते हैं । जैसे बिदापत नाच का चित्रण पूर्णत: नाटकीय रूप में हुआ है । मृदंग में बोल प्रस्तुत करने में रेणु माहिर है ।

पात्रों के स्वगत-चिंतन के रूप में कथा प्रस्तुत करने की प्रविधि का प्रयोग भी 'मैला आँचल' में हुआ है ।

रेणु ने कथा की प्रस्तुति में ग्रामीणों की भाषा का एक और उल्लेखनीय सर्जनात्मक प्रयोग एक विशेष प्रकार की शिल्प प्रविधि के माध्यम से किया है । कहीं-कहीं कथाकार ग्रामीण पात्रों की चेतना में प्रवेश करने के बावजूद परिनिष्ठित हिन्दी का ही प्रयोग करता है । इस प्रकार भाषा का अनेक स्तरों पर वैविध्य मैला आँचल की सर्वोपरि विशेषता है । उपन्यास के प्रत्येक पात्र को विशिष्ट व्यक्तित्त्व प्रदान करने तथा उनके मनोभाव और संवेदनाओं की निजता और वैशिष्ट्य को वाणी देने में यह भाषा वैविध्य अद्‌भुत रूप से कारगर हुआ है । ''मैला आँचल की भाषा उपन्यास की भाषा का एक नया आयाम सामने रखती है, जिसका अतिक्रमण अब तक हिन्दी या भारतीय भाषा के कोई दूसरा उपन्यास नहीं कर सकता है ।''[३]

५.१.२ कब तक पुकारूँ :

रांगेय राघव हिन्दी आँचलिक उपन्यास साहित्य के प्रथम पंक्ति के उपन्यासकारों में से एक है । सन् १९५७ में प्रकाशित 'कब तक पुकारूँ' उनका उच्च कोटि का आँचलिक उपन्यास रहा है । वैसे रांगेयजी ने अपने पूरे जीवनकाल दौरान ३८ उपन्यासों की रचना की है, उनमें से केवल दो ही उपन्यास आँचलिकता की परिधि में आते हैं । एक 'कब तक पुकारूँ' और दूसरा 'काका' ।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास का प्रथम प्रकाशन सन् १९५७ में 'राजपाल एण्ड सन्ज'-दिल्ली से हुआ । रांगेयजी का यह बृहत् उपन्यास है जिसकी कथा ६५८ पृष्ठों में लिखी गई है । एक किवदन्ति यह है कि यह उपन्यास रांगेयजी ने केवल एक ही महीने में लिख डाला था ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथाक्षेत्र राजस्थान जिले का एक छोटा-सा गाँव बैर है। बैर के आसपास का पूरा परिवेशांचल उपन्यास में चित्रित हुआ है । आँचलिक उपन्यास होने के नाते रांगेयजी ने इस उपन्यास में आँचलिकता के तकरिबन सभी लक्षणों का निर्वाह बखूबी ढंग से किया है । ३५ अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है ।

उपन्यास में कथानायक सुखराम की चार पीढ़ी की कथा को निरूपित किया गया है । सुखराम जो कि एक निम्न मानेजाने वाली करनट जाति में जन्मा पैदायशी बदनसीब इन्सान है । क्यों कि उसकी माँ एक नटनी थी और पिता ठाकुर थे ।

निरंतर नदी की भाँति बढ़ती कथा में सुखराम का विवाह प्यारी नामक स्त्री से होता है । प्यारी एक नटनी है । कथा में नट जाति के रहन-सहन से लेकर उनके पूरे परिवेश को चित्रित किया गया है । नट जाति के पुरुषों का आम व्यवसाय चोरी करना, नाच-गान करके लोगों का मनोरंजन करना, खेल दिखाना आदि है और स्त्रियाँ जरायम पेशे से जुड़ी हुई है । जरायम पेशा अर्थात् देहव्यापार करके पैसा कमाना ।

उपन्यास में तत्कालीन समाज में फैले दुराचार, अत्याचार तथा हेवानियत का पर्दाफाश किया गया है । जमींदारों व ठाकुरों के द्वारा गरीब मजदूरों व किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों का यहाँ पर हृदयद्रावक वर्णन मिलता है । साथ ही पुलिस के दारोगा की हेवानियत तथा कामवृत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है । उपन्यास में दारोगा करनटों को चोरी के आरोप में पकड़कर ले जाते हैं और उनको छोड़ने के बदले में उनकी स्त्रियों का शारीरिक शोषण करते हैं । दूसरी ओर ये नटनियाँ एक-एक पैसे के लिए भी अपना पेट बेचती है, इस बात का पता उनके पति को भी होता है । लेकिन यह बात उनके लिए सामान्य-सी बन गई है । जैसे - ''बस खेल करते हैं इधर-उधर, शिकार मार लेते हैं । शहद बेचते हैं, औरतें खेल करती है । पर जाने क्यों वह नहीं कह सकी कि औरतें पेशा करती है और फिर इसीसे मर्द उनकी इज्जत करते हैं । जितनी जवान होगी उतनी ही उसकी कदर भी होगी ।''[४]

प्यारी शरीर से तंदुरस्त व सुंदर थी । एक बार दारोगा रुस्तमखाँ की नजर उस पर पड़ जाती है । बाद में दारोगा के अत्याचारों से बचने के लिए वह उसके घर में रखत बनकर बैठ जाती है । वह सुखराम से अब भी प्रेम करती है लेकिन सुखराम को इस बात का गहरा सदमा पहुँचता है । बाद में सुखराम के जीवन में एक और स्त्री 'कजरी' का प्रवेश होता है । जो सुखराम के दु:खी जीवन में एक आशा, एक नई ज्योत का संचार करती है । मानवमन की विविध गुत्थियों तथा

मानवता पर प्रश्नार्थ लगाती कथा विविध परिस्थितियों की टकराहट से गुजरती आगे बढ़ती जाती है ।

उपन्यास में आँचलिकता के सभी लक्षणों का निर्वाह लेखक ने बखूगी ढंग से किया है । जैसे देखे तो - ''शाम हो गई थी । ढोर लौटने लगे थे.....।''५ पाठक अपने आप को गाँव का एक हिस्सा मेहसूस करने लगता है ।

समय के कालचक्र ने सुखराम को बहुत ही विवश और अकेला बना दिया। प्यारी और कजरी की मृत्यु के बाद सुखराम के लिए एक ही मात्र सहारा रह जाता है चंदा । जो कि एक अंग्रेजी मेम सूसन की पुत्री है । उसे पाल-पोस कर बड़ा करता है और उपन्यास के अंत में चंदा पर किसी ठकुरानी का साया है ऐसा मानकर उसकी हत्या कर देता है ।

उपन्यास में कई प्रासंगिक कथाओं का चित्रण भी लेखक ने किया है । लेकिन ये सभी कथाएँ मुख्य कथा को विकसित करने में सहयोग देती है । उपन्यास कर अंत करुण है । ६५८ पृष्ठ में विभाजित बृहत् कथा होते हुए भी रांगेय जी पाठक को अंत तक जकड़े रखने में जरूर सफल रहे हैं ।

उपन्यास के शिल्पविधान की बात करे तो रांगेय जी ने शिल्पगठन प्रभावक ढंग से किया है । उपन्यास की कथा ज्यादात्तर सुखराम के मुख से कहलवाई गई है, कहीं-कहीं लेखक खुद भी कहता जाता है । इस प्रकार कालविपर्यय पद्धत्ति का प्रयोग कथालेखन में किया गया है । रांगेय जी की भाषा सशक्त व प्रभावक रही है। जैसे अपने जीवन के अंतिम समय में प्यारी का चित्रण कुछ इस प्रकार से किया है - ''दिया टिमटिमा रहा था । धीरे-धीरे वह बुझने के पहले जैसे एक बार फिर अपनी सारी ताकत से जगमगाने की चेष्टा कर रहा था । अन्धकार को जैसे इस बार वह सदा के लिए मिटा देने को सन्नद्ध हो उठा । प्यारी का मुँह सफेद-सा पड़ चला था ।''६

बिम्ब-प्रतीक व कहावतें-मुहावरों का प्रयोग भाषा को सक्षम बनाने में सहायक हुआ है । जैसे - ''पूरा चाँद निकला हुआ था । झील में उतर आया था बेईमान, चाँदी की नाव बनकर, जिस पर किरनों की लड़कियाँ बैठकर आई थी ।

पानी की लहरों पर आकर जैसे नाव डूब गई थी, और वे लड़कियाँ लहरों पर बहने लगी थी ।''७

इस प्रकार रांगेय राघव द्वारा रचित प्रस्तुत उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' आँचलिक उपन्यास परम्परा में मिल का पत्थर बना हुआ एक सशक्त आँचलिक उपन्यास है । जो कि कथा एवम् शिल्प दोनों की दृष्टि से सफल सिद्ध होता है ।

५.१.३ पानी के प्राचीर :

'पानी के प्राचीर' डॉ.रामदरश मिश्र की उत्तम औपन्यासिक रचना रही है । हिन्दी उपन्यास साहित्य की आँचलिक श्रेणी में यह कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है । मिश्रजी की यह रचना आँचलिक उपन्यास सर्जन में एक नया आयाम रखती है ।

उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले का गँवई परिवेश उपन्यास का कथाक्षेत्र है । लेखक ने पूर्वाभास में लिखा है – ''पांडेपुरवा नामक गाँव की कहानी इस पूरे भूभाग की कहानी है । सारे पात्र काल्पनिक है किन्तु उनके दर्द इस पूरे प्रदेश के यथार्थ दर्द है । इन पात्रों की जो शक्तियाँ हैं वे भविष्य की उज्जवल संभावनाएँ हैं, इनमें जो अशक्तियाँ और कुरुपताएँ हैं वे विषम परिस्थितियों के परिणाम है । हमें इनके प्रति कठोर नहीं, सहृदय होना चाहिए । इस प्रदेश की व्यापक पृष्ठभूमि पर जो मानवमूल्यों और उच्चत्तर जीवन सत्यों के रूप उभरे हैं वे एक देशीय न होकर पूरे समाज के हैं ।''८ भले ही डॉ.मिश्रजी की यह कहानी और कथाक्षेत्र काल्पनिक रहे हो किन्तु इनके चित्रण में जितनी सहजता और सजीवता है उतनी शायद वास्तविक कथा या कथाक्षेत्र के चित्रण में शायद न हो पाता ।

उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्रों के रूप में नीरू(निरंजन), सुमेश, केशव, कुबेर पांडे, महेश, बैजनाथ, रामदीन, मलिन्द, गनपति, छेदी, रामदयाल, टीशुन आदि का चित्रण हुआ है । तो स्त्री पात्रों के रूप में संध्या, लीला, गेंदा, बिंदिया, रूपा, चमेली, गुलाबी आदि का चित्रण पाया जाता है । वैसे उपन्यास में कई पात्र आये हैं लेकिन प्रमुख रूप से उपरोक्त पात्रों के आसपास ही कथा का गूँफन हुआ पाया जाता है ।

उपन्यास की कथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले के भारत के एक पिछड़े गाँव की मानसिकता और वहाँ के पूरे अँचलीय परिवेश का चित्रण करती है । लेखक ने उपन्यास के प्रारंभ में पूर्वाभास में लिखा है - ''यह कहानी स्वाधीनता प्राप्ति के पहले की है, स्वाधीनता प्राप्ति के अवसर पर हमने पूरे उल्लास के साथ अनुभव किया था कि पानी के ये प्राचीर अब टूटेंगे ही । ये प्राचीर टूटे कि हमारी सारी उम्मीदें टूटी इसका परिचय इस उपन्यास के दूसरे भाग में (जो अलिखित भाव से अनुभूतियों में पड़ा है) देने का प्रयास किया जायेगा । यों यह एक भाग भी अपने आप में स्वतंत्र और संपूर्ण है । अत: इसे हम पहला भाग न कहकर संपूर्ण उपन्यास ही कहेंगे ।''९

उपन्यास की कथा ७४ परिच्छेदों की कुल ३१३ पृष्ठों में विभाजित है । उपन्यास के प्रारंभ में गाँव में होली का त्योंहार मनाया जा रहा है । जिसमें गाँव के बच्चे रामदीन नामक एक बुड्ढे को उसकी झोंपड़ी और खटिया समेत होली के लिए जलानेवाली लकड़ियों के ढेर में उठाकर रख देते हैं । रामदीन का इस संसार में कोई नहीं है । नसीब ने उसके साथ नाइन्साफी पहले से ही कर रखी है । ऊपर से यह नई मुसिबत ! कैसे भी कर के वह अपने इस जीवन से निपट जाना चाहता है और इसीलिए कहता है - ''मुखिया बाबू! किसलिए निकलू ? बाल-बच्चों को भगवान ने छीन लिया । जो रही सही झोंपड़ी थी उसे आपके इन राजकुमारों ने उजाड़कर होली मइया में डाल दिया । उससे भी पेट नहीं भरा तो चारपाई समेत मुझे भी डाल दिया । अब इससे बढ़िया चिता कहाँ मिलेगी । आज आप लोगों को असीस देती हुई मेरी साँस-साँस उड़ जायेगी ।''१० रामदीन अपनी खटिया समेत होली में जल जाना चाहता है और जाते-जाते ऐसे लोगों को आशिष दे जाना चाहता है जिन्होंने उसकी झोंपड़ी तक न रहने दी । कथानायक नीरू को रामदीन के प्रति एक अथाह श्रद्धा जगती है और कैसे भी कर के रामदीन के जीवन में थोड़े घण्टे की जिन्दगी और लिख देता है । गाँव के बाहर एक ऊँचे टीले पर बैठे रामदीन को नीरू खाना देता है, सहारा देता है ।

कथानायक नीरू एक सत्रह वर्षीय होनहार युवक है । पढ़ने-लिखने का शौकीन लेकिन गरीबी के कारण अपनी हरेक ईच्छा का गला घोंटने वाला नीरू पाठक वर्ग में प्रेरणा का स्रोत बनकर आता है । नीरू अपने पिता के कार्यो से दु:खी

है क्यों कि उसके पिता सुमेश को घर की जिम्मेदारियों से ज्यादा नातीदारों और अपने शौक को पूरा करने में ज्यादा दिलचस्पी है । इसलिए नीरू पर घर की सारी जिम्मेदारियाँ आ पड़ती है । वह पढ़ता जाता है और घर की जिम्मेदारियाँ सफल ढंग से निभाता जाता है । उसके घर में उसकी माँ, एक छोटा भाई (केशव) और एक छोटी बहन (लीला) है । नीरू को अपने परिवार का बहुत खयाल रहता है । नीरू के पात्र में आदर्शवादिता, ईमानदारी, निड़रता, संवेदनशीलता आदि गुण कुट-कुटकर भरे हुए हैं । इन गुणों के कारण ही उसके चरित्र में एक प्रकार की गरिमा पाई जाती है । वह शोषण का विरोधी है और इसलिए मुखिया के बेटे महेश द्वारा जब रमेश को पिटा जा रहा था तब बीच बचाव करता हुआ नीरू महेश को पिटकर भगा देता है । नीरू के पात्र में रहे इन सब गुणों के पीछे उनके दादा के संस्कार जिम्मेदार है, इन्हीं के कारण नीरू गाँव में स्वमान से सर ऊँचा रखकर चलता-फिरता है ।

नीरू अपने पड़ोसी घनश्याम तिवारी की पुत्री संध्या से प्रेम करता है । संध्या भी नीरू को चाहती है । दोनों एक दूसरे के साथ विवाह के बंधन में बंधना चाहते हैं लेकिन नीरू अपनी गरीबी और अभाव के कारण संध्या के घर रिश्ता लेकर जाना नहीं चाहता था । संध्या अपनी आगे की पढ़ाई के लिए शहर चली जाती है और उसे शहर की हवा लग ही जाती है । अंत में उसका विवाह शहर में एक सी. आई. डी. ऑफिसर से हो जाता है और नीरू के कई अरमान टूटकर चकनाचुर हो जाते हैं । इन सारी परिस्थितियों का एक मात्र कारण गरीबी और अभाव है । पूरे गाँव की आर्थिक हालत कमझोर रही है । जिसकी अभिव्यक्ति कुछ इसप्रकार देख सकते हैं - ''पास पडोस के लोग घिर आये हैं । बैजू एक ओर उदास भाव से बैठा है- पता नहीं यह उदासी माँ के छिन जाने के भय से है या उसकी मृत्यु के बाद गला दबाने वाले खर्च-वर्च की कल्पना से ।''[११] यहाँ हम पाते हैं कि एक युवक अपनी माँ की मृत्यु से इतना दु:खी नहीं है जितना कि उसकी मौत के बाद किये जाने वाले कर्मकाण्ड के खर्चे की वजह से है । यह गरीबी गाँव के घर-घर में अपने पैर जमाये हुए है । गाँव में अधिकांश लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन कृषि है । लेकिन इसके लिए कुदरत पर आधीन होने से इनका जीवन अधिक नसीब पर आधारित बन गया है । ''बावग का समय आ गया, परन्तु हे भगवान! यह क्या कि आसमान में बादल का एक टुकड़ा भी नहीं दिखाई पड़ता । क्या होगा, रबी का अनाज तो अभी से चुकने लगा । खरीफ भी नहीं होगी तो क्या आदमी अपना हाड़

चबायेगा ?''१२ इस प्रकार लोगों की आर्थिक स्थिति का अंदाजा भलीभाँति लगाया जा सकता है ।

गँवई आँचलिक समाज अपने गर्भ में कई अन्यायों को समाये हुए रहता है। इस समाज में बुरे से बुरा कार्य भी धर्म व श्रद्धा की आड़ में रहकर हो रहा है । जिसका एक उदाहरण देखे - ''छोटे-छोटे स्वार्थो में व्यस्त लोगों के मन में सही बात बहुत देर से उतरेगी । जाति-पाँति, छूआ-छूत, ऊँच-नीच का भेदभाव अभी कस कर जकड़े हुए है लोगों का और उसके जाने में समय लगेगा ।''१३ यहाँ पर जातिगत वैमनस्य के कारण उद्‌भवित समस्याओं की ओर लेखक ने इशारा किया है। इसमें एक समस्या और है बेमेल विवाह । जिसका उदाहरण गेंदा के पात्र में देख सकते है । जैसे - ''गेंदा की शादी हो गई थी । हाँ शादी ही कहिए । बैजू ने एक शुकुल के हाथ गेंदा को डाल दिया था । गेंदा की ठांठे मारती जवानी बूढ़े के हाथ क्यों सौंप दी गई ?''१४ इस प्रकार एक से बढ़कर एक सामाजिक समस्याएँ इस गाँव में भरी पड़ी है ।

जमींदार और मुखिया का शोषण बेसुध किसान-मजदुरों के जीवन को और भी मार्मिक बना देता है । गाँव का मुखिया कुबेर पांडे अपनी स्वार्थ पूर्ति और लालसा के लिए गाँव में अपनी धाक जमाता रहता है । तो दूसरी ओर गजेन्द्रसिंह भी अपनी जमींदारी की धाक किसानों पर जाड़ता रहता है । ''दरबार में बीसो किसान पकड़कर लाये गये थे । सब के सब फटे हाल, नंगे बदन, धूल- धूसरित सर वाले । मुंशीजी सब को बारी-बारी से मुर्गा बनाकर पीट रहे थे, चिलचिलाती घूप चोट के ऊपर लेपन कर रही थी ।''१५ इस प्रकार यहाँ हम जमींदारों द्वारा किसानों पर हो रहे शोषण-अत्याचार का परिचय प्राप्त कर सकते हैं ।

ऐसे तंग वातावरण में कुदरत भी अपना विकराल स्वरूप मौके-बेमौके दिखाती रहती है । कभी बाढ़ के रूप में तो कभी अकाल के रूप में । समग्रत: किसानों का पूरा जीवन समस्याओं का पर्याय बना हुआ है ।

उपन्यास का सब से सशक्त पहलू उपन्यास की भाषा है । लेखक ने इस उपन्यास में भाषा का प्रयोग सशक्त रूप से किया है । उपन्यास का कथाक्षेत्र ठेठ ग्रामीण परिवेश होने के बावजूद कहीं भी भाषा संप्रेषण में रुकावट नहीं आई है ।

कहीं-कहीं पर गँवई बोली का प्रयोग हुआ है, लेकिन वह भी पाठक वर्ग समझ सके इतने सरल रहे हैं । साथ-साथ कहावतों-मुहावरों का प्रयोग भाषा क्षमता को और निखार देता है । जैसे कहिया पूत जनमलें कहिया झांकरि भइल, मियाँ की दौड़ मसजिद तक, साँप भी मारा गया और लाठी भी न टूटी, सौ चूहा खाय के बिलाय चली हज को, जल में रहना और मगर से बैर आदि कहावतों का प्रयोग अभिव्यक्ति कौशल को और निखार देता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास 'पानी के प्राचीर' में आँचलिकता के सभी लक्षणों का बखूबी ढंग से निर्वाह हुआ है । उपन्यास अपने कथा और शिल्प दोनों की दृष्टि से डॉ.मिश्र जी की एक सफल, उत्तम कृति रही है । आँचलिक परिवेश का चित्रण अपने चरम उत्कर्ष पर रहा है । जिसमें लेखक का भाषा कौशल सोने में सुहागा रहा है । 'पानी के प्राचीर' एक सफल, उत्तम आँचलिक उपन्यास रहा है ।

५.१.४ जल टूटता हुआ :

'जल टूटता हुआ' डॉ.रामदरश मिश्र की औपन्सासिक कला का बेजोड़ नमूना है । उपन्यास की कथा आँचलिक परिवेश का कच्चा चिट्ठा खोलती है । गोरखपुर जिले का एक छोटा-सा अँचल 'तिवारीपुर' उपन्यास का कथा क्षेत्र है । लेखक ने तिवारीपुर गाँव और उसके आसपास के पूरे ग्रामीण परिवेश को, उसकी आँचलिकता को बखूबी ढंग से उपन्यास में चित्रित किया है ।

कथानक २४ परिच्छेदों में विभाजित है । उपन्यास का कथागूँफन लेखक की विशेषता रही है । २८२ पृष्ठों में विभाजित पूरे कथानक में लेखक ने कई अवांतर कथाओं का निरूपण किया है, लेकिन यह अवांतर कथाएँ मुख्य कथा के लिए कहीं भी रुकावट या गति अवरोधक नहीं बनी है । मुख्य कथा का प्रवाह उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अन्त तक निरंतर चलता रहा है । वस्तु संघटन की लेखक की अपनी एक विशिष्ट दृष्टि, विशिष्ट सोच रही है । जो उपन्यास को सफल बनाने में सहायक सिद्ध होती है ।

उपन्यास में प्रमुख पुरुष पात्रों के रूप में सतीष, दीनदयाल, दौलतराय, महीपसिंह, सुग्गन तिवारी, जगपतिया, रामप्रकाश, रामकुमार, बनवारी बाबा,

धनपाल, बंसी, जगदीश प्रसाद (अमलेशजी), चंद्रकांत, कुंजू, उमाकांत पाठक, मऊगा दलसींगार, बलई, बिरजू आदि का चित्रण हुआ है । तो प्रमुख स्त्री पात्रों के रूप में बदमी, गीतवा, जमुन बसंती, पार्वती आदि का चित्रण हुआ है ।

यह उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय गाँवों की वास्तविक परिस्थिति का चित्रण करता है । जिस प्रकार डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले के भारतीय गाँव की अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार यह उपन्यास उस कड़ी को जोड़ता हुआ स्वतंत्रता बाद के भारतीय गाँव को अभिव्यक्त करता है । स्वतंत्रता मिलने के बाद आजाद भारत देश की जो मीठी कल्पना की गई थी, उसका कडुवा यथार्थ है यह उपन्यास । इसी यथार्थ को लेखक ने कुछ इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है । ''आज पंद्रह अगस्त का सारा उत्सव उनकी सिहरन में जैसे डूब गया था । इतने साल हो गये आजादी मिले हुए ! यह अभागी जिन्दगी टस से मस नहीं हुई । पानी की फुँवार वैसे ही हमारी फसलों पर पछाड़ खाती लोटती रही है । इस साल भी यह पछाड़ खेतों का हाड़ तोड़कर रहेगी । रबी की फसल को भी क्या जाने हो गया है ! जब खरीफ लुट जाती है तो रबी भी लुट जाती है । जेठ गुजरे अभी तो दो मास भी नहीं हुए है कि सारा अन्न साफ ! उसे लगा फिर अंतड़ियों में दर्द हो रहा है; हाँ, भूखी अंतड़ियाँ दर्द नहीं करेगी तो क्या करेगी ?''[१६] इस प्रकार स्वतंत्रता का कोई अच्छा परिणाम नहीं आ पाया है । जो भूख और डर स्वतंत्रता पहले भी था, वह उसके बाद भी वैसे ही बना रहता है । तत्कालीन राजकीय नेताओं ने जो-जो खुली आँखों से सपने दिखाये थे, उसे पूर्ण करने के प्रयत्न में वे बिलकुल विपरीत परिस्थितियों का निर्माण करने लगे । सत्ता और स्वार्थ के लालच में आकर उन्होंने अपना जमीर बेच दिया, जिसका परिणाम एक सामान्य जन, एक सामान्य व्यक्ति को बहुत बुरी तरह भुगतना पड़ा । ''जनता सोचती थी कि आजादी मिलने पर इन देशद्रोहियों को फांसी मिलेगी, इनकी जमीन गरीबों को बांट दी जायगी । मगर इन वर्षो में कुछ और ही तस्वीर सामने आई । बाबू महीपसिंह कांग्रेस के मेम्बर हो गये, नेताओं की निगाह में कांग्रेस के प्रिय व्यक्ति । यही नहीं जिला बॉर्ड के सदस्य भी बन गये।''[१७] इस प्रकार अपने स्वार्थो को पूरा करने की होड़-सी लग गई स्वतंत्र भारत में । जिसको लेखक व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं ।

भारतीय समाज जीवन में निम्न मानेजाने वाले शोषित, पीड़ित समुदाय ने आजादी का मतलब कुछ और ही समझ लिया था । गांधीजी ने हरिजन उद्धार की जो-जो बातें कहीं थी, प्रयत्न किये थे उन सब पर आझादी के बाद पानी फिर गया। इसका एक उदहरण देखे - ''सतीष को गाँव से कस्बे की ओर जाते हुए अमलेश तिवारियों की कतार-सी दिखाई पड़ी, घर में अंग-अंग उघारती हुई माताओं की गीली आँखें सीलनभरी अधगिरी दीवारों के बीच तड़पती नजर आई । आजादी मिले इतने वर्ष हो गये, किन्तु आज भी यह गाँव सुग्गन तिवारी के रूप में कस्बे जा रहा हैं आज भी जमुनाभाभी के रूप में गाँव की माताएँ अपने तन का छल्ला-छल्ला उतारकर बेटी के तन की शोभा बढ़ाने की जगह चौधरी की तिजोरी में दफना रही है।''१८ इस प्रकार गरीब और भी गरीब होता जा रहा है तथा अमीरों की तिजोरी पैसों, गहनों से भरती जा रही है । तत्कालीन इसी परिस्थिति के परिणाम स्वरूप उपन्यास में रामकुमार, जगपतिया आदि पात्रों के द्वारा समाजवादी विचारधारा का कुछ निरूपण हुआ भी पाया जाता है । जैसे - ''इस देश में चार आना दिन मजदूरी पाने वाले मजूर भी है और दूसरी ओर चार हजार महीना पाने वाले अफसर भी है; कई हजार प्रतिदिन कमाने वाले सेठ लोग है । इस देश की विषमता का रूप बड़ा ही शर्मनाक है ।''१९

ऐसी व्यथामई परिस्थितियों में जी रहा आँचलिक मनुष्य ऊपर से समाज द्वारा लादे गये झूठे अंधविश्वास और रीति-रिवाजों का भोग बनकर अपना रहा- सहा अस्तित्व भी खो बैठता है । समाज की विविध समस्याएँ जैसे कि बाल विवाह, विधवा पुर्नविवाह, बेमेल विवाह आदि इस गाँव और पूरे परिवेश को निचोड़ रही है। एक उदाहरण से समझे - ''जानते हो तिवारी, जब मैं तेरह साल की हुई जो शादी कर दी गई और उसी साल कुछ महीने बाद मुझे बिदा भी कर दिया गया । हाय, मुझे क्या मालूम था कि सादी-ब्याह का क्या मतलब होता है और जब मतलब सामने आया तो मैं मारे लाज और तकलीफ के मर गई ।''२० कच्ची और कम उम्र में विवाह कर देने पर लड़की की क्या हालत होती है, इस बात का परिचय यहाँ प्राप्त होता है ।

इन लोगों का पूरा जीवन विटंबनाओं के भँवर में गोता लगाता, डूबता, उफनता बीत जाता है । एक ओर तो ये लोग खेती-बाड़ी पर अपना जीवन यापन करते हैं और दूसरी ओर समय-समय पर आती कुदरती आफतें इन लोगों के

रहे-सहे सपनों को भी तोड़ देती है । भूख रूपि दहकता अग्नि इन लोगों के जीवन को न जाने कितने युगों से जलाता आ रहा है । ''सभी घरों में भूख लोट रही है, भूख की चोरी करने कौन चोर आयेगा ? भूख...भूख....भूख....उसे लगा कि उसके पेट में कोई खौल रही है । गुलसार जलती थी नहीं, तो मिले क्या ? कोई भूजाये भी तो क्या ? सारे गाँव में कोई चीज है भी भूजाने लायक ? घर-घर उपसा होता है । बाढ़ आई अभागी सब लूट ले गई ।''[२१] इस प्रकार गँवई लोगों का आर्थिक जीवन बहुत हद तक कष्टदाई और कुदरत पर आधारित होता है ।

ग्रामीण परिवेश में भूत-प्रेत की बातों पर अधिक विश्वास किया जाता है। इसके पिछे भी इनकी अशिक्षा और धार्मिक अंधविश्वास ही कारणभूत है । भूत-प्रेत इन लोगों के समाज का एक अंग बन चुके होते हैं । कोई भी गरीबी, बिमारी या आकस्मिक आई घटना को भूत-प्रेत के साथ जोड़ देते हैं । भूत-प्रेत को इन विटंबनाओं के कारक बताकर कुछ अपना स्वार्थ साध लेते हैं । उपन्यास में इस बात का चित्रण कुछ इस प्रेकार से हुआ है । ''चमार चमरिया पूजता है, ब्राह्मण बरम पूजता है, क्षत्रिय डीह पूजता है, मुसलमान जिन्न पूजता है और सच तो यह भी है कि सभी एक-दूसरे के भूत को पूजते हैं ...और केवल भूत पूजते हैं । चमरिया, डीह, बरम सभी भूत है और भूत-पूजा आज भी कम नहीं हुई है और सच बात तो यह है कि आझादी के बाद भी शिक्षा-दीक्षा का ठीक विकास नहीं हो पा रहा है । जो अपढ़, गंवार है वे भूत पूजते हैं और जो पढ़े-लिखे है, जिन्हें अपने शिक्षित होने का गर्व है वे पैसे पूजते हैं, स्वार्थ का भूत पूजते हैं ।''[२२] इस प्रकार भूत-प्रेत की बातें इन लोगों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गई है । इसका एक मात्र कारण शिक्षा के अभाव को बताया गया है । और इसलिए लेखक का यह वाक्य कि - ''शिक्षा की यदि कमी न होती तो ये गाँव स्वर्ग बनते ।''[२३] बिलकुल यथार्थ सिद्ध होता है ।

उपरोक्त परिस्थितियों ने आँचलिक जनता और आँचलिक परिवेश को पिछड़ा जरूर रखा है । लेकिन कई बातें ऐसी भी है, जिसमें ये लोग दिन-ब-दिन प्रगति की सीढ़ी चढ़ रहे हैं । जैसे देखे तो राजनीतिक दाव-पेंच, विविध षड़यंत्र, भ्रष्टाचार आदि बातें स्वतंत्रता पहले तक इन लोगों को बहुत सूक्ष्म मात्रा में छू सकी थी, लेकिन आजादी मिलने के बाद तो जैसे इन समस्याओं का मूल ही गँवई-आँचलिक परिवेश बन गया । इसका एक उदाहरण देखे - ''नीति नहीं,

राजनीति तो हुई । राजनीति में यह सब कुछ क्षम्य है, जायज है । आप लोग राजनीति और आदर्श को एक कर के मत देखिए । इस भावुकता से राजनीति नहीं चलती, बहुत कुछ अप्रिय काम करने पड़ते हैं । विजय के लिए चाणक्य और कृष्ण के उदाहरण हमारे सामने हैं ।''२४ यह संवाद सुनकर लगता ही नहीं कि यह एक गँवई आँचलिक व्यक्ति द्वारा बोला गया संवाद हो । समग्रतः राजनीति का गंदा खेल अब इन देहातों को भी छू गया है ।

डॉ. रामदरश मिश्र एक जागरुक साहित्यकार है । इन्होंने अपने इस उपन्यास में जहाँ विविध समस्याओं को उजागर किया, वहाँ कहीं-कहीं पर सामाजिक जागृति का कार्य भी किया है । और उनके इस प्रयास में उनकी व्यंग्यात्मक शैली का परिचय भी प्राप्त होता है । नारी के प्रति सम्मान की भावना को उजागर करते हुए उन्होंने नारी पर हो रहे अत्याचारों का खुलकर विरोध किया है । शोषित और पीड़ित नारी के मुख से विद्रोहात्मक स्वर निकलना मिश्र जी की नारी सम्मान भावना को उजागर करता है । जैसे - ''जुलुम कोई भी करे लेकिन पीसी जाती है औरत ही । मरद मरद को गाली भी देगा तो उसकी माँ, बहन, बेटी को जोड़कर । ये सिपाही औरत को क्यों पकड़ लाये, यह मैं नहीं समझ पाई । जैसे मरद का कोई भी जुलुम का जज्ञ औरत की आहुती के बिना पुरा नहीं होता ।''२५ इस प्रकार मिश्रजी ने औरत के प्रति सहानुभूति दिखाकर उसके अंदर विद्रोह का स्वर फूँका है ।

उपन्यास कलापक्ष की दृष्टि से भी सशक्त जान पड़ता है । आँचलिक परिवेश की अभिव्यक्ति होने के बावजूद भाषा का स्वरूप शुद्ध खड़ीबोली हिन्दी का रहा है, इसलिए संप्रेषण में अवरोध पैदा नहीं करता । दूसरी बात लेखक ने विविध शैलियों के प्रयोग से कथा को रोचक बना दिया है । जैसे व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण देखे तो - ''देहांत में पुरुषार्थ पत्नी को पीटे बिना अधूरा रहता है। हर नायक को परंपरा से यह धरोहर प्राप्त होती चलती है ।''२६ तो साथ ही विविध गँवई कहावतों का प्रयोग भाषिक संरचना को चार चाँद लगाते हैं । जैसे ढाक के तीन पात, उल्टे चोर कोतवाल को डाँटे, साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे, दूध का दूध और पानी का पानी होना, जिस पत्तल में खाना उसीमें छेद करना आदि जैसी कहावतों का प्रयोग शिल्प गठन को और भी प्रभावक बनाता है ।

समग्रतः डॉ.रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' आँचलिक उपन्यास परंपरा में अपनी एक अलग, विशिष्ट पहचान रखता है । लेखक ने आँचलिकता के तकरीबन सभी लक्षणों का निर्वाह उपन्यास में भली-भाँति किया है । जिससे पूरा उपन्यास आँचलिक परिवेश का जीता-जागता उदाहरण रूप साबित हुआ है । आँचलिकता की दृष्टि से यह उपन्यास सफल सिद्ध होता है ।

५.१.५ सागर लहरें और मनुष्य :

हिन्दी उपन्यास की विकास परंपरा में 'आँचलिक उपन्यास' ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है । फणीश्वरनाथ रेणु से प्रारंभ होकर इस उपन्यास परंपरा ने अपना बहुमुखी विकास किया । जिसमें उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित 'सागर लहरें और मनुष्य' आँचलिक उपन्यास परंपरा में एक नवीन परिपाटी को लेकर रचा गया उपन्यास है ।

वैसे प्रमुख तौर पर आँचलिक उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष के पिछड़े, गँवई अँचल को और वहाँके परिवेश को वाणी देने का प्रयास किया गया होता है। लेकिन 'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में उदयशंकर भट्ट ने कुछ नवीन प्रयोग कर के अपने उपन्यास का कथाक्षेत्र मुंबई महानगर के एक छोटे-से प्रांत 'बरसोवा' को चुना है । ''बरसोवा' का असली नाम बिसावा है । यह मुंबई समुद्र तट के पूर्व-पश्चिम में मछलीमारों की बड़ी बस्ती है । अँधेरी से पश्चिम की तरफ लगभग तीन-चार मील दूर ।''[२७] इस प्रकार आँचलिक उपन्यासों के कथाक्षेत्र की घीसी-पीटी परिपाटी को तोड़कर लेखक ने शहरी अँचल के एक छोटे-से प्रांत को अपने उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया ।

प्रस्तुत उपन्यास में बरसोवा में रह रहे 'कोली' जाति के मछलीमारों की जीवनगाथा को प्रस्तुत किया गया है । ''इस जाति को कोली कहा जाता है ।... आदमियों की पोशाक एक बनिइयन या कमीज । नीचे घुटनों के ऊपर तीकोना, रंगीन रूमाल पहने रहते हैं । पीछे का भाग खुला । स्त्रियाँ रंगीन लाँगदार साड़ी या धोती पहनती है । ऊपर चोली । धोती का फेंटा कमर में खोंसा रहता है । संपन्न परिवार की स्त्रियाँ ऊपर चादर भी ओढ़ती है । कान में मछली की तरह सोने की गाँठ । गले में मंगलसूत्र (सोने की जंजीर) मोहन माल या चपला हार । हाथों में

बागड्या (कड़ा) सोने की ।''२८ इस प्रकार कोली जाति के संपूर्ण लोक मानस और विविध संस्कारों को उपन्यास में चित्रित किया गया है ।

उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र के रूप में यशवंत, बिट्ठल, नाना, जागला, डॉ. पांडुरंग, माणिक, मी. धीरुवाला, माटकेकर, बाउला, बर्लीकर, मांगा, मनोहर, हरिचंद आदि का चित्रण हुआ है । तो प्रमुख स्त्री पात्रों के रूप में रत्ना, बंशी, सारिका, हीरा, ईठा, दुर्गा, गूत्ती, पार्वती, गूगी आदि का चित्रण हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में रत्ना का चरित्रचित्रण प्रमुख नायिका के रूप में हुआ है। जिसके माध्यम से लेखक ने नारीगत समस्याओं और उसके समाधान को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । नारी स्वतंत्रता की मुहीम में उदयशंकर भट्ट का यह महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है । युगों से पीड़ित नारी को लेखक ने जंजीरों से मुक्त कर के अथाह गगन की सैर कराने का प्रयास किया है । रत्ना जो कि एक मछलीमार की पुत्री है । पूरे उपन्यास में वही एक मछलीकार की कन्या है जो पढ़ने-लिखने जाती है । शिक्षित होने के कारण उसके विचारों में स्वतंत्रता और आधुनिकता की गहन छाप प्रतिबिम्बित होती है । एक जगह पर लिखा है - ''फिर भी एक कसक थी कि इतना पढ़ने पर क्या उसे ऐसे ही मछलीमार से शादी करनी पड़ेगी । फिर पढ़ने का क्या फायदा । क्या वह अपनी सखी सारिका की तरह स्वतंत्र नहीं रह सकती ? क्या उनके लोगों जैसा कोई सुंदर लड़का उसको नहीं मिल सकता ? कभी-कभी महाभारत की मत्स्यगंधा की बात उसे याद आ जाती ।''२९ इस प्रकार रत्ना के मन में शिक्षा का बहुत गहरा प्रभाव लक्षित होता है और उसे अपने मछलीमार होने पर घृणा होने लगती है । वह अपनी शादी को लेकर बहुत उत्साहित है । उसे शहर की रंग-बिरंगी दुनिया, वहाँ के एशो-आराम, पार्टिया, मोज-मस्ती आदि का एक अजीब-सा खिंचाव है ।

उपन्यास में बरसोवा के कोली जाति के सामाजिक जीवन की बहुत ही यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है । उनके समाज में अनैतिक संबंधों के कडुवे यथार्थ को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है - ''वंशी उसे नौकर नहीं समझती थी । लोगों की नजर में वह नौकर था, पर एकांत में जागला के प्रति उसका व्यवहार सदय था ।''३० यहाँ पर वंशी नामक स्त्री अपने नौकर जागला के प्रति आकर्षित है, उससे अवैध रूप से संबंध भी रखती है । जागला की किसी अन्य स्त्री से शादी

करने की बात से वह झुंझला उठती है । तो दूसरी एक जगह पर माणिक अपनी पहली पत्नी दुर्गा की माँ और उसकी सास गूगी से शारीरिक संबंध रखता है । जैसे देखे तो - ''अचानक एक रात भाई के आवाज लगाने पर दुर्गा की आँख खुली तो देखा कि बिलकुल अँधेरा है और माँ दरवाजा खोलकर बाहर जा रही है । दुर्गा को लगा जैसे सारी छत उसके ऊपर आ गिरी है । थोड़ी देर बाद माणिक उठा । उसने दरवाजा बंद कर दिया और सो गया ।''[३१] इस प्रकार एक दामाद और सासु के अनैतिक संबंध को बताकर लेखक ने उस समाज के एक कमजोर पहलू को उजागर किया है ।

किसी भी जाति के समाज की एक बहुत हीन समस्या के रूप में 'दहेज प्रथा' का इस उपन्यास में भी लेखक ने चित्रण किया है । जैसे - ''अपने यहाँ लड़की पर रुपया मिलता है तो क्यों न रुपया लिया जाये । बिना रुपया हम लड़की नहीं देंगे । हमारी कमाऊ लड़की है ।''[३२] यहाँ पर दहेजप्रथा का स्वरूप कुछ बदला हुआ नजर आता है । आम तौर पर शादी-ब्याह के अवसर पर लड़कीवालों के पक्ष की ओर से लड़केवालों को दहेज देना पड़ता है । लेकिन यहाँ बरसोवा में लड़केवालों को खुद लड़कीवालों को दहेज देना पड़ता है । क्योंकि यहाँ पर कोली जाति की औरते खुद व्यवसाय करती है, मछली बेचने जाती है, घर का आर्थिक बोझ उठाती है । अत: दहेजप्रथा का एक नया रूप सामने आता है ।

वैसे प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिक परिवेश का कुछ खास चित्रण नहीं हुआ है । लेकिन फिर भी एक-दो अवसर पर धार्मिक बातों का जिक्र अवश्य मिलता है । जैसे - ''नारियल पूर्णिमा का दिन था । ...प्रत्येक घर से सजे हुए नारियल लेकर स्त्रियाँ गाती हुई निकली । ...लड़कों का झुण्ड भजन गाता हुआ चल रहा था ।... जुलूस बरसोवा के उत्तर में सीनियाँ महादेव के मंदिर के पास इकट्ठा हुआ । ... एक नाव में भजन मंडली गीत गा रही थी । ...एक खास लगह जाकर समुद्र की पूजा हुई । सबने अपने-अपने नारियल चढ़ाये । लोगों की तरफ से प्रसाद बाटा गया ।''[३३] इस प्रकार ये मछुवारे साल के एक निश्चित दिन समुद्र की पूजा करते हैं। यह दिन उनके जीवन का महत्वपूर्ण दिन होता है । धार्मिक भाव से ये लोग अपने समुद्र देव की पूजा करते हैं, जिनसे इन लोगों का जीवन चलता है ।

इस बरसोवा में कोई राजनीतिक दल या उनके बीच चल रहे दाँव-पेंचों की बात नहीं की गई है । बल्कि एक जगह पर पुलिस की बेईमान वृत्ति की बात करते हुए लिखा है - ''फिर रत्ना ने अपनी आँखे खोल दी थी ।...पुलिस के लोग अपनी दक्षिणा लेकर चले गये ।''[३४] इस प्रकार एक जगह पर पुलिस तंत्र की बेईमानी और भ्रष्टाचार वृत्ति का आंशिक रूप में चित्रण मिलता है ।

बरसोवा के लोगों की आर्थिक हालात कुछ ज्यादा ही कमजोर चित्रित हुई है। इन लोगों का एक मात्र व्यवसाय मछलीमारी था । जिसमें समय-समय पर आते तूफान और आंधी की वजह से इन लोगों का जीवन कगार पर खड़े पेड़-सा मालूम होता है । कुछ मछलीमारों की आर्थिक हालत इतनी कमजोर होती कि जैसे आज मरे या कल ! ऐसे ही पात्र है इट्ठा और उसकी माँ । जब इट्ठा को बिमारी से बचाकर बंशी उस पर उपकार करती है, तो वही इट्ठा उस वंशी के घर मछली चोरी करते हुए पकड़ी जाती है । पूछने पर बताती है - ''तुमने मुझे रोग से भूखा मरने कूं क्यों बचाया बंशी बाय । क्या करेंगा, मग काम नहीं मिलताय ।''[३५] इस प्रकार काम के अभाव में इन मछलीमारों की स्त्रियों की बहुत बुरी हालत है । क्योंकि पुरुष के अभाव में वह तो मछली मारने नहीं जा सकती थी ।

इन लोगों की आर्थिक कमजोरी के पीछे एक अन्य कारण यह भी है कि ये लोग अपने पारंपरिक व्यवसाय से मुँह मोड़कर भाग रहे हैं । जैसे लेखक ने लिखा है - ''यह हमारी शिक्षा का दोष है कि वह हमें अपने काम से हटा देती है और मामूली नौकरी करने पर मजबूर करती है । किसान का लड़का पढ़कर किसनई नहीं करना चाहता, बल्कि पचास रुपये का क्लर्क बनना चाहता है ।''[३६] इस प्रकार अपने खानदानी व्यवसाय को छोड़कर लोग पलायन कर रहे हैं, जिसके कारण उनको बहुत कुछ भुगतना पड़ता है । नोबत यहाँ तक आ जाती है कि इन लोगों के पास दवा के लिए भी पैसे नहीं रहते । तो दूसरी और अपनी औरत की बेइज्जती कर के भी पति पैसा कमाने को दौड़ता है । जैसे - ''रुपये पाने की उग्र चाह में वह रत्ना के स्त्री होने का भी फायदा उठाना चाहता था ।''[३७] इस प्रकार इन लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर रही है ।

बरसोवा के मछलीमार अपने सांस्कृतिक परिवेश मजबूत रूप से जुड़े हुए है। विविध पर्व-त्योंहारों पर ये लोग एक साथ मिलकर हँसी-खुशी से पूरे त्योंहार को

मनाते हैं । होली के अवसर पर सब लोग एक साथ मिलकर एक दूसरे पर रंगों की बौछार करते है, गीत गाते हैं । जैसे –

''हाय हाय होली खेला तू जायगी
हाय हाय होली उरात् जायगो ।
वालाचा काल केट झेडनी जाये
दारा महीन्यांची माफी हौलू बाई,
खेलत जाई और उरत जाई ।''[३८]

इस प्रकार सगाई के अवसर पर गाया जाने वाला यह गीत कि –

''नाई गोंगे, खालगोंगे आज लायलिंगो मजूरी झर
ए थूनी बर आले मांझे कवल वाइली की लागो ।''[३९]

इस प्रकार 'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में आँचलिकता के तकरीबन सभी लक्षणों का निर्वाह बखूबी ढंग से हुआ है । कथा निरूपण रीति की दृष्टि से देखे तो इसमें लेखक ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह है बम्बइया हिन्दी का स्वरूप । जिसका एक उदाहरण देखे –

''मग धन्धा तो चलताय नई ?
कौन बोलताय ?
एई मार्किट का लोक से हम पूछा ।
सब साला झूठ बोलताय । हमकू अब एक होटल खोलने का ।
क्यों ?
ए काम हम नई करेंगा ।''[४०]

इस प्रकार बम्बइया हिन्दी का प्रयोग कथा में रोचकता का संचार करता है । शिल्प गठन के एक अंग के रूप में बिम्ब का चित्रण करते हुए लेखक ने उपन्यास की शुरूआत में ही प्राकृतिक बिम्ब को चित्रित किया है । जैसे – ''...पुनो की रात। आकाश से दूध की धार बरस रही थी । धरती का कोना-कोना हँस रहा था । समुद्र की सतह पर जहाँ तक निगाह जाती, मोतियों का चूरा बिछा था । लहरों की

आकाश चूमने वाली ऊँची दीवारों के किनारे पर फेनों की गोट लगी दीख पड़ती थी।''[४१] इस प्रकार कुछ जगहों पर कहावतों का प्रयोग शिल्प गठन को और भी प्रभावक बनाता है । जैसे – ''पूत के पैर पलने में दीख जाते हैं ।''[४२]

समग्रतः प्रस्तुत उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' आँचलिकता की परंपरा में अपनी एक विशिष्ट पहचान छोड़ जाता है । लेखक के द्वारा किये गये कुछ नवीन प्रयोग–खास कर कथा क्षेत्र और भाषा प्रयोग–पाठकों को उपन्यास पढ़ने पर मजबूर करते हैं, आकर्षित करते हैं । आँचलिक उपन्यास परंपरा में यह एक अद्वितीय कृति है ।

५.१.६ आधा गाँव :

डॉ.राहीमासूम रज़ा कृत प्रस्तुत उपन्यास 'आधा गाँव' का प्रकाशन सन् १९६६ में हुआ । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास आँचलिक उपन्यास परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने उत्तरप्रदेश के 'गंगौली' नामक गाँव को अपना कथाक्षेत्र बनाया है ।

उपन्यास में वैसे तो तकरीबन १०० से भी ज्यादा पात्रों की सृष्टि हुई है लेकिन उनमें प्रमुख पुरुष पात्रों के रूप में फुन्नन मियाँ, ठाकुर कुवरपालसिंह, गुज्जन मियाँ, मासूम, रसूल, हुसैन, सुलेमान आदि का चित्रण हुआ है तो प्रमुख स्त्री पात्रों के रूप में गोरी, नईमा, सकीना, जिनती, जैनब, दिलआरा, सितारा, गुलबहरी, बच्छन आदि का निरूपण हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास के विषय में प्रारंभ में ही लेखक ने लिखा है कि – ''यह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफर है । मैं गाज़ीपुर की तलाश में निकला हूँ, लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूँगा । अगर गंगौली की हकीकत पकड़ में आ गई तो मैं गाजीपुर का 'एपिक' लिखने का साहस करूँगा । यह उपन्यास वास्तव में उस एपिक (महाकाव्य) की भूमिका है ।

परंतु एक बात सुन लीजिए । यह कहानी न कुछ लोगों की है और न कुछ परिवारों की । यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के भले– बुरे पात्र अपने को पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । यह कहानी न धार्मिक है, न

राजनीतिक । क्योंकि समय न धार्मिक होता है, न राजनीतिक और यह कहानी है समय ही की । यह गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी है ।''[४३] इस प्रकार पूरे उपन्यास में गंगौली में रहने वाले उन मुसलमानों की जीवन गाथा प्रस्तुत की गई है जिसे राहीमासूम रज़ा ने खुद अपनी आँखों से देखा और अनुभूत भी किया है । ''यह आपबीती भी है और जगबीती भी ।'' कहता हुआ लेखक अपनी मौलिकता का परिचय भी दे ही देता है ।

उपन्यास में मुसलमान जाति के शिया लोगों के जीवन-परिवेश को चित्रित करने का प्रयास किया गया है । शिया लोगों का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिवेश इस उपन्यास में झाँकता है । जैसे - ''दूसरा ब्याह कर लेना या किसी ऐरी-गैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था, शायद ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो, जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हों । जिनके घर में खाने को भी नहीं होता वे भी किसी न किसी तरह कलमी आमों और कलमी परिवार का शौक पूरा कर ही लेते थे ।''[४४] इस प्रकार मुसलमान समाज के एक प्रचलित रिवाज बहुविवाह को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है । इस बहु विवाह की प्रथा के पिछे उनका एक मात्र लक्ष्य होता था अपने जातिसमूह का विस्तार करना लेकिन इस बेमतलबी स्वार्थ के पीछे उनकी आर्थिक हालत बहुत ही कमजोर हो जाती है । इसका एक उदाहरण देखे तो - ''ठाकुर साहब को जब यह मालूम हुआ कि कलक्टर साहब बहादूर का माली आया हुआ है, तो वह झट से बाहर निकल आये । हालाँकि यह वक्त था अपनी रण्डी गुलाबीजान के साथ आराम करने का । (यह गुलाबीजान बड़ी कट्टर मुसलमान थी । ठाकुर साहब के कमरे से जाकर वह फौरन नहाती थी और अल्लाह मियाँ से माफी माँगती थी कि पेट की वजह से उसे एक काफिर के साथ सोना पड़ता है ।)''[४५]

इस प्रकार पूरे उपन्यास में लेखक ने आँचलिकता के तकरीबन सभी लक्षणों का निर्वाह बखूबी ढंग से किया है । भौतिक परिवेश के चित्रण की बात हो या चाहे राजनीतिक परिवेश के चित्रण की बात हो लेखक की कलम पूरे जोश से चली है । जैसे - ''ऐ मामू, ई अली जहीर साहब अउर एकबाल सुहैल के एलेकशनवा में का किया जाये साहेब ?...जान पर खेलकर मुकाबला तो कर ही डालता । आखिर उत्तर और दक्खिन पट्टियों का मामला था ।'' तो दूसरी एक जगह धार्मिक परिवेश

का चित्रण देखे तो – ''अरे भाई साहब, हिजरत करना तो मुसलमानों की तकदीर है। आखिर रसूलेखू दा ने भी मक्के से मदीने की तरफ हिजरत की थी कि नहीं ।''

प्रस्तुत उपन्यास का अभिव्यक्ति पक्ष भी लेखक की औपन्यासिक कला का बेजोड़ नमूना पेश करता है । पूरे उपन्यास में लेखक ने भोजपूरी उर्दू का प्रयोग बखूबी ढंग से किया है । जैसे देखे तो – ''ओको का कहें! माई बोली, जरा–सा बात भई ना कि तोरा टेंटुआ खुला ना...बस पें–पें शुरू कर देथ्यु । ई नफिसा तुहों कउनो काम जोग न छोड़य्हें । आओ, बेटा, हमरे पास आओ ।''[४६] इस प्रकार भाषा प्रयोग के क्षेत्र में लेखक पूर्ण रूप से सफल हुए हैं । लेखक ने पूरे उपन्यास में अधिकतर आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है । जिसमें विविध कहावतों का प्रयोग उपन्यास की कलात्मकता को चार चाँद लगा देते हैं । जैसे 'मरता क्या न करता', 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगुवा तेली' ऐसी कहावतों का प्रयोग लेखक की विद्वता के परिचायक है ।

समग्रत: 'आधा गाँव' डॉ.राहीमासूम रज़ा का सर्वोत्कृष्ट आँचलिक उपन्यास है । जिसमें आँचलिकता के सभी तत्त्वों का लेखक ने सफल ढंग से प्रयोग किया है। अनुभूति और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में यह लेखक की उत्तम रचना रही है ।

५.२ नागार्जुन के आँचलिक उपन्यास : विषयवस्तु व निरूपणरीति

५.२.१ रतिनाथ की चाची :

प्रस्तुत उपन्यास की रचना सन् १९४७ में हुई थी । बाद में इसका पुन: प्रकाशन वाणी प्रकाशन, दिल्ली से ई.स. १९८५ में किया गया । प्रस्तुत उपन्यास के कथानक विषयक संक्षेप में कहे तो उपन्यास में एक विधवा स्त्री की मनोदशा और उसके सामाजिक स्थान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । रतिनाथ की चाची (गौरी) जो अपने पति की मृत्यु के बाद अपने देवर से गर्भवती बनती है और इस घटना के बाद उस पर अपने समाज के द्वारा ढाये गये असह्य सीतम, दु:ख आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत उपन्यास में की गई है । प्रमुख पुरुष पात्र के रूप में उमानाथ, जयनाथ, वैधनाथ, रतिनाथ, चुम्भन झा, जयकिशोर आदि का चित्रण है, तो स्त्री पात्रों के रूप में दम्मो फूफी, प्रतिभामा, चाची (गौरी) आदि का सजीव

चित्रण किया गया है । ''इस लघु उपन्यास की पात्र श्रेणी भी समस्त मनवोचित गुण-अवगुण से परिपूर्ण है ।''४७ प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से नागार्जुन का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गँवई समाज अँचल में विधवाओं की स्थिति का मार्मिक चित्रण करना साथ ही मानव-मन के सूक्ष्म आवेगो-संवेदनों की अभिव्यक्ति करना। अत: सब से पहले सामाजिक परिवेश को लेकर प्रस्तुत उपन्यास की विवेचना इस प्रकार से है ।

''दिल घड़क रहा था कि कहीं उसीके बाप का नाम चाची के मुँह से निकल आवे ! चार मास से रति का बाप - जयनाथ लापता है ।''४८ प्रस्तुत गद्यांश में नागार्जुन ने अवैध यानी समाज जिसका स्वीकार नहीं करता उस बात की अभिव्यक्ति की है । रतिनाथ की चाची मोहल्ले की स्त्रियों के साथ बातचीत कर रही है उस समय रतिनाथ को इस बात का डर है कि अपने पिता जो घर से निकल गये हैं वह बात चाची के मुँह से निकल न जाये । इस बात का उसे डर है । दूसरी बात देखे तो नागार्जुनजी ने बाल मनोविज्ञान का भी परिचय करवाया है ।

राजनीतिक परिस्थिति का नागार्जुनजी ने अपने इस उपन्यास में बखूबी चित्रण किया है । जैसे - ''आहट बिलकुल करीब आ गई । चाची ने अपने को और कड़ा कर लिया, कोई भी हो धबड़ाना नहीं चाहिए । बदनामी तो फैल ही गई । अब और इससे अधिक क्या होगा दारोगा फाँसी तो देगा नहीं हाँ पहरा जरूर बैठा दे सकता है । सरकार ने कानून में गर्भ गिराना नाजायज है तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादूर ने यह कानून बनाया होगा, कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती ।''४९ यहाँ पर नागार्जुनजी यह बताना चाहते है कि समाज में जो व्यक्ति अपराध करता है, उसे दण्ड तो अवश्य ही मिलता है । चाची (गौरी) ने जो भूल की थी उनकी सजा तो मिलेगी लेकिन वह सरकार की दोहरी नीति पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि अगर सरकार किसी पाप के लिए कानून बनाती है तो उस पाप को ही मिटाने का प्रयास न करके उस पापी को ही क्युं सजा देती है । इस प्रकार यहाँ राजनीति का एक विशिष्ट रूप में चित्रण हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में गँवई लोगों की आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि ये लोग बहुत ही विकट परिस्थिति से गुजर रहे हैं । जैसे - ''तूफान आया तो आम की फसल चौपट हो जायेगी ।''५० किसानों का जीवन कुदरत आधारित

होता है । आकस्मिक आँधी आते ही जमीन की सारी फसल नष्ट हो जाती है । अचानक आये तूफान से अगर आम की फसल नष्ट हो जाये तो उन गरीब किसानों की हालत क्या होगी यह तो खुद वह ही बता सकते हैं । इससे उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही भयावह हो सकती है ।

''आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन लगा नहीं । सराइयाँ तीन थी, देवता दो ही थे । शालिग्राम और नर्मदेश्वर । ताँबे की सराई शालिग्राम के लिए, पीत्तलवाली नर्मदेश्वर के लिए । तीसरी भी पीत्तल की ही थी । वह पंच देवता के उद्‌श्य से थी । चन्दन रगड़कर उसने अच्छत भिगोये । 'ॐ सहस्त्रशीर्षा ....' आदि मंत्र पढ़कर शंख से शालिग्राम पर जल धारा, फिर नर्मदेश्वर पर । फिर अनमने भाव से चन्दन, अच्छत, फूल वगैरह चढ़ाकर रति ने पूजा खतम की । उधर थाली में भात-दाल परोसा जा चुका था ।''[५१] यहाँ पर गँवई व्यक्ति की धार्मिक मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है ।

नागार्जुन ने इस उपन्यास में अपनी दृष्टि केवल सामाजिक व धार्मिक परिवेश को ही उजागर करने पर रखी है । अत: सांस्कृतिक परिवेश कुछ कमझोर-सा मालूम पड़ता है । लेकिन इसके बावजूद भी उपन्यास में आँचलिक परिवेश चित्रण में कहीं भी बाधा या अवरोध नहीं आया है और यही नागार्जुन की औपन्यासिक कला की विशेषता है ।

उपन्यास की निरूपण रीति को लक्ष्य में रखते हुए कह सकते हैं कि नागार्जुन ने प्रस्तुत उपन्यास में बहुत ही प्रभावक ढंग से शिल्प का गठन किया है । विविध शैलियों का प्रयोग उपन्यास को रोचक व प्रभावक बनाता है । जैसे पूर्वदीप्ति शैली का एक उदा. देखे तो - ''वह भादों का महीना था । अमावस की रात थी । एक घनी और अँधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ़ आई । उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा...''[५२] यहाँ पर रतिनाथ की चाची के साथ हुए अवैध संबंध की बात का पता चलता है । तो कहीं-कहीं पर कहावतों और मुहावरों का प्रयोग वस्तु संघटन को चार चाँद लगाते हैं ।

५.२.२ बलचनमा :

प्रस्तुत उपन्यास 'बलचनमा' का प्रकाशन सन् १९५२ में हुआ । उपन्यास में नागार्जुन ने बिहार राज्य के दरभंगा जिले के एक छोटे-से प्रांत को अपना कथाक्षेत्र बनाया है । स्वतंत्रताकालीन भारत के एक छोटे-से अँचल को अपना कथाक्षेत्र बनाकर उस अँचल की वास्तविक परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है । पूर्वदीप्ति शैली में लिखे गये प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन की औपन्यासिकता के सुन्दर उदाहरण पाये जाते हैं ।

उपन्यास का प्रमुख पात्र सत्रह-अठारह साल का एक नवयुवक है । जिसका नाम बलचनमा है । उपन्यास की सारी घटनाओं का कर्ता-हर्ता वही पात्र है । स्वतंत्रताकालीन भारत के अँचलीय क्षेत्र का पूरा परिवेश, यथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का बखूबी चित्रण इसमें किया गया है । प्रारंभ में जमींदारों द्वारा किसानों पर किये जानेवाले अत्याचार व शोषण का वर्णन है । बलचनमा जो कि एक जिम्मेदार पुरुष के रूप में चित्रित हुआ है, अपने पिताजी की मृत्यु के बाद घर व परिवार की सारी जिम्मेदारी उसके ही कंधों पर आ जाती है । लेकिन तत्कालीन जमींदारों के शोषण से वह भी ग्रसित है । प्रत्युत उसकी शोषण के प्रति यह खामौशी उपन्यास के अंत में टूट जाती है और वह क्रान्ति के स्वर में जमींदारों के अत्याचारों का मुकाबला करता है । बलचनमा के माध्यम से लेखक ने अपने क्रान्तिकारी स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत कर दी है ।

संक्षेप में उपन्यास का कथानक सुगठित व श्रृंखलाबद्ध रहा है । विषयवस्तु और घटनाक्रम की दृष्टि से परखने पर नागार्जुन की औपन्यासिकता का सुन्दर स्वरूप दृष्टिगोचर होता है । पूरे उपन्यास में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसानों की सामाजिक व राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जागरुकता को दिखाना ही रहा है और उपन्यास के अंत में लेखक अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल भी रहे हैं ।

कलापक्षीय विशेषताओं के अंतर्गत नागार्जुन की अपनी अलग पहचान है । जैस - ''डराँडोर के सहारे गमछा को कमर से लपेट कर पोखर में नहाने उतरा । कहावत है - **आन गामक पोखरि अपना गामक काछी** याने अपने गाँव का बाग और दूसरे गाँव का पोखर डरावना होता है ।''[५३] इस प्रकार विविध गँवई कहावतों के प्रयोग से पूरा उपन्यास जीवंत बन पड़ा है ।

५.२.३ नई पौंध :

नागार्जुन कृत आँचलिक उपन्यास लेखन में प्रस्तुत उपन्यास 'नई पौंध' का प्रकाशन सन् १९५३ में हुआ । उपन्यास के प्रमुख पात्रों के रूप में बिसेसरी, बाचस्पति, खंजन पाठक, टुनाई, बुदुर मामा, बूलो, दुर्गानन्दन, दिगंबर, खोंखा पंडित, रामेसरी, चतुर्भुज आदि का चित्रण हुआ है । उपन्यास नारी को केन्द्र में रखकर लिखा गया है । इसमें नारी मन के विविध संवेदनों को अभिव्यक्ति दी गई है ।

''पंडित खोखाई झा की नतनी काफी खूबसूरत थी । चौदहवाँ टपकर पन्द्रहवें में अभी उसने पैर रखे ही थे कि यह जेठ का महीना आ धमका । अब उसकी शादी होनेवाली थी ।''[५४] यहाँ पर आँचलिक समाज के सबसे कमझोर पहलू बालविवाह की बात बताई गई है । पंडित की नतनी की अभी पन्द्रहवें वर्ष में बैठी ही थी कि उसकी शादी करने की सोच रहे हैं । ऐसे बालविवाह के कारण बाद में उसे कई सारी मुसिबतों का सामना करना पड़ता है ।

''अपने पिता की इधर की गति-विधि से रामेसरी बड़ी शंकित रहती थी। शंकित होने का कारण क्या था ?

कारण यही था कि रामेसरी को छोड़ कर बाकी छहो बेटियाँ खोंखा पंडित ने बेच डाली थीं ।

महेसरी से उन्हें १९०० मिले थे ।
भुवनेसरी से ८०० मिले थे ।
गुनेसरी से ७०० मिले थे ।
गुंजेसरी से १००० मिले थे ।
वानेसरी से ७०० मिले थे । और -
धनेसरी से ९०० मिले थे । और अब बिसेसरी का नम्बर था । फसल तैयार खड़ी थी, कटने भर का विलम्ब था !''[५५]

यहाँ पर लगता है जैसे आँचलिक समाज में मानवता ने अपनी अंतिम साँस ले ली है । एक पिता अपनी बेटियों को पैसे के लिए बेच रहा है । एक तो छोटी उम्र में लड़कियों की शादी और उस पर ऐसे अमानुषी पिता द्वारा सामने से लिये जानेवाले पैसों के कारण लड़कियों की हालत अपने ससुराल में क्या हो सकती है ये

तो वह खुद ही महसूस कर सकती है । लगता है जैसे समस्त मानवीय संवेदनाओं ने यहाँ पर दम तोड़ दिया है ।

उपन्यास की निरूपण रीति के कुछ उदाहरण उपन्यास की उच्चता के द्योतक है । जैसे - ''पौ फटने को थी । अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसीसे हवा में कुछ ठंडक थी । पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदे टपका रहे थे। सूखी धरती ने दिल खोल कर वर्षा का स्वागत किया था । जहाँ-तहाँ मेढ़क पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जयजयकार कर रहे थे । ऊपर खेतों की बलुआही मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था ।''५६ पूरी प्रकृति मानो नागार्जुन की कलम का पावन स्पर्श पाकर खिल उठी हो उस प्रकार चित्रित हुई है । ''गेहुँआ से मढ़ा हाड़ों का कमजोर ढाँचा । फाँक-सी आँखे, नुकीली नाक । बड़े-बड़े कान । पतली मूँछ, चिकने गाल । पहनावे में मामूली धोती, कंधे पर गमछा चारखाना ।''५७ यहाँ पर भी नागार्जुन की सुन्दर लेखन शैली का परिचय प्राप्त होता है ।

५.२.४ बाबा बटेसरनाथ :

आँचलिक उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' का प्रकाशन सन् १९५४ में हुआ । मिथिलाप्रदेश के 'रूपउली' गाँव को अपने उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाकर नागार्जुन ने उस गाँव की चार पीढ़ियों की कथा को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । एक वट् वृक्ष के माध्यम से कथा प्रवाह को आगे बढ़ाया गया है । ''आजकल नायक विहीन रचना का नया प्रयोग उभर रहा है ।''५८ आजादी के बाद के भारतीय गँवई क्षेत्र के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को रोचक ढंग से निरूपित किया गया है ।

कथानक दो खण्डों में विभक्त है । पूरे कथानक में जमींदारों द्वारा गरीब किसानों पर किये जाते अत्याचारों, शोषण, राजनीतिक आंदोलनों, अकाल, पुर जैसी कुदरती आफतों और इन सब समस्याओं से लड़ता-झूझता गँवई मनुष्य इन सब का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है । उपन्यास के प्रमुख पात्रों के रूप में जैकिसुन यादव, बाबा बटेसरनाथ, जैनारायन, हाजी करीमबक्स, दयानाथ, जीवनाथ, टुनाई पाठक, जनुआ आदि का चित्रण हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन ने एक वट्वृक्ष को लेकर उस समाज के हर एक पहलू को खोला है । यहाँ पर उपन्यास का नायक जैकिसुन को वट्वृक्ष गाँव की बातें बता रहा है । जब आजादी के बाद संयुक्त राष्ट्र की संकल्पना आई तब गाँव में जमींदारीप्रथा का उन्मूलन होता देख गाँव के जमींदार अपनी-अपनी जमीन बेचने लगे थे और ऐसे समय में वे लोग सार्वजनिक उपयोग की जमीन भी बेचने लगे थे। इस प्रकार यहाँ जमींदारों की क्रूरनीति का एक हल्का-सा एहसास जरूर होता है । ''आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई किन्तु सौ वर्ष पहले दर-असल अपने इन इलाकों में जमींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था । रियाया से बैठ-बेगार लेना उनका सहज अधिकार था....वह रोब! वह दबदबा! वह अकड़! वह शान! वह तानाशाही! वह जोर! वह जुल्म! क्या बताऊँ, बेटा ? छोटी औकात और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकौड़े समझता ही था, अच्छी-अच्छी हैसियत के भले-खासे व्यक्तियों से वक्त-बेचक नाक रगड़वाता था जमींदार !''५९

नागार्जुन ने प्रस्तुत उपन्यास में वैश्वीकरण की व्यापक समस्या को केन्द्रस्थ करके एक बहुत बड़ी बात रख दी है । विदेशी आयातों से हमारे छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों को बहुत ही असर हुआ है । आँचलिक जनता की पूरी अर्थव्यवस्था टूट-सी गई है । पहले ये लोग गाँव में ही अपनी जरूरतें पूरी कर लेते थे, लेकिन अब मोची, कुम्हार, बढ़ई, सुथार आदि अपना-अपना धन्धा छोड़कर शहरों की ओर भागने लगे हैं और इससे आँचलिक परिवेश की आर्थिक स्थिति पूरी तरह टूट गई है। जैसे देखे तो - ''चमार जूते बनाना भूल गये । मोमिनों के पाँच करघे थे सो अब एक ही रह गया था । चीनी की आमद ने गुड़ के व्यापार को चौपट कर दिया था । बटन, सुई, आईना, कंघी और कैंची...कपड़े, खेती के औजार...बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग-धन्धों का गला दबाने लगे ।''६०

''हाथ-पैर खूब फैले हुए । जिस प्रकार लम्बा-छरहरा था, डील-डौल उतनी मोटी नहीं थी । कमर में मटमैली धोती लपेटी हुई थी, बाकी बदन यों ही खाली था। छाती, पीठ, जाँघों और बाहों पर मुलतानी मिट्टी-सा हल्का पीलापन छाया हुआ था ।''६१ यहाँ पर नागार्जुन की सुन्दर लेखन शैली का परिचय प्राप्त होता है।

५.२.५ वरुण के बेटे :

नागार्जुन कृत प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् १९५७ में हुआ । बिहार राज्य के एक छोटे-से क्षेत्र 'मलाही-गोढ़ियारी' को उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया गया है । इस छोटे-से अँचल में थोड़े-बहुत परिवार रहते थे, जिनका एक मात्र व्यवसाय मछलियाँ पकड़कर उसे बेचना था । मछुआरों (वरुण के बेटे) के जीवन तथा परिवेश को उपन्यास में यथार्थ चित्रित किया गया है । पूरे उपन्यास में मानवमन की संवेदनाओं, भावनाओं, इच्छाओं व आवेगों को चित्रित करने का उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है ।

१२ परिच्छेदों में विभाजित कथानक में पुरुष पात्रों के रूप में भोला, खुरखुन, मोहनमाँझी, नीरस, रंगलाल, चुल्हाई आदि पात्रों का चित्रण हुआ है । तो स्त्री पात्रों के रूप में जिलेबिया, मधुरी, तीरा, जिमिया, सिलेबिया आदि का चरित्रांकन हुआ है। संक्षेप में कहे तो यह नागार्जुन का एक विशिष्ट व सार्थक उपन्यास है । जिसमें उस समाज की सामाजिक परिस्थिति के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थ रूप से निरूपण हुआ है । साथ नारी चेतना को उजागर करके नागार्जुन ने एक सफल आँचलिक उपन्यास की अपनी विशिष्ट पहचान कराई है ।

नागार्जुन जी ने इसमें आँचलिक समाज की परिवारिक स्थिति के बारे में बताया है । वे लोग छोटी-छोटी बस्तियों में रहते हैं, अतः एक-दूसरे की आवश्यकताओं व जरूरतों को आपस में ही पूरी कर लेते थे । उनके बीच पारिवारिक संबंध अच्छे बने हुए होते हैं । जैसे - ''भोला का चाचा बिसुनी गरीब का गरीब रह गया । अपनी जाँगर ही उसकी असल जमा पूँजी थी । यही हाल खुरखुन, रंगलाल, नीरस वगैरह सामान्य मछुआ का था । उनमें आपस का एका भी हद दर्ज का था सभी परिवार दुःख-सुख में साथ रहते थे ।''[६२] यहाँ पर नागार्जुन की वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का दर्शन होता है ।

नागार्जुन ने प्रस्तुत उपन्यास में राष्ट्रीय भावना को उजागर किया है । मोहन नामक युवक के द्वारा अपने राष्ट्र के लिए अपनी जान देने के लिए कुरबान हो जाने की बात करके लेखक ने देशवासियों में राष्टप्रेम की भावना को उजागर किया है ।

जैसे – ''१५ अगस्त '४७ के पहले तीन बार जेल की सजा भुगत आया था । खरी-खरी सुनाने की और सर्व साधारण जनता का पक्ष लेकर चाहे जो कुछ कर गुजरने की लत पड़ गई थी ।''६३

नागार्जुन जी एक सशक्त आँचलिक उपन्यासकार हैं । उन्होंने अपने इस उपन्यास में न सिर्फ स्थान एवम् काल को प्रतीकात्मक प्रस्तुत किया, बल्कि पात्र भी प्रतीक रूप में ही प्रस्तुत किये हैं । जैसे – मधुरी जब अपने ससुराल जाने की बात सोचती है तब वह भावावेश में आकर अपनी चाची के गले से लग जाती है और कहती है –''चाची, तुम सबसे अलहदा होकर मैं कैसे रह सकूंगी ? सूखी रेत पर कबई मछली जिस तरह तड़पा करती है, मैं भी क्या उसी तरह नहीं तड़पूंगी चाची ?''६४ तो विविध कहावतों का प्रयोग लेखन शैली को और भी जयादा निखार देता है । जैसे – ''बात क्या रहेगी – कल्लर ने कहा – कुछ नहीं! दूर के ढोल सुहावन! बस, यही समझ लो खुरखुन काका!''६५

समग्रत: नागार्जुन कृत उपरोक्त आँचलिक उपन्यासों में आँचलिकता के सभी लक्षणों व तत्त्वों का निर्वाह बखूबी ढंग से हुआ है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का चोटदार व प्रभावक निरूपण उपरोक्त उपन्यासों में हुआ है । नागार्जुन की औपन्यासिक कला का उत्तम नमूना उपरोक्त उपन्यासों के कथ्य में पाया जाता है । उपन्यासों का कथ्य संपूर्ण रूप से अँचलीय परिवेश का निर्माण कर उपन्यासों को सफलता की चरमसीमा पर ला खड़ा करते हैं।

नागार्जुन की कथाभाषा की शक्ति है उनकी आत्मीयता, जो इनकी रचनाओं में रस, संगीत और कवित्व तीव्रता तथा दर्द की सृष्टि करती है । कभी न थमनेवाले पार्श्व संगीत की तरह उनकी कथाभाषा धरती की अतुलनीय लोक संस्कृति का सर्वथा अछूता उपयोग करती है । भाषा का यह तरल रूप एक ओर कथाकार नागार्जुन के वैयक्तिक पक्ष को उद्घाटित करता है, तो दूसरी ओर उनकी कथा के जनपदीय रूप को । इस रूप में हमें स्वीकारना होगा कि नागार्जुन की कथाभाषा का जनपदीय रूप न तो भावावेश का उच्छलन है और न कठोर संयम का अभिव्यक्त रूप, बल्कि है यह नितांत सहज, स्वाभाविक और विवेक संपन्न रूप ।

नागार्जुन वाकई एक सशक्त आँचलिक कथाकार व उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य में अपनी एक अलग विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं और उपरोक्त उपन्यास इस बात के सबूत हैं ।

५.३ आँचलिक उपन्यास परंपरा में नागार्जुन का स्थान :

स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपना बहुमुखी विकास किया। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से साहित्यकार सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, पारिवारिक, दार्शनिक, भौगोलिक आदि संपूर्ण जीवन के हरेक क्षेत्र को पूर्ण विस्तार के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करता है । हिन्दी उपन्यास ने अपनी विकास यात्रा में विभिन्न रूपों तथा प्रकारों को प्रस्तुत किया है । जैसे ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, भावप्रधान उपन्यास, रोमानी उपन्यास, प्रगतिवादी उपन्यास आदि । इनमें **आँचलिक उपन्यास** अपनी निजी एवम् महत्वपूर्ण पहचान रखता है ।

नागार्जुन ने अपने साहित्यिक जीवन के दौरान कुल ११ उपन्यासों की रचना की है । उनमें से कुल पाँच उपन्यासों की पृष्ठभूमि उन्होंने आँचलिक रखी है । जैसे **रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौंध, बाबा बटेसरनाथ** और **वरुण के बेटे** । इन पाँचों उपन्यासों में आँचलिक परिवेश की बखूबी अभिव्यक्ति हुई है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नागार्जुन का अपना एक विशिष्ट स्थान है । निम्नवर्गीय समाज की वेदनाओं और उनकी समस्याओं के चितेरे नागार्जुन ने अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है । ग्रामीण जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति इनकी मुख्य विशेषता रही है । इनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों, वहाँ के जन-जीवन की मन:स्थितियों के साथ-साथ राजनीतिक हथकण्डों, पूँजीपतियों द्वारा शोषण, जमींदार-किसान संघर्ष एवम् प्राकृतिक चित्रण का अंकन बड़ी कुशलता से हुआ है । ''राजनीतिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारों के समर्थक होते हुए भी नागार्जुन ने प्रचारात्मक दृष्टि से मार्क्स के सिद्धांतों का प्रयोग अपनी कृतियों में नहीं किया है ।''[६६] उनके समस्त रचना संसार में अन्त:सूत्र की तरह क्लासिकी मार्क्सवाद अवश्य मौजूद है । वह भी उनके बौद्धदर्शन के अध्ययन संस्कारों के कारण करुणा, मैत्री और शान्तिप्रियता की मानववादी अन्त:धारा से

बराबर सौम्य बनता गया है । आज नागार्जुन को किसी भी राजनीतिक पक्ष या मतवाद के 'केवल' से परिभाषित करना कठिन है । ये दलित, शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी हैं ।

इस प्रकार नागार्जुन को किसी धारा विशेष के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है । सच्चे अर्थो में पीड़ित, शोषित दलित जनता के प्रतिनिधि नागार्जुन मानवता के सजग प्रहरी हैं, जो समाजवाद और जनतंत्र दोनों में विश्वास रखते हैं ।

जब भी शोषित-दलित जन पर आँच आई उन्होंने हमेंशा उनके साथ मिलकर शोषकों के विरुद्ध आवाज उठाई । उपन्यासों में उनके दर्द और पीड़ा को अभिव्यक्ति दी । प्रेमचंदोपरान्त नागार्जुन ही एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने होरी और गोबर की पीड़ा को समझा । पर उनके पात्र सामाजिक व्यवस्था के आघातों को सहते हुए मर नहीं जाते हैं । बल्कि वे उनसे दृढ़ता के साथ संघर्ष करते हैं । उनके पात्रों को अत्याचार सहने की आदत नहीं है, वे खुलकर सामाजिक विकृतियों और अत्याचारों के विरुद्ध झण्डा खड़ा करते हैं । उनके उपन्यास यद्यपि समाजवादी सिद्धांतों से आच्छादित है, पर उनमें कोरी सैद्धांतिकता ही नहीं व्यावहारिकता भी है। नागार्जुन के उपन्यासों की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में मात्र बौद्धिकता या सैद्धांतिकता का समावेश न करके अपनी लेखनी द्वारा समाज के यथार्थ जीवन को प्रामाणिक अनुभूतियों द्वारा प्रतिष्ठित किया है ।

नागार्जुन ने बिहार के मिथिला प्रान्त को अपने उपन्यासों का कथाक्षेत्र बनाया हैं । गाँव के अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों से वे प्रत्यक्ष रूप से गुजरे हैं । जीवन के इन्हीं उतार-चढ़ावों को महसूस करते हुए अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में उन्हीं पात्रों, समस्याओं या परिस्थितियों का वर्णन किया है, जिनसे वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं । जिससे उपन्यासों में यथार्थता का सजीवांकन हुआ है ।

हिन्दी के प्रमुख आँचलिक उपन्यासकार मानेजानेवाले फणीश्वरनाथ रेणु ने जहाँ अपने उपन्यासों में पूर्णिया जिले के पिछड़े गाँवों का सामाजिक परिवेश चित्रित किया है, वह सिर्फ देखा हुआ यथार्थ था, जब कि नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जिस सामाजिक परिवेश का चित्रण किया है, उसे वे अनुभूत कर चुके हैं, जी चुके

हैं और उसीका वर्णन अपने उपन्यासों में किया है । इससे पाठक वर्ग में भी एक प्रकार का आकर्षण जमा सके हैं ।

''भारत धार्मिक आस्थाओं व रूढ़ियों का देश है । यहाँ जीवन के आचार-व्यवहार से लेकर चिन्तन के निकर्ष तथा रूढ़ियों की अनेकानेक ग्रंथियाँ ऐसी है जो अंधविश्वासों के रूप में अभिहित की जा सकती है ।''६७ इस दृष्टि से रेणु ने अपने उपन्यासों में इसी धार्मिक कट्टरता को चित्रित करते हुए उसे मिटाने का प्रयत्न किया है । जैसे - ''आजकल आदमी तो छुआछूत मानता नहीं,
देव-देवी क्यों मानेंगे ? ''६८ तो नागार्जुन ने भी अपने उपन्यासों में जहाँ कहीं भी धार्मिकता, कट्टरता, अंधविश्वासों, पाखण्डों का चित्रण किया है, वहाँ उसके समाधान का मार्ग भी बताया है । जैसे - ''गोत्र का झमेला हटा दो तो दोनों की आधी फिकिर मिट गई ! ''६९

हिन्दी साहित्य के सिद्धहस्त आँचलिक उपन्यासकार उदयशंकर भट्ट ने अपने **सागर लहरें और मनुष्य** उपन्यास में मुंबई महानगर के पश्चिमी तट पर बसे बरसोवा गाँव को अपना कथाक्षेत्र बनाकर परंपरा से कुछ हटकर लिखने का प्रयास किया था । इस उपन्यास का क्षेत्र द्विआँचलिक है । पर भट्टजी बरसोवा अँचल तथा उसकी वास्तविक स्थितियों का समग्र रूप से चित्रण नहीं कर पाये थे । नागार्जुन ने अपने **बलचनमा** उपन्यास में कुछ इसप्रकार का प्रयत्न किया है । इस उपन्यास में नागार्जुन ने दो अँचलों को जोड़ने का प्रयास किया हैं । जैसे जब बलचनमा अपने मालिक फूलबाबू के घर शहर जाता है तब वहाँ के शहरी वातावरण का काफी वर्णन उपन्यास में मिलता है । जैसे - ''शहर में सड़क के किनारे खड़े हो जाओ तो बहुत बात मालूम होगी । आने-जाने वाले तरह-तरह के चेहरे । एक्का, बग्धी, टमटम, फेरी लगाकर सामान बेचते हुए ठेला वाले, खोन्चा वाले, मोड़ पर किसी दुकान के सहारे बैठे मोची ।...बड़े घराने की औरतें होंठ रंगकर सफेदी से गाल पोतकर शाम को घूमने निकलती है ।''७०

आँचलिक उपन्यासों में भाषा के प्रयोग को लेकर अकसर प्रश्न उठाये गये हैं। रेणूजी ने सर्वप्रथम **मैला आँचल** में स्थानीय बोली का प्रयोग किया था । अपने पूरे उपन्यास में स्थानीय बोली का ही प्रयोग किया था । इससे भारत के अन्य प्रांत के पाठकों को इसे पढ़ने में मुश्किलों का सामना करना पड़ा है । लेकिन यह बात

लेखक के लिए जरूरी बन जाती है कि वह उसी अँचल की स्थानीय बोली का अपने उपन्यासों में प्रयोग करे, जिस अँचल से वह अपना कथानक चुनता है । विशेष प्रकार की अनुभूति या पात्र को चित्रित करते समय हमारी साहित्यिक भाषा में योग्य शब्द नहीं मिलते, तब स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखक के लिए जरूरी बन जाता है । जैसे रामदरश मिश्र ने अपने **पानी के प्राचीर** उपन्यास में रग्धूबाबा का चरित्र चित्रित करने के लिए भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया था ।

इसीप्रकार नागार्जुन भी भाषा के सफल चितेरे हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में जहाँ कहीं शिक्षित पात्र की बात की है तो वहाँ भाषा का स्वरूप शुद्ध साहित्यिक हो गया है और जहाँ अँचल के अनपढ़-गँवार पात्र की बात की है तो वहाँ भाषा का स्वरूप स्थानीय बोली प्रधान हो गया है । नागार्जुन ने पात्र व स्थान के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । उनके उपन्यासों में भाषाप्रयोग को लेकर कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति नजर नहीं आती ।

नागार्जुन के उपन्यासों में अभिव्यंजना सामान्य अभिव्यक्ति के क्षेत्र से हटकर विशिष्ट शैली का रूप धारण कर लेती है । सामान्य अभिव्यक्ति अभिष्ट अर्थ को श्रोता या पाठक तक प्रेषित करने तक ही सीमित रहती है । परन्तु नागार्जुन भाषा के प्रति उतने सजग और निष्ठावान हैं, जितना भाव के प्रति । क्यों कि ''अँचल विशेष की भाषा के माध्यम से बिम्ब, प्रतीक, विविध लोकोक्तियाँ व कहावतों से परिवेश की बाहरी आभा ही नहीं, अपितु चरित्रों के आन्तरिक द्वन्द्व तथा मानसिकता का सिलसिलेवार ब्योरा प्रस्तुत किया जा सकता है ।''[७१] नागार्जुन के उपन्यास साहित्य को वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से देखने के बाद स्पष्ट हो जाता हैं कि वे प्रायः सभी आँचलिक उपन्यासकारों में कदाचित सर्वाधिक शिल्प-सजग हैं । समयानुकूल नवीनता को उत्साह के साथ अपनाने, नई प्रयोगशीलता के प्रति आस्था रखने तथा साहित्य में नये प्रयोगों की बात कहने की प्रवृत्ति उनके उपन्यासों में प्रमुखतः मिलती हैं । गँवई परिवेश के प्रति गहन आकर्षण और सूक्ष्म पर्यवेक्षण, सुन्दर और स्वच्छ प्रतीकात्मकता, सामयिक जीवन के प्रति निष्ठा आदि उनके उपन्यासों की मूल निष्पत्तियाँ हैं ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन हिन्दी आँचलिक उपन्यास साहित्य में अपनी उपलब्धियों एवम् सीमाओं के साथ एक सशक्त उपन्यासकार के रूप में

सामने आते हैं । वे आँचलिक उपन्यास परम्परा अग्रज उपन्यासकार हैं । उनका समग्र साहित्य प्रगतिशील विचारधारा का संवाहक है । हिन्दी साहित्य में सर्वहारा के प्रबल समर्थक के रूप में उन्होंने अपना स्थान कालंजयी बना लिया है । नागार्जुन ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नये युग का निर्माण किया है । उनका आँचलिक उपन्यास साहित्य हिन्दी का अमूल निधि है ।

:: -- ::

;\NE";}IR

१. मैलाआँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५४, पृ.१३ ।
२. रेणु और रघुवीर के आँचलिक उपन्यास, डॉ. ममता शर्मा, रंगद्वार प्रकाशन, अहमदाबाद, २०००, पृ. ८८ ।
३. फणीश्वरनाथ रेणु और मैलाआँचल, गोपालराय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९९२, पृ. १४ ।
४. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ.५४४ ।
५. वही, पृ. २७२ ।
६. वही, पृ. ४२१ ।
७. वही, पृ. १४ ।
८. पानी के प्राचीर, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. पूर्वाभास में से ।
९. वही, पृ. पूर्वाभास में से ।
१०. वही, पृ.४ ।
११. वही, पृ. २१३ ।
१२. वही, पृ. ११४ ।
१३. वही, पृ. १०१ ।
१४. वही, पृ. १५९ ।
१५. वही, पृ. २१९ ।
१६. जल टूटता हुआ, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. ६ ।
१७. वही, पृ. ७ ।
१८. वही, पृ. १० ।
१९. वही, पृ. २०३ ।
२०. वही, पृ. ५७ ।
२१. वही, पृ. १०० ।
२२. वही, पृ. १६७ ।
२३. वही, पृ. १५९ ।
२४. वही, पृ. १५० ।
२५. वही, पृ. ५८ ।
२६. वही, पृ. ११७ ।
२७. सागर लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ. १० ।
२८. वही, पृ. १० ।
२९. वही, पृ. २१ ।
३०. वही, पृ. ६९ ।
३१. वही, पृ. १५१ ।

३२. वही, पृ. १२२ ।
३३. वही, पृ. ३४ ।
३४. वही, पृ. ४८ ।
३५. वही, पृ. ८२ ।
३६. वही, पृ. १८२ ।
३७. वही, पृ. २४८ ।
३८. वही, पृ. २२२ ।
३९. वही, पृ. १०० ।
४०. वही, पृ. ७५ ।
४१. वही, पृ. ३ ।
४२. वही, पृ. १८१ ।
४३. आधागाँव, डॉ. राहीमासूम रजा, पृ. ११ ।
४४. वही, पृ. १८ ।
४५. वही, पृ. ७८ ।
४६. वही, पृ. २९ ।
४७. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी लघु उपन्यासों में युग चेतना, डॉ. अरुणेन्द्रसिंह राठौर, जागृति प्रकाशन, कानपुर, पृ. ६५ ।
४८. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृ. १० ।
४९. वही, पृ. १६ ।
५०. वही, पृ. ७ ।
५१. वही, पृ. १४ ।
५२. वही, पृ. १० ।
५३. बलचनमा, नागार्जुन, पृ. ८९ ।
५४. नई पौंध, नागार्जुन, पृ. ३ ।
५५. वही, पृ. १४ ।
५६. वही, पृ. ७० ।
५७. वही, पृ. ५२ ।
५८. विवेकीराय के साहित्य में ग्रामांचलिक जन जीवन का चित्रण, डॉ. दिलीप भस्मे, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, २००६, पृ. १६ ।
५९. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, पृ. ३९ ।
६०. वही, पृ. ८७ ।
६१. वही, पृ. ५ ।
६२. वरुण के बेटे, नागार्जुन, पृ. २५ ।
६३. वही, पृ. ३२ ।
६४. वही, पृ. ४५ ।

६५. वही, पृ. ४२ ।
६६. नागार्जुन, सत्य नारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, १९९१, पृ. ६९ ।
६७. भाषा, नवम्बर-दिसम्बर, २००६, पृ. ८६ ।
६८. परती परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल पैपर बक्स, दिल्ली, सं.१९९५, पृ. ९४ ।
६९. नई पौंध, नागार्जुन, पृ. १२३ ।
७०. बलचनमा, नागार्जुन, पृ. ४९ ।
७१. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास, सं.गोवर्धन शर्मा, डॉ.एस.पी.शर्मा, आलेखः डॉ.हरजीभाई वाघेला, हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर, १९९८, पृ.१३६ ।

अध्याय – ६
मुल्यांकन एवम् उपसंहार

६.१ संक्षिप्त मूल्यांकन ।
६.२ सीमाएँ ।

अध्याय : ६
मूल्यांकन एवम् उपसंहार

६.१ संक्षिप्त मूल्यांकन :

हिन्दी उपन्यास साहित्य के एक विशिष्ट प्रकार के रूप में 'आँचलिक उपन्यास' साहित्य का उद्‌भव तत्कालीन हिन्दी पाठक और साहित्य के लिए एक अद्‌भूत घटना रही । ''एक विशिष्ट भूभाग, अँचल या जनपद को उभारने के उद्‌देश्य से लिखित उपन्यासों को आँचलिक कहा गया है ।''१

हालाँकि आँचलिक उपन्यास साहित्य की प्रथम रचना फणीश्वरनाथ रेणु कृत मैलाआँचल, सन् १९५४ को मानी जाती है, प्रत्युत इससे पहले सन् १९४८ में नागार्जुन कृत 'रतिनाथ की चाची' और सन् १९५२ में 'बलचनमा' उपन्यास लिखा जा चुका था । लेकिन विद्वानों का कुछ समूह इन दोनों उपन्यासों को आँचलिक की संज्ञा न देकर व्यक्तिवादी चरित्रप्रधान उपन्यास कहते हैं । डॉ. पारूकान्त देसाई का कहना है कि - ''...नागार्जुन के उपन्यासों की बुनावट आँचलिक उपन्यासों से थोड़ी भिन्न है । वे प्रेमचंद की सी शिल्प परंपरा के उपन्यास है । नागार्जुन के उपन्यासों की कथा अँचल से ली गई होने पर भी अँचल की नहीं होती है । अत: उनका विकास एक सीधी रेखा में होता है, आँचलिक उपन्यासों की भाँति बहुमुखी नहीं । अत: उनमें आँचलिक उपन्यासों की समग्रता, जटिलता, विविधता नहीं होती। फलत: 'मैलाआँचल' एवम् 'बुंद और समुद्र' जैसा बिखराव उनमें नहीं है ।''२

विद्वानों के उपरोक्त मतों के बावजूद नागार्जुन के उपन्यासों को अनांचलिक तो कतई नहीं कहा जा सकता । उनके प्रमुख आँचलिक उपन्यासों में आँचलिकता के तकरीबन सभी लक्षणों का निर्वाह बखूबी ढंग से हुआ है । इन लक्षणों के आधार पर अध्ययन के पश्चात् उन्हें अनांचलिक कहना उनकी महत्ता के प्रति अन्याय करना होगा ।

बिहार राज्य के मिथिला अँचल, वहाँ की धरती की व्यथा-कथा और उसकी महक हमें नागार्जुन के उपन्यासों में मिलती है । उन्होंने अपने उपन्यासों में शोषक और जमींदारों पर निर्मम प्रहार किये हैं और पूँजीवादी तथा सामंतवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना को जगाया है । उनके प्रमुख पाँच उपन्यास - रतिनाथ की चाची-१९४८, बलचनमा-१९५२, नई पौंध-१९५३, बाबा बटेसरनाथ-१९५४, वरुण के बेटे-१९५७- आँचलिकता की सौंधी सुगंध से सरोबर उपन्यास है ।

'रतिनाथ की चाची' एक विधवा ब्राह्मणी की विवशता, गरीबी और शोषण की कहानी है । रात्री के अंधकार में एकांत का लाभ लेकर उसके सतीत्व का भंग करने वाला तथा उस पर कलंक लगाने वाला उसका देवर स्वयं है यह जानते हुए भी रतिनाथ की चाची मौन रहती है । इसमें नागार्जुन ने उच्च वर्ग के लोगों के प्रति व्यंग्य भी किये हैं ।

'बलचनमा' में नागार्जुन की समाजवादी चेतना और भी अधिक उभरकर आयी है, जो बलचनमा के इस कथन से स्पष्ट होता है - ''लागों को जब विश्वास हो जायगा कि जमींदार महाजन की फाजिल धन-संपदा उन्हीं में बंट जायगी, रोजी-रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई...बुढ़ापे की बेफिक्री... खानपान और रहन-सहन का ठौर-ठिकाना...दवा-दारू, पथ-पानी का इंतजाम... यह सब सभी के लिए सुलभ होगा । दरभंगा के महाजन हो चाहे पटना के लाट साहब, मुफ्त का खाना किसीको नहीं मिलेगा...सब काम करेगा, सब दाम पायगा। लूल, अपंग, बुढ़, बेकार सब की जिम्मेदारी सरकार को उठानी पड़ेगी, पैसे के बल पर कोई किसीको बंधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा ।''[३]

'नर्द पौंध' उपन्यास सन् १९५३ में प्रकाशित हुआ, जो उनके मैथिली उपन्यास 'नवतुरिया' का हिन्दी रूपान्तर है । इसमें बेमेल विवाह की समस्या और उसके समाधान को लेखक ने बड़ी गम्भिरता से उठाया है । इसमें नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष द्वारा नई-पुरानी मान्यताओं का संघर्ष दिखाया गया है । प्राचीन मान्यताओं पर नये मूल्यों और मान्यताओं की विजय दिखाई गई है । नई पीढ़ी अपेक्षाकृत अधिक उदार, मानवीय और प्रगतिशील दृष्टि लेकर गाँव के रंगमंच पर उपस्थित हुई, जो अन्याय-अत्याचार के उन्मूलन हेतु कटिबद्ध है । '' 'नई पौंध' एक समस्यामूलक सामाजिक उपन्यास है, विवेच्य उपन्यास में लेखक ने मिथिलाँचल के

एक मैथिल परिवार और वहाँ की संस्कृति का जीवन्त चित्र खीचा है ।''४ वहाँ के समाज में अत्यंत जर्जर और रुढ़ मान्यताएँ मौजूद है किन्तु शिक्षा के माध्यम से रोशनी आ रही है । स्कूलों और समाचारपत्रों की सुविधा गाँवों में भी उपलब्ध होने से जनता में जागृति पैदा हो रही है ।

'बाबा बटेसरनाथ' में औपन्यासिक शिल्प का नवीन प्रयोग हुआ है । पुराना वट्वृक्ष उपन्यास के नायक जयकिशन के सामने बाबा बटेसरनाथ के रूप में प्रकट होता है और उसकी पिछली तीन पीढ़ियों पर जमींदारों द्वारा किये गये अत्याचारों की कहानी सुनाता है ।

'वरुण के बेटे' मछुआरों के साहसिक जीवन की अभिव्यक्ति है । '''वरुण के बेटे' में नागार्जुन ने मलाही गोढ़ियारी के मछुआरों के संघर्षपूर्ण जीवन का मार्मिक आख्यान किया है ।''५ इसमें जन संघर्षो और जनांदोलनों को मछुआ समुदाय की समस्याओं और उनके प्रगतिशील दृष्टिकोणों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग-बगीचे, कुआँ, चभच्चा और पोखर, देवी, देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चरागाह, परती, परांत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अचल संपतियों के मामले में जमींदारी उन्मूलन कानून दलित मछुआरों का संगठनबद्ध संघर्ष . . . .ध्रुवीकरण वरुण के बेटे ने भूस्वामियों को खुली छुट दे दी, नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चरोगाहों तक का वे चुपके-चुपके बेचने लगे...इसीके तहत देपुरा के जमींदार गढ़पोखरों की बंदोबस्ती सतधरा के जमींदार के हाथ ऊँचे मूल्यों पर करते हैं । मछुआरों की जीविका खतरे में पड़ने पर वे सभी संगठित होकर इसका जबर्दस्त विरोध करते हैं । मछुआ संघ के संगठन द्वारा लेखक ने जन- जीवन की संघर्षप्रियता और उसकी उभरती हुई वर्गचेतना को स्पष्ट किया है, जो युग की बदलती दिशा का सूचन करती है ।

नागार्जुन सिसकती हुई मानवता का लेखक है । विद्रोह एवम् भावुक रोमानीपन, सामान्यता-असामान्यता, साम्यवाद-सामंतवाद का अजब मेल नागार्जुन के व्यक्तित्त्व में हुआ है । जीवन की कठोर वास्तविकताओं को हृदय के नाजूक काव्यात्मक तंतुओं से जोड़ने का कार्य नागार्जुन ने किया है । उनके साहित्य में कठोरता, करुणा और कोमलता का त्रिवेणी संगम हुआ है । हिन्दी कथा साहित्य को कवित्वपूर्ण दृष्टि नागार्जुन से ही प्राप्त हुई । यथार्थवाद के नाम पर बढ़ते राजनीतिक

दुराग्रह के मतवादी अंधकार में इस दृष्टि का सर्वथा लोप हो गया था जो नागार्जुन की अमूल्य निधि है ।

मिट्टी की एक सोंधी सुगंध नागार्जुन की अपनी विशेषता है । उनके उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश अपने समग्र रूप में अभिव्यक्त हुआ है । ग्रामीण जीवन का ऐसा चितेरा हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है । नागार्जुन का व्यक्तित्त्व अनेक अंतर्विरोधों से भरा हुआ है । अनेक अपूर्णताएँ उनमें पूर्णता के लिए कुलबुला रही है ।

लेखन कार्य में डूबे हुए नागर्जुन का चेहरा और आँखें एक विशेष दीप्ति-सी आलोकित रहती है । उनकी दृष्टि प्रारंभ से ही समाजोन्मुख रही है । उनकी पैनी दृष्टि ने भांप लिया था कि व्यक्ति की अच्छाई-बुराई का मूल उत्स समाज और उसकी भली-बुरी रूढ़ियाँ ही है । अत: ऐसे समाज का एक व्यापक चित्र उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है । दलित, पीड़ित एवम् शोषित वर्ग में नई चेतना उजागर कर उन्हें संघर्ष के लिए तैयार करना उनका उद्देश्य होता था । वे सब प्रकार के शोषणों का विरोध करते हैं, परंतु शोषण के मूल में है आर्थिक असमानता । अत: इस असमानता की दीवारों को सबसे पहले ढहाना चाहते हैं । पूँजीवाद ही नहीं बल्कि उसे पोषित करने वाली सभी सड़ी-गली, पुरानी मान्यताओं व परंपराओं के प्रति उनमें विद्रोह की भावना मिलती है । ईश्वर के प्रति आस्था, भाग्यवाद, पुर्नजन्मवाद आदि सभी मान्यताएँ प्रकारान्तर से व्यक्ति को कमजोर बनाकर उसे संघर्षशील होने से रोकती है । गरीब और शोषित यदि सोचे कि उसकी नियती ही दर-दर की ठोकरें खाना है तो कभी संघर्ष के प्रति उन्मुख नहीं होगा ।

साथ ही नागार्जुन ने इस आर्थिक असमानता के मार्ग में सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों और विसंगतियों को भी अवरोधक बताया है । अत: उनके उपन्यासों में समाज व धर्म के ठेकेदारों का पर्दाफाश करने की प्रवृत्ति भी बलवती दिखाई पड़ती है । काल्पनिक व झूठा आदर्श सामाजिक यथार्थ की तस्वीर को पेश करने में कमजोर होता है ।

समग्रतः नागार्जुन के आँचलिक उपन्यास वस्तु, चरित्र एवम् परिवेश तीनों दृष्टियों से यथार्थ की सृष्टि करते हैं । गँवई जीवन का इतना सफल व सटीक चित्रांकन अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है । विषय की एकांगीता, सघन संवेदना तथा सूक्ष्म सांकेतिक अभिव्यंजना शैली के कारण नागार्जुन के उपन्यास आँचलिक उपन्यास परंपरा में मिल के पत्थर बने हुए हैं ।

६.२ सीमाएँ :

प्रत्येक महान सर्जक अपने में अनेक प्रश्नचिह्नों को बनाये चलता रहता है। नागार्जुन भी इस कडुवे यथार्थ से नहीं बच पाये हैं । उनके उपन्यासों में भी कुछ-कुछ ऐसी बातों का चित्रण मिलता है, जिसे सामान्य रूप से ग्रहण करना मुश्किल होता है । जैसे देखे तो उनके उपन्यासों में सबसे ज्यादा अखरता है - उनका आरोपित आदर्शवाद । नागार्जुन प्रारंभ से ही इस कमी के शिकार हुए हैं । वस्तुतः यह कमी अतिभावुकता के कारण आती है । लेकिन इससे औपन्यासिक कला को बड़ा आघात पहुँचता है । जैसे 'वरुण के बेटे' उपन्यास का यह वाक्य कि - ''ठीक है बेटा! दूध के सबसे बड़े दावेदार बच्चे ही हैं जिन्हें तू दूध दे रही है।''[६] नेताजी के द्वारा मधुरी को कहा गया यह वाक्य आरोपित आदर्शवाद की सृष्टि करता है ।

दूसरी बात यह कि नागार्जुन की औपन्यासिक कला की सबसे कमजोर कड़ी उनकी उपदेशक वृत्ति रही है । ''ऊँच-नीच का भेद सदा से चला आया है, सदा रहेगा ।''[७] और ''...भगवान जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं ।''[८] इन वाक्यों की उद्देश्यात्मकता पाठक को जरूर अखरती है । भले ही नागार्जुन के सभी उपन्यास आझादी के बाद लिखे गये हो लेकिन यहाँ पर एक गुलाम देश और एक आझाद देश के साहित्य में अंतर आ जाता है ।

परन्तु ये त्रुटियाँ उनकी महान औपन्यासिक देन को देखते हुए चन्द्र-कलंक के समान लगती है ।

समग्रतः नागार्जुन प्रौढ़ एवम् प्रगल्भ रचनाकार है साथ ही लोकप्रिय भी । उनके आँचलिक उपन्यास ग्रामीण परिवेश की मात्र कहानियाँ ही नहीं है, बल्कि

इतिहास का कच्चा ब्यौरा है । किसान जीवन, राजनीतिक पतन, व्यवस्थागत विसंगतियाँ, सांस्कृतिक अन्वेषण, मूल्यों की टकराहट जैसे विभिन्न संदर्भो की नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में यथातथ्य गवेषणा की है । कथ्य, शिल्प, भाषा, कृषक जीवन का गहरा अंकन आदि के कारण उनके आँचलिक उपन्यास हिन्दी आँचलिक उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं । नागार्जुन में रचनात्मक सामर्थ्य कूट-कूट कर भरा है ।

:: -- ::

;\NE";}IR

१. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, २००२, पृ. १२० ।
२. वही, पृ. १२२ ।
३. बलचनमा, नागार्जुन, पृ.१६४ ।
४. कथाकार नागार्जुन, डॉ. जगन्नाथ पंडित, नमन प्रकाशन, दिल्ली, २००५, पृ.७२ ।
५. वही, पृ. ९६ ।
६. वरुण के बेटे, नागार्जुन, पृ. ८८ ।
७. बलचनमा, नागार्जुन, पृ.८० ।
८. वही, पृ. १६ ।

VFWFZU|\Y

क्रम	5]:TLSF SF GFD	लेखक	प्रकाशक
१	नई पौंध	नागार्जुन	किताब महल, इलाहाबाद
२	बलचनमा	नागार्जुन	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली
३	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
४	रतिनाथ की चाची	नागार्जुन	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली
५	वरुण के बेटे	नागार्जुन	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली

(संदर्भग्रंथ)

क्रम	5]:TS SF GFD	लेखक	प्रकाशक
०१	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेन्द्र	मयूर पैपरबैक्स,दिल्ली
०२	आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास	डॉ. पारूकान्त देसाई	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
०३	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण	डॉ .मोहम्मद अजहर ढेरीवाला	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
०४	चतुरसेन शास्त्री का कथा कौशल	डॉ. भावना मेहता	संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद
०५	आधुनिक परिदृश्य आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास	विद्यासिंहा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
०६	स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त	अभिनव प्रकाशन, दिल्ली
०७	समकालीन हिन्दी उपन्यास महानगरीय बोध	सीमा गुप्ता	राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
०८	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपालराय	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
०९	वैज्ञानिक उपन्यास और उपन्यासकार		साहित्यालोक प्रकाशन
१०	हिन्दी उपन्यासकला	डॉ. रामलखन शुक्ल	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
११	उपन्यास : समय और संवेदना	विजय बहादूरसिंह	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
१२	स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र	दुर्गेशनन्दिनी प्रसाद	गीता प्रकाशन, हैदराबाद
१३	आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री चरित्र	डॉ. सविता किर्ते	विनय प्रकाशन, कानपुर
१४	बदलते परिप्रेक्ष्य और हिन्दी उपन्यास	डॉ. बीना जैन	संजय प्रकाशन, दिल्ली
१५	प्रेमचंद और नानकसिंह के उपन्यास	डॉ. तिलकराज	जीवनज्योति प्रकाशन, दिल्ली
१६	हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास	डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. सुमनलता	पंचशील प्रकाशन, जयपुर
१७	हिन्दी अभ्यास पुस्तिका	डॉ. पुष्पा शर्मा	
१८	नवम दशक के आँचलिक उपन्यास	डॉ .पांडुरंग पाटिल, डॉ. गिरीश काशिद	दिव्य डिस्ट्रिब्यूटर्स, कानपुर

क्रम	5]:TS SF GFD	लेखक	प्रकाशक
१९	हिन्दी गद्य साहित्य : उपलब्धि की दिशाएँ	डॉ. रामदरश मिश्र	नॉर्थ इण्डिया पब्लिशर्ज एण्डडिस्ट्रिब्यूटर्स,दिल्ली
२०	हिन्दी उपन्यास सौं वर्ष का सफरनामा	डॉ. ए. ए. शेख	शांति प्रकाशन, हरियाणा
२१	हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा में साठोत्तरी उपन्यास	डॉ .पारूकान्त देसाई	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
२२	कथाकार : नागार्जुन	डॉ. जगन्नाथ पंडित	नमन प्रकाशन, दिल्ली
२३	नागार्जुन	सत्य नारायण	रचना प्रकाशन, जयपुर,
२४	नागार्जुन का रचना संसार	विजय बहादुरसिंह	संभावना प्रकाशन, हापुड
२५	कथाकार बाबा नागार्जुन	डॉ. अवधेश राय	अनंग प्रकाशन, दिल्ली,
२६	तालाब की मछलियाँ	नागार्जुन	
२७	रूपाम्बरा	नागार्जुन	
२८	तुमने कहा था	नागार्जुन	
२९	डॉ. प्रभाकर माचवे	सं. नागार्जुन	
३०	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ	डॉ. विमल शंकर नागर	प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद
३२	फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन	डॉ. आनन्द मोहन उपाध्याय	अमर प्रकाशन, मथुरा
३३	प्रेमचंद के उपन्यासों का औदात्यपरक अध्ययन	डॉ. शशिप्रभा	राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर,
३४	हिन्दी भाषा और लिपि	धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
३५	हिन्दी रूप रचना	सं .आचार्य जयेन्द्र त्रिवेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
३६	फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा का शैलीशास्त्रीय अध्ययन	लालिमा वर्मा	जानकी प्रकाशन, पटना
३७	मुक्तिबोध की काव्यभाषा	डॉ. सनतकुमार	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
३८	छायावादी काव्य : परंपरा और प्रयोग	त्रिलोकीनाथ पाण्डेय	संजय बुक सेण्टर, वाराणसी
३९	पंत एवम् निराला के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. मंजुला जैन	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर

क्रम	5]:TS SF GFD	लेखक	प्रकाशक
४०	कहानीकार निर्मल वर्मा	सुल्तान अहमद	संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद,
४१	मैला आँचल	फणीश्वरनाथ रेणु	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
४२	परती परिकथा	फणीश्वरनाथ रेणु	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
४३	सागर लहरें और मनुष्य	उदयशंकर भट्ट	मसिजीवी प्रकाशन, दिल्ली
४४	माटी हो गई सोना	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
४५	आधा गाँव	डॉ. राही मासूम रजा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
४६	जल टूटता हुआ	डॉ. रामदरश मिश्र	
४७	पानी के प्राचीर	डॉ. रामदरश मिश्र	
४८	अँधेरा जहाँ उजाला	डॉ. सूर्यदीन यादव	भावना प्रकाशन, दिल्ली
४९	ममता	डॉ. सूर्यदीन यादव	भावना प्रकाशन, दिल्ली
५०	स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास	सं .गोवर्धन शर्मा, डॉ. एस. पी. शर्मा	हिन्दी साहित्य अकादमी, , गांधीनगर
५१	विवेकीराय के साहित्य में ग्रामांचलिक जन जीवन का चित्रण	डॉ. दिलीप भस्मे	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर
५२	फणीश्वरनाथ रेणु और मैलाआँचल	गोपालराय	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली
५३	रेणु और रघुवीर के आँचलिक उपन्यास	डॉ. ममता शर्मा	रंगद्वार प्रकाशन, अहमदाबाद

(पत्र-पत्रिकाएँ)

क्रम	पत्र-पत्रिका	संपादक
१	जनशक्ति	जनवरी-१९६०, पटना
२	नूतन भाषा सेतु	डॉ. अम्बाशंकर नागर, अहमदाबाद, अप्रेल-जून, २००७
३	भाषा	नवम्बर-दिसम्बर, नई दिल्ली, २००६

(शब्दकोश)

क्रम	शब्दकोश	संपादक	प्रकाशक
१	नालंदा विशाल शब्द सागर	श्रीनवलजी	आदीश बुक डीपो, दिल्ली
२	बृहत् हिन्दी कोश	कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
३	संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश	डॉ. शिवप्रसाद शास्त्री	राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली
४	संस्कृत-हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	